राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ सहित
श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी
राजस्थानी काव्य

लेखक

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

एम० ए० [पी एच० डी०], साहित्य रत्न

मगल प्रकाशन

गोविन्द राजियो का रास्ता

जयपुर

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता, जयपुर

प्रथम संस्करण १९६९ ई०

मूल्य
रु० २५-०० [पच्चीस रुपए मात्र]

मुद्रक
मंगल प्रेस, जयपुर

समर्पण

परम पूजनीया माताजी

श्रीमती अ० सौ० हगामी देवी जी मेनारिया

और

परम पूजनीय पिताजी

श्रीमान् मगनीराम जी मेनारिया की

पवित्र सेवा मे

विनम्र भेंट

संकेत तालिका

अ०	अंक
अ०	अध्याय
अनु० सं०	अनुच्छेद संख्या
अ० जै० ग्र० बी०	अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर
अ०भ० नाहटा	अगरचन्द भवरलाल नाहटा
ई० स०, ई०	ईस्वी सन् ईस्वी
का० ना० प्र० स०, ना० प्र० स०	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
ख०	खण्ड
गा०	गाथा
गी० स०	गीत संग्रह
छ० स०	छन्द संख्या
ज० का०	जन्म काल
डा०	डाक्टर
डा० ओ० रा० इ०	डाक्टर ओझा का राजपूताने का इतिहास
डा० मा० प्र० गु०	डाक्टर माताप्रसाद गुप्त
दो० स०	दोहा संख्या
न०	नम्बर
ना० प्र० प०	नागरी प्रचारिणी पत्रिका
प०	पण्डित
पु० प्र० स०	पुरातन प्रबन्ध संग्रह
पृ०	पृष्ठ
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो
प्रका०	प्रकाशक
प्रा० गु० का० स०	प्राचीन गुजराती काव्य संग्रह
भा०	भाग
भू०	भूमिका
मृ० स०	मृत्यु संवत्
मो० द० देसाई	मोहनलाल दलीचन्द देसाई
र० का०	रचना काल
रा० ना० ला० इलाहाबाद	रामनारायणलाल इलाहाबाद

रा० भा० रू०	राजस्थानी भाषा की रूपरेखा
रा० भा० सा०	राजस्थानी भाषा और साहित्य
रा० रि० सो० क०	राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता
रा० सा० आ०	राजस्थानी साहित्य का आदिकाल
रा० सा० रू०	राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा
रा० शो० स०	राजस्थानी शोध संस्थान
ले० का०	लेखन काल
वि० सं०	विक्रमी संवत्
वो०	वाल्यूम
शा० रि० इ०	शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर
शो० प०	शोध पत्रिका
सं०	संख्या
संस्क०, सं०	संस्करण
सम्पा०	सम्पादक
ह० प्र०	हस्तलिखित प्रति
हि० सा० आ० इ०	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
हि० सा० आ०	हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी
हि० का० धा०	हिन्दी काव्य धारा राहुल सांकृत्यायन
हि० सा० बृ० इ०	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, ना० प्र० स०
हि० सा० स०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
हि० प० प्र०	हिन्दी परिषद् प्रयाग

प्रस्तावना

प्रस्तुत विषय के महत्व की ओर लेखक का ध्यान सर्व प्रथम महाराज पृथ्वीराज का 'क्रिसन रुक्मिणी री वेली' का अध्ययन करते समय आकर्षित हुआ। तदुपरान्त अलवर [illegible]ाया जी भूषा कृत "रुक्मिणी-हरण' के सम्पादन[1] का सुअवसर प्राप्त हुआ तो इस विषय [illegible]र आस्था सुदृढ़ हो गई। जोधपुर में विश्वविद्यालय का समारम्भ होने पर गुरुजनों ने भी [illegible]वषय को महत्वपूर्ण समझते हुए शोध कार्य की प्रेरणा प्रदान की तो पजीकरण सम्बन्धी [illegible]ार्यवाही करते हुए तत्काल सम्बन्धित सामग्री के एकत्रीकरण और अध्ययन का कार्य विधिवत् [illegible]ारम्भ किया गया।

महाकवि तुलसी के जानकी मगल और पार्वती मगल तथा विष्णुदास, सूरदास और नन्ददास आदि के ब्रजभाषा मे लिखित "रुक्मिणी मगल" सज्ञक काव्यो से प्रकट होता है कि हमारे साहित्य में विवाह-विषयक काव्यो को "मगल" नाम देने की प्रवृत्ति रही है। कविवर पृथ्वीराज राठौड़ ने भी अपनी 'वेली' का अपर नाम "रुक्मिणी मगल" लिखा है।[2] प्रस्तुत प्रबन्ध से प्रकट है कि हिन्दी एव राजस्थानी में १८७ मगल-काव्य उपलब्ध ज्ञात हैं किन्तु यह विषय अद्यावधि हमारे साहित्यक इतिहास ग्रन्थों में उपेक्षित रहा है और "हिन्दी साहित्य कोष" में "मगल-काव्य रूप' के विषय में विचार तक नहीं किया गया है।

प्रबन्ध-लेखन में नवीन शैली को अपनाते हुए भी अनेक शास्त्रिक और शाब्दिक जटिलताओं को दूर रखा गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध का विश्वविद्यालय के सम्बन्धित नियम स० २२ के अनुसार "फुलस्केप" आकार में टाइप किये हुए ३५० पृष्ठों तक सीमित रक्खा गया है। जोधपुर में नवीनतम विकसित शैली का नागरी-टकण यन्त्र प्राप्त कर प्रबन्ध को शुद्ध रूप में टकित करवाना एक समस्या रही है। टकित प्रतियो में सावधानी पूर्वक सुधार किये गये हैं और लेखक इस विषय में क्षमा प्रार्थी है। विषयगत सामग्री के अन्वेषण मे कई कठिनाईयो का सामना करना पड़ा है किन्तु अनेक स्थानो की यात्राओ में सम्बद्ध ग्रन्थपालों और ग्रन्थ स्वामियों ने उदारता पूर्वक सहयोग दिया है। आदरणीय श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा अपेक्षित विशेष सामग्री प्राप्त हुई, तदर्थ आपको अनेक धन्यवाद हैं।

---

१ – प्रकाशित राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थांक ७४।

२ – क – "मन सुद्धि जपन्तां रुक्मिणी-मगल, निधि सपति थाइ कुशल नित।"

— सख्या २८६।

ख – "मुख कहि कृपन रुक्मणी-मगल, काई र मन कलपसि कृपणा।"

— सख्या २८९।

परम श्रद्धेय श्रीमान् प० लक्ष्मीलालजी जोशी ने समय-समय पर सम्बन्धित साहित्यिक सामग्री का प्रत्यक्ष निरीक्षण करते हुए प्रोत्साहन प्रदान किया, तदर्थ लेखक विशेष आभारी है।

श्री उमरावसिंह मगल, संचालक, मगल प्रकाशन, जयपुर ने इस शोध प्रबन्ध को तत्परतापूर्वक प्रकाशित करने का उपक्रम किया, तदर्थ इन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

गत दो वर्षों में प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों में मेरे अनेक मित्रों और पारिवारिक जनों का सहयोग रहा है। प्रिय मित्र श्री गोविन्ददासजी वर्मा ने लेखक की अनेक विध सहायता की है, जिसके लिए लेखक आभारी है।

गुरुजनों का मेरे लिए सदा ही अपार स्नेह और प्रोत्साहन रहा है। परम श्रद्धेय आचार्यद्वय डा० रमाशंकर जी शुक्ल "रसाल" और डा० मोतीलालजी गुप्त के स्नेहयुक्त मार्गदर्शन और प्रोत्साहन का ही सुपरिणाम है कि प्रबन्ध को प्रस्तुत रूप मिल सका है। आचार्यों के प्रति आभार को अपने शब्दों में व्यक्त करना कठिन है अतएव "मानस" के शब्दों में ही निवेदन है—

बंदउ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥

—पुरुषोत्तम लाल मेनारिया

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर
गणतन्त्र दिवस, १९६१

विषय तालिका

चतुर्थ अध्याय श्रीकृष्ण चरित्र और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा स्रोत २१३–२५४

पंचम अध्याय श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी-राजस्थानी चारण काव्य (१ : ५ – १४७ : ५) २४७–३२२

षष्ट अध्याय श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य(१ ६–११३.६) ३२५–३४८

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१	यत्	व्यू
१	रुद्रधर	रुद्रधर
११	गोडो सँहुना ।	गोडहैहयराष्ट्रालगाण्ड यकीर्तनसिंहना
१५	७६	७६०
४३	जसहरचरिउ और नेमिनाहचरिउ	और जसहरचरिउ
६६	स० १७४७	स० १७०७
७८	स० १२५०	स० १३६०
,,	स० १२५०	स० १३२७ लगभग
७७	गजधर	गणधर
,,	बुद्धचरित्र	प्रत्येक बुद्ध चरित्र
,	हेमभूषण मणि	हेमभूषण गणि
,	(१) क्षेत्रपाल (२) द्विपदिका	(१) क्षत्रपाल द्विपदिका
७८	स्थूलिभद्र राम	स्थूलिभद्र फागु
,	राजेश्वर सूरि	राजशेखर सूरि
,,	स० १४११	स० १४१३ [?]
,,	कष्ठावर्षी	कष्टर्षी गच्छीय
,,	चम्पा	चम्प
७९	रणकपुर	राणकपुर
,,	सप्रतिका	सप्ततिका
,	महर्षि	ऋषि
१०८	सहज समुद्र	सहज सुन्दर
११०	विनोन्मास	विनोद्रस
,,	सोईदास	साईदास
,,	स० १७०९	सं० १८९१

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका

१. 'राजस्थान' का नामकरण : प्राचीन उल्लेख

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

३. राजस्थानी भाषा

- क विस्तार क्षेत्र
- ख सीमाएँ
- ग वर्गीकरण
- घ नामकरण
- ङ राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति
- च राजस्थानी भाषा का विकास
  - [अ] राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना-काल
  - [आ] प्राचीन राजस्थानी भाषा काल
  - [इ] मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काल
  - [ई] आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल

४. ललित कलाएं और राजस्थानी साहित्य

- क संगीत
- ख चित्रकला
- ग नृत्य

॥ श्री ॥

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका



१ १। किसी भी साहित्य के परिचय हेतु सम्बद्ध प्रदेश का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि देश की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल ही साहित्य की रचना होती है। साहित्यकार अपने उपादान स्वीकृति, विरोध अथवा पलायन की स्थिति में सम्बद्ध समाज में ही प्राप्त करता है। साहित्यकार समाज की देन होता है और साहित्य पर साहित्यकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। इस प्रकार साहित्य, साहित्यकार, समाज और सम्बंधित प्रदेश चारों का परस्पर घनिष्ठ तथा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है।

२ १। "सहितस्य भाव साहित्यम्" के अनुसार "साहित्य" का अर्थ मिलन, मेलन अथवा हितकर है। "साहित्य" शब्द की व्याख्या– साथ, संयोग, मेल, वाक्य में पदों का सापेक्ष सम्बन्ध, गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक रचनाएं, लिपिबद्ध विचार और ज्ञान, ग्रन्थ समूह, वाङ्मय, काव्यशास्त्र तथा हितयुक्त लिखने हुए की गई है।[1]

सामाजिक आलोचना और व्याख्या के रूप में भाषा के माध्यम से हुई साहित्यकार की अभिव्यक्ति अथवा साहित्यकार के विचारों और भावों की समष्टि ही साहित्य है। 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' शब्द से 'यत' प्रत्यय लग कर हुई है। 'सहित' का अर्थ 'हित सहित' 'हितेन सह सहित' और 'साथ होना', मिलन अथवा मेलन है। तदनुसार साहित्य के माध्यम से विविध भावों, विचारों, देशों और मनुष्यों के मिलन का महान् कार्य सम्पादित होता है। रुद्रधर ने भाषा विशेष के विविध प्रकार के विषयों पर लिखित ग्रन्थ समूह को 'साहित्य' कहा है[2] और यही मत कवि बिल्हण ने भी प्रकट किया है।[3]

---

१ – क – ज्ञान शब्द कोष, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, वि० सं० २०१३, पृ० ८४२।
ख – वाचस्पत्यम्, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, पृ० ५२६०।

२ – श्राद्धविवेक, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० १८।

३ – विक्रमाङ्कदेवचरित, १। ११।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस विषय मे लिखा है — "सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति हुई है अतएव धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द मे मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ ही मिलन नहीं है, वरन् यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है?" [1] इस प्रकार साहित्य में समत्व और असमत्व के सामंजस्य की शक्ति भी निहित है। साहित्य विरोधी तत्वों का पारस्परिक विरोध दूर कर उन्हें एकता के सूत्र मे आबद्ध करने मे भी विशेष सहायक होता है।

३.१। एक ही समाज और युग से प्रभावित साहित्यकारों एवं साहित्य मे भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, जिसका मुख्य कारण समाज में अनेक इकाइयों और वर्गों की सहृति है। समाज मे अनेक दृष्टिकोणों और प्रवृत्तियों का समावेश होता है, जिनका सघात साहित्यकारों पर विभिन्न अन्तर्वर्तिनी विचार धाराओं और अभिव्यंजना शैलियों के रूप मे होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये वह पारिवारिक राजनैतिक ऐतिहासिक, धार्मिक, भौगोलिक तथा आर्थिक मर्यादाओं मे अन्य मनुष्यों से सम्बद्ध होता है। व्यक्तित्वों की भिन्नता ही साहित्यिक भिन्नता के रूप मे प्रकट होती है।

१ राजस्थान का नामकरण : प्राचीन उल्लेख

४.१। 'राजस्थान' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग—'राजस्थानीयादित्य' वि० सं० ६८२ मे उत्कीर्ण वसन्तगढ (सिरोही) के शिलालेख मे उपलब्ध हुआ है।[2] मुंहणोत नैणसी (वि० सं० १६६७–१७२७) की ख्यात मे भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है —

"समत १६७२ रांणा अमरसिंघ साहजादे खुरम सूं मिलिया। तठा पछे राणा अमरसिंघ उदैपुर आयो। तठा पछे 'राजस्थान' उदपुर हुवो। [3]

चारण कवि वारभाण कृत 'राजरूपक' (वि० सं० १७८८) नामक महाकाव्य मे 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

---

१ – साहित्य, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, पृ० ८।

२ – राजस्थान पुरातत्व संग्रहालय अजमेर मे सुरक्षित और महाकवि माघ उनका जीवन और कृतियां, डा० मदनमोहन लाल शर्मा नवयुग प्रकाशन, दिल्ली मे प्रकाशित, पृ० ४।

३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा मे सुरक्षित "सरस्वती भण्डार पुस्तकालय" की हस्तलिखित प्रति पत्र सं० २७। "राजस्थान के साहित्यिक ग्रंथों मे राजस्थान सम्बन्धी प्राचीनतम यही उल्लेख दिया गया है।" — राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर,

छंद गाथा

सप्त पुरी सिरताज कन अपवर्ग हुँत समकारण।
उत्तम धाम अजोध्या, ओपै नाम ग्राम पुर ऊपर ॥२५॥

थिर ते 'राजसथान मह्रि इक छत्र भोम सामर्थ।
पके आण अखड, खडण माण प्राण नवखण्ड ॥२६॥[1]

इस प्रकार प्रकट होता है कि 'राजस्थान शब्द के प्राचीन प्रयोग मुख्यतः राज का स्थान' अर्थात् राजधानी' के अर्थ मे किये गये हैं। मध्यकाल मे यह प्रदेश अनेक राजाओ और सामन्तो के अधिकार मे था एव राजा और सामन्त अपने सस्थान के लिये 'राजस्थान' अथवा राजथाण 'रायथाण और 'रायथान शब्दो का प्रयोग करते थे।

५ १। ब्रिटिश शासकों ने इस प्रदेश का नाम तलगाना गोडवाना और उडियाना आदि के अनुकरण मे राजपूताना' दिया था। प्रदेश-सूचक 'राजपूताना' शब्द का प्रथम लिखित प्रयोग १९ वी सदी के प्रारम्भ मे जाज टामस कृत माना जाता है।[2]

६ १। प्रशासन कार्यो में प्रदेश सूचक 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग भारतीय स्वाधीनता (१९४८ ई०) के पश्चात् विभिन्न रियासतो के एकीकरण के साथ ही प्रारम्भ हुआ है।[3]

७ १। प्रदेश विशेष के लिये 'राजस्थान शब्द प्रयुक्त करने का प्रधान श्रेय कर्नल जेम्स टाड नामक सुप्रसिद्ध इतिहासकार को है, जिसने एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ 'राजस्थान' नामक ग्रथ लिखा है।[4] इस विषय मे डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है —

"प्रान्त वाचक 'राजस्थान नाम एक विशेष मर्यादा के साथ हम सब कोई स्मरण करते हैं खास करके हिन्दुओ मे, और शिक्षित लोगो में। मुख्यतया एक विदेशी की राजस्थान

---

१ – सम्पादक– प० रामकरण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम प्रकाश पृ० १०—११।

२ – मिलिट्री मेमोयर्स ऑफ मिस्टर जाज टॉमस, विलियम फ्रेंकलिन, लदन (१८०५ ई०) पृ० ३४७।

३ – बेसिक स्टेटिस्टिक्स ऑफ राजस्थान, जन–सम्पर्क कार्यालय, जयपुर (१९५७ ई०) पृ० १।

४ – विलियम क्रुक्स, लदन (१८२९ ई०)। (हिन्दी संस्करण टाड कृत राजस्थान भाग १ खण्ड १ "राजपूत कुलों का इतिहास" मगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३।)

पर प्रीति के कारण ऐसा हो पाया। निश्चय ही इस ग्रंथ ने भारत के हिन्दू साहित्य में और पुनर्जागृति के क्षेत्र में अपना निराला स्थान बना लिया।[1]

८ १। प्राचीन काल में यह प्रदेश और इसके भूखण्ड विभिन्न नामों से प्रसिद्ध रहे हैं। जैसे राजस्थान के उत्तरी भाग का नाम 'जाङ्गल', पूर्वी भाग का नाम 'मत्स्य', दक्षिणी-पूर्वी भाग का नाम 'शिवी', दक्षिणी भाग का नाम मेदपाट वागड प्राग्वाट मालव और गुर्जरत्रा, पश्चिमी भाग के नाम मरुकान्तार माड़ वल्ल और मध्य भाग के नाम अर्बुद तथा सपादलक्ष प्रचलित रहे हैं।[2] साल्व नामक जनपद[3] और परियात्र मण्डल भी इसी प्रदेश के अन्तर्गत माने गये हैं।[4] राजस्थान का महत्त्वपूर्ण भाग मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध रहा है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत का जिसका अधिकांश भाग मरुस्थल है, "राज मारवाड़" भी कहा गया है।

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

९ १। राजस्थान में प्राचीन काल से अनेक जातियों का निवास रहा है और अनेक नवीन जातियों का आगमन भी होता रहा है। नृवंश-शास्त्र की दृष्टि से राजस्थान में मुख्यतः दो प्रकार की जातियां हैं — आर्य और द्रविड़। आर्यों में — ब्राह्मणों, राजपूतों और वैश्य आदि का तथा द्रविड़ों में भीलों और मीणा आदि की गणना होती है।

१० १। प्राचीन काल में राजपूत जाति का राजस्थान में विशेष प्रभुत्व रहा और इसी कारण राजस्थान को 'राजपूताना' भी कहा गया। राजपूत जाति अपनी वीरता के लिये समस्त विश्व में विख्यात रही है तथा साहित्य, संगीत चित्र और शिल्प-स्थापत्य के क्षेत्र में राजपूतों की विशेष देन मानी जाती है।

११ १। राजस्थान के वैश्य अपने व्यापार-कौशल और उद्योगप्रियता के कारण समस्त देश में प्रमुख स्थान बनाये हुए हैं तथा देश के औद्योगिक विकास में विशेष योग प्रदान कर रहे हैं। अनेक वैश्यों ने साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया और स्वयं भी साहित्य का निर्माण किया।

---

१ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विश्व विद्यापीठ शोध-संस्थान, उदयपुर, पृ० २, (१९४८ ई०)।

२ – राजपूताने का इतिहास, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भाग १, पृ० २।

३ – राजस्थान भारती, भाग ३, अङ्क ३-४ (शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर) में प्रकाशित डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का निबन्ध।

४ – हमारा राजस्थान पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २०—२२, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५० ई०।

१२ १। राजस्थान मे ब्राह्मणो ने विद्या एव साहित्य के विकास मे महत्वपूर्ण योग दिया है। राजपूत शासको द्वारा ब्राह्मणो का विशेष सम्मान होता रहा, जिससे प्रोत्साहित हो कर ब्राह्मणो ने मौलिक और अनुवादित साहित्य की सृष्टि की।

१३ १। राजस्थान की आदिवासी जातियो में भील, गरासिया और मीणा मुख्य हैं। इन जातियों का निवास मुख्यत राजस्थान के पर्वतीय प्रदेशो में है। राजस्थान के आदिकाल राजपूत राजाओ ने भीलो और मीणो से ही राज्य प्राप्त किये। आदिवासी भील और मीणे कलाओ के विशेष प्रेमी होते हैं।[1]

१४ १। बालदिया, बणजारा और गाडूल्या लुहार आदि घुमक्कड जातियो का सम्बन्ध भी राजस्थान से माना जाता है। प्राचीन काल मे बालदियो और बणजारो द्वारा बैलों की सहायता से माल लाद कर सुदूर प्रदेशो तक पहुँचाया जाता था। गाडूल्या लोहार बैलो द्वारा खींची जाने वाली गाडियो मे ही अपना निर्वाह करते हुए [illegible] और ग्राम जनों की सम्बद्ध आवश्यकता पूर्ति में योग देते हैं। राजस्थान की उक्त घुमक्कड जातियो से सम्बद्ध साहित्य पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है।

१५ १। १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जन सख्या २०१ करोड आकी गई है। उक्त जन सख्या मे ८४ प्रतिशत की आजीविका कृषि और पशु पालन पर निर्भर है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जन जीवन में कृषको और पशुपालको का विशेष स्थान है। तदनुसार राजस्थानी साहित्य मे भी पशुपालन और कृषक जीवन का विस्तृत चित्रण उपलब्ध होता है। "वेलि क्रिसन रुकमणी री" का युद्ध कृषि रूपक उक्त कथन का एक उत्तम उदाहरण है।[2]

३ राजस्थानी भाषा

क. विस्तार - क्षेत्र

१६ १। राजस्थानी समस्त राजस्थान क्षेत्र की भाषा है। राजस्थान क्षेत्र के अन्तर्गत भूमि, भाषा, रहन सहन, विचार, व्यवहार और इतिहास आदि की दृष्टि से पश्चिमी भारत के उत्तर में सरस्वती अथवा हाकडा नदी के सूखे नाले से दक्षिण में सतपुडा पर्वत के

१ — भारतीय लोक कला ग्रन्थावली—१ राजस्थानी लोक सगीत और २ राजस्थानी लोक नृत्य, लेखक — श्री देवीलाल सामर, स० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, भारतीय लोक-कला-मण्डल उदयपुर, क्रमश पृ० ६७–७२ और ४१–४६।

२ — पृथ्वीराज राठौड़ कृत, छद स० ११७–१२८।

ढानो एव ताप्ती नदी तक और पूर्व मे बेतवा नदी की ऊपरी धारा से पश्चिम में उमरकोट सहित सिंध नदी की पूर्वी धारा तक के समस्त भाग को लिया जाना चाहिये।[1] वर्तमान राजस्थान राज्य की सीमाएं वास्तव में अंग्रेज शासकों द्वारा उनकी सुविधा के लिए निर्धारित राजपूताने की सीमाओं मे सामान्य परिवर्तन कर निर्धारित की गई हैं।

१७ १ । राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत वर्तमान राजस्थान राज्य की बोलियाँ (धौलपुर और करौली की 'ब्रज' के अतिरिक्त) के साथ ही मध्यप्रदेश के अन्तर्गत मालवी, पहाडी प्रदेशों की भीली, पंजाब और काश्मीर की गूजरी और वणजारों तथा बानदिया आदि घुमक्कड जातियो की समस्त बोलियां मानी जाती हैं।[2] राजस्थान के मारवाडी व्यापारियों के साथ राजस्थानी भाषा का प्रवेश भारत के अनेक भू भागों मे हो चुका है।[3] इस प्रकार राजस्थानी भाषा भाषियो की संख्या दो करोड मानी गई है।[4]

ख सीमायें

१८ १ राजस्थानी भाषा की सीमाएं निम्नलिखित भाषाओं से मिलती हैं और राजस्थानी भाषा क्रमश अपना प्रभाव छोडती हुई निम्नलिखित भाषाओं मे विलीन हो जाती है —

(१) उत्तर-पंजाबी,
(२) पश्चिमोत्तर– हिंदकी या पश्चिमी पंजाबी,
(३) पश्चिम– सिंधी, लहदा और पंजाबी,
(४) दक्षिण-पश्चिम– गुजराती,
(५) दक्षिण– गुजराती और मराठी,
(६) दक्षिण पूर्व– मराठी और बुंदेली,
(७) पूर्व– बुंदेली और ब्रज, और
(८) उत्तर पूर्व– बागडू।

---

१ – हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २।

२ – राजस्थानी भाषा, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ५ और ६।

३ – लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया जार्ज ग्रियसन खण्ड १, पृ० १५७।

४ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी १६५३ ई०, पृ० २।

ग. वर्गीकरण

१६ १ राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों का वर्गीकरण निम्न रूप मे किया जा सकता है —

(१) पश्चिमी राजस्थानी — मारवाडी मेवाडी जिसम धाटकी, थली, बीकानेरी, शेखावाटी, गोडवाडी आदि का समावेश होता है।

(२) उत्तर पूर्वी राजस्थानी — अहीरवाटी और मेवाती।

(३) मध्यपूर्वी राजस्थानी — ढूढाडी-हाडौती जिसमे तोरावाटी, जैपुरी, काठेडा, राजावाटी, अजमेरी, नागरचाल आदि का समावेश होता है।

(४) दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थानी — निमाडी और मालवी।

(५) पहाडी राजस्थानी — भीली।

२० १। डा० जार्ज ग्रियर्सन ने भीली बोलियो को राजस्थानी के अन्तर्गत नही माना है[1] किन्तु डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भीली बोलियो को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत ही माना है।[2] प्राचीन काल मे राजस्थान के अधिकाश भू भागो मे भीलो का शासन था। कालान्तर मे भीलो को पहाडी भागो म जाना पडा। राजस्थान म भीलो का प्रमुख क्षेत्र बागड और भीली बोली बागडी क नाम से प्रसिद्ध है। साथ ही भीली बोली मे राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं इसलिए भीली को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत मानना ही न्यायजनक होगा।[3]

घ. नामकरण

२१ १। राजस्थानी भाषा का नामकरण अनेक आधुनिक भाषाओ के नामकरण की भाति आधुनिक विद्वानो की देन है और इसका आधार 'राजस्थान' है। 'राजस्थान' की भाति "राजस्थानी भाषा" नाम भी देश विदेश म प्रचलित एव मान्य है।

२२ १। राजस्थानी भाषा का प्राचीन काल म मरुभूमि भाषा[4] मारुभाषा[5],

---

१ — लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड ६, भाग २, पृ० १।

२ — राजस्थानी भाषा पृ० ५,६।

३ — राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २—५।

४ — 'मरुभूम भाषा तणो मारग रस म्राछो रीत सु" रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि मछ कृत नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

५ — "कर आणद वेस वहण मारु भाषा' बडो पाबू प्रकाश, मोडजी।

मरुदेशीया भाषा [1] और मरुवाणी [2] आदि नामों से अभिहित किया गया है। राजस्थानी का साहित्यिक रूप मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी रहा है और इस रूप में साहित्य भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त होता है। मारवाड़ राजस्थान का विशेष भू भाग है और मारवाड़ी विस्तारक्षेत्र, जनसंख्या एवं साहित्य की दृष्टि से अनेक भारतीय भाषाओं से बढ़कर है। राजस्थानी भाषा का समस्त राजस्थान में प्रचलित एक विशेष शैली 'डिंगल' भी मुख्यतः मारवाड़ी पर ही आधारित है। उक्त कारणों से मारवाड़ी को राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप माना गया है।

ड राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

२३ १। भाषागत और जातिगत विशेषताओं के आधार पर संसार की भाषाएँ १४ परिवारों में विभक्त की गई है जिनमें 'भारत जर्मनिक' अथवा 'भारत युरोपीय' परिवार भी है।[3] इस भाषा परिवार में समस्त उत्तरी भारत की भाषाएं ईरान अफगानिस्तान और पाकिस्तान की भाषाएं तथा समस्त युरोपीय भाषाओं का समावेश होता है। भारत जर्मनिक' कहने से भारत और जर्मनी की भाषाओं का ही बोध होता है तथा भारत युरोपीय कहने से भारत और युरोप का ही बोध होता है और इस भाषा-परिवार से सम्बद्ध अन्य प्रदेश छूट जाते है। दक्षिण भारत की भाषाएं द्रविड परिवार की हैं जिनका समावेश इस परिवार मे नहीं किया जा सकता। इसलिये उक्त दोनों ही नाम त्रुटिपूर्ण हैं। इस परिवार से सम्बद्ध देशों के निवासी मूलतः आर्य माने गये हैं इसलिये इसका नाम "आर्य भाषा परिवार" सर्वथा उपयुक्त है।[4]

२४ १। आर्य-भाषा परिवार की भारतीय शाखा में सर्वप्रथम ऋग्वैदिक भाषा के रूप प्राप्त होते है। ऋग्वेद का समय १५०० ई पू० माना गया है। वैदिक भाषा मे सम्बद्ध जनता द्वारा धीरे धीरे परिवर्तन होने लगे इसलिये वैयाकरणों ने नियमों-उपनियमों द्वारा इसको 'संस्कृत' करने का प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा पाणिनि (५०० ई० पू०) ने अपने व्याकरणगत नियमों से इस भाषा को 'संस्कृत' रूप मे सदा के लिये सुरक्षित कर दिया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा का उक्त विकास काल १५०० ई० पू० तक माना गया है।

२५ १। भाषा का संस्कृत रूप स्थिर हो जाने पर भी लौकिक भाषा में परिवर्तन होते रहे। कालान्तर में यह नव-विकसित भाषा साहित्य सम्पन्न भी हो गई। मुख्यतः बौद्धों

१ – प्रायो मरुदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा वंशभास्कर महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण।

२ – डिंगल उपनामक कृतक मरुवाणीहु विधेय वंशभास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण।

३ – भाषा-विज्ञान डा० भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद (१९६१) पृ० ९०।

४ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० ७।

और जैनो ने इस भाषा में साहित्य रचना की। इस भाषा को 'प्राकृत' कहा गया। प्रारंभिक रूपों को "पाली–प्राकृत" और "अर्द्धमागधी" कहा गया। कालांतर में मागधी शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतों में भी साहित्य रचना हुई। 'प्राकृत' भी व्याकरण के नियमों से बद्ध हो गई तो जनता द्वारा एक नवीन भाषा का विकास हुआ जिसको, "अपभ्रंश" कहा गया। भरत मुनि के नाट्यशास्त्रानुसार अपभ्रंश नाम देश–भाषा के रूप में दूसरी तीसरी सदी ई० में प्राप्त होने लगता है। आचार्य मार्कण्डेय के मतानुसार अपभ्रंश के मुख्यतः तीन रूप माने गये हैं— १ नागर २ ब्राचड और ३ उपनागर।[1] स्थान–भेद के अनुसार अपभ्रंश के उपभेदों की संख्या प्राकृत चन्द्रिका में सत्ताईस बताई गई है —

> ब्राचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरो।
> वार्बरावन्त्यपाचालटाक्कमालवकैकया॥
> गौडोढ्रहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसैंहला।
> कालिङ्ग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविडगौर्जरा॥
> आभीरो मध्यदेशीय सूक्ष्मभेदव्यवस्थिता।
> सप्तविंशत्यपभ्रंशा वैतालादिप्रभेदतः॥

२६ १। नागर अपभ्रंश उक्त अपभ्रंश रूपों में मुख्य माना गया है। नागर अपभ्रंश राजस्थान की अपनी भाषा थी और अपने समय की प्रधान साहित्य सम्पन्न भाषा भी थी। नागर अपभ्रंश का प्रसार सम्पूर्ण राजस्थान के साथ अधिकांश उत्तर भारत में था। नागर अपभ्रंश का व्याकरण हेमचन्द्राचार्य ने लिखा। इसी नागर अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई।

२७ १। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति 'नागर अपभ्रंश' से होने में सन्देह प्रकट करते हुए कतिपय विद्वानों ने 'नागर अपभ्रंश' के स्थान पर भिन्न नाम प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण स्वरूप रिचार्ड पिशल[2] और डा० एल० पी० तैस्सीतोरी[3] ने 'शौरसेनी अपभ्रंश' से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति मानी है। यहां ध्यान में रखने योग्य बात है कि 'शौरसेनी अपभ्रंश' जैसा नाम हमारे प्राचीन साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं है तो अब इसकी कल्पना कर "राजस्थानी" जैसी साहित्य सम्पन्न भाषा की उत्पत्ति 'शौरसेनी अपभ्रंश' से कैसे मानी जा सकती है? श्री कन्हैयालाल माणिक्लाल मुन्शी[4], पुरातत्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी[5]

---

१ – प्राकृतसर्वस्व अ० ७।

२ – प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी, पृ० ६–७।

३ – पुरानी राजस्थानी अनु० डा० नामवरसिंह, भूमिका, पृ० १।

४ – अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सभापति का भाषण, ३३ वां उदयपुर अधिवेशन का विवरण ? पृ० ६।

५ – कान्हड़दे प्रबन्ध, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, प्रास्ताविक वक्तव्य पृ० ५।

और भा० गु० लैं० लि०[1] में 'नागर अपभ्रंश' के स्थान पर 'गुर्जरी अपभ्रंश' नाम दिया है। इस नाम के विषय में भी यही शंका सामने आती है जिसका उल्लेख शौरसेनी अपभ्रंश के सम्बन्ध में किया गया है। साथ ही 'गुर्जरी' का क्षेत्र गुजरात ही हो सकता है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति 'सौराष्ट्र अपभ्रंश' से बताई है[2] जिसके विषय में भी उक्त शंका होती है। सौराष्ट्र का क्षेत्र भी बहुत संकीर्ण है। राजस्थानी भाषा का उद्गम नागर अपभ्रंश से मानने में यह आपत्ति उठाई गई है कि नागर अपभ्रंश से नागर जाति की अपभ्रंश से तात्पर्य है अथवा नागरिकों की अपभ्रंश से?[3] वास्तव में नागर अपभ्रंश के नाम का नागर जाति अथवा नगर से सम्बन्ध बताना हमारी कल्पना मात्र है। नागर अपभ्रंश का प्रचलित अर्थ राजस्थान और गुजरात में प्रचलित साहित्यिक अपभ्रंश है। नागर अपभ्रंश के स्थान पर कोई दूसरा प्रयोग हो सकता है तो हमारे मत में 'मरुगुर्जरी अपभ्रंश' सर्वथा उपयुक्त होगा। पश्चिमी राजस्थान और गुजरात की भाषा की समानता को तो डा० एल० पी० तैस्सितोरी[4] और डा० ग्रियर्सन[5] ने एक ही माना है। डा० तैस्सितोरी ने गुजराती की उत्पत्ति भी इसी आधार पश्चिमी राजस्थानी से विकास और पतन के परिणामस्वरूप बताई है।[6] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने स्वीकार किया है कि यह प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी शौरसेनी अथवा मध्यदेशीय प्राकृत से भिन्न था और राजस्थानी गुजराती का मेल पश्चिमी-पंजाबी से तथा कुछ कुछ सिन्धी से है किन्तु मध्यदेश की बोली से नहीं है। साथ ही डा० चाटुर्ज्या ने यह भी प्रकट किया है कि राजस्थान में जो आर्य भाषा आई वह मध्यदेश की ओर से नहीं आई और सम्भव है कि वह हिमालय मालाराठी अथवा उदयपुर की राह से आई है।[7] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शौरसेनी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति न होकर राजस्थान में प्रचलित नागर अपभ्रंश से ही हुई है।

२८.१। अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा के बीच सीमा रेखा निश्चित करना एक कठिन कार्य माना गया है। राजस्थानी भाषा के प्राचीनतम रूप विक्रमीय ८ वीं शताब्दी से

---

१ – गुजराती लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, भा० २ पृ० ६।

२ – राजस्थानी भाषा पृ० ४५।

३ – प० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३।

४ – पुरानी राजस्थानी अनु० नामवरसिंह काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, भूमिका पृ० १०।

५ – लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया खण्ड ९, भाग ६, पृ० १५।

६ – पुरानी राजस्थानी, अनु० नामवरसिंह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, और 'ओरीजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बंगाली लैंग्वेज', डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भाग १, पृ० ९।

७ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, शोध संस्थान, उदयपुर, पृ० ४५ ४७।

प्राप्त होते हैं।[1] शालिभद्र सूरि रचित "भरतेश्वर बाहुबली रास" का रचनाकाल वि० स० १२४१ है।[2] १३वीं सदी की अन्य राजस्थानी भाषा की रचनाओं में "जंबूस्वामी चरित"[3] 'स्थूलिभद्र रास[4]", रेवतगिरि रास[5]' 'आबू रास[6]" और चन्दनबाला रास[7]" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं से प्रकट है कि १३वीं सदी वि० में राजस्थानी भाषा ने विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। किसी भाषा को बोल-चाल के स्तर से विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त करने में कुछ शताब्दियों का समय अवश्य लगता है।

२६१। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भवकाल महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध सामन्त युग' के रूप में ७६० ई० निर्धारित करते हुए इस युग के साहित्य को समस्त भारतीय आर्य भाषाओं की सम्मिलित निधि घोषित किया है।[8] डा० रामकुमार वर्मा ने इस युग को "सन्धिकाल" की संज्ञा देते हुए इसका प्रारम्भ स० ७५० वि० माना है।[9] राजस्थानी भाषा और साहित्य का प्रारम्भकाल प० मोतीलाल जी मेनारिया १०४५ वि० स० से[10], श्री नरोत्तमदास जी स्वामी स० ११५० वि० से[11] और श्री उदयसिंह भटनागर वि०स० ७०० (६४३ ई०) से[12] मानते हैं। इस विषय में उल्लेखनीय

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, भूमिका पृ० ८८।

२ – क – भारतीय विद्या, स० मुनि जिनविजय जी, भाग २, अंक १ पृ० ११६।
ख – हिन्दी काव्यधारा राहुल सांकृत्यायन पृ० ३६८-४०८।

३, ४, ५ – जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भाग १, पृ० १४ और भाग ३ पृ० ३६१-३६७।

६ – राजस्थानी त्रैमासिक, कलकत्ता, भाग ३, अंक १।

७ – राजस्थान भारती, बीकानेर भाग ३, अंक ३-४।

८ – हिन्दी काव्य धारा किताबमहल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, (१९४५ ई०), भूमिका पृ० १२।

९ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल प्रयाग, चौथा संस्करण (१९५८ ई०), पृ० ५०।

१० – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ७७।

११ – राजस्थानी साहित्य एक परिचय नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर, पृ० २२।

१२ – राजस्थानी साहित्य विषयक निबंध, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, स०— डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) और ब्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, (१९५९ ई०) पृ० ५१६।

है कि यह भाषा का प्राचीनतम लिखित प्रमाण सं० ८३५ वि० का प्राप्त हो चुका है।[1] किसी भाषा अथवा बोली को विकसित होकर अपना नाम प्राप्त करने में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का समय अवश्य लग जाता है। साथ ही राजस्थानी के पुष्य कवि वि०सं० ७०० (६४३ ई०)[2] देवसेना कृत चतुर्वीन भाष्य वि०सं० ९०० (८४३ ई०)[3], गोरखनाथ कृत गोरखवाणी वि० सं० ९०० (ई० ८४३)[4], खुमाण कृत खुमाण रासो वि० सं० ९०० (ई० ८४३)[5] और देवसेन वि०सं० ९९० (ई० ९३३) कृत सावयधम्म दोहा और दर्शनसार[6] की उपलब्धि भी हो गयी है। इसलिए राजस्थानी भाषा के उत्पत्ति काल को ८ वीं सदी विक्रमी का प्रथम चरण मानना उचित होगा।

च. राजस्थानी भाषा का विकास

३०१। राजस्थानी भाषा के विकास काल को मोटे रूप से निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) प्रस्तावना काल— वि०सं० ८०७ (७५०ई०) से वि० सं० १०५७ (१००० ई०)

(आ) प्राचीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १०५८ (१००१ ई०) से वि०सं० १५५७ (१५०० ई०)

(इ) मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १५५८ (१५०१ ई०) से वि०सं० १९०७ (१८५० ई०)

(ई) आधुनिक राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १९०८ (१८५१ ई०) से प्रारम्भ।

अ. राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना काल —

३११। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावनाकालीन रूप प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं होते जिसका मुख्य कारण यह है कि इस काल का अधिकांश साहित्य श्रुतिनिष्ठ था। श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने ९वीं सदी के ऐसे राजस्थानी नायकों और जोगियों का वर्णन

---

१ – मुनि उद्योतन सूरि रचित कुवलय माला राजस्थानी शब्द कोष, पृ० ८८।

२, ३, ४, ५, ६ – राजस्थानी साहित्य विषयक निबन्ध, लेखक – प्रो० उदयसिंह भटनागर, हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड, सम्पादक – डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) और ब्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग (१९५९ ई०)।

किया है जिनका मुख्य कार्य पूर्वजों द्वारा सुनाई हुई रचनाओं को कण्ठस्थ रख कर जनता को सुनाना था।[1] भाषा विशेष में प्रारम्भिक साहित्य प्रायः मौखिक होता है। उदाहरण स्वरूप— वेद पुराण, उपनिषद् आदि को लिया जा सकता है जो आरम्भ में मौखिक थे और कालान्तर में लिपिबद्ध किये गये। आधुनिक काल में मौखिक रूप में प्रचलित लोकसाहित्य का मूल इसी कारण देश में प्राप्त होता है।[2]

३२ १। नागर अपभ्रंश का प्रभाव समस्त उत्तरी भारत में था अतएव नागर अपभ्रंश से विकसित होने वाली प्राचीन राजस्थानी का प्रभाव भी अधिकांश उत्तरी भारत में रहा। राजस्थानी भाषा का प्रभाव कभी पूर्व में काशी तक था यह कबीर की रचनाओं और भाषा से प्रमाणित हो चुका है।[3]

३३ १। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावना काल में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे इसलिए परम्परागत शान्त रस मयी अपभ्रंश की धारा में परिवर्तन होकर वीर रस मयी राजस्थानी काव्य धारा का विकास प्रारम्भ हुआ।

३४ १। प्रस्तावनाकालीन राजस्थानी के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं—

गुरु उवएं से अमिय रसु, धाव न पीअउ जेहि।
बहु सत्थत्थ मरुत्थलहिं तिसिण मरिअउ तेहि॥
चिन्ताचिन्ति वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु।
गुरु वअणे दिढ मति करु, होइजई सहज उलालु॥ — सरहपा (७६ ई०)[4]

कसिण कमल दल लोयण चल रेहंत ओ।
पीण पिहुल थण कडियल भार किलंत ओ॥
ताण चलिर बालियावलि कलयळ सद्द ओ।
रास रम्मिजइ लब्भइ जुवई सत्थ ओ॥ — उद्योतन सूरि (७७९ ई०)[5]

---

१ – "डिंगल भाषा और उसका साहित्य" सौरभ झालावाड़, भाग १, संख्या १।

२ – क – रेवरेंड सर जी० डबल्यू० कॉक्स, दी माइथोलोजी आफ दी आयन नेशन्स, प्रथम अध्याय।

ख – शोध पत्रिका, उदयपुर, वर्ष २, अंक १ में प्रकाशित सम्पादकीय, लेखक पुरुषोत्तमलाल मेनारिया।

३ – ढोला मारू रा दूहा (सूर्यकरण पारीक, रामसिंह और नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रस्तावना, पृ० १६७ १७८।

४ – हिन्दी काव्य धारा राहुल सांकृत्यायन पृ० ८ १०।

५ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ० ८८।

(२) अपभ्रंश के दो स्वर-समूहों 'अइ' और 'अउ' के उद्वृत्त रू अर्थात् इनमें से प्रत्येक समूह के दो स्वर दो अक्षर माने जाते थे। जैसे- अच्छइ (अप०), अछइ (प्रा० रा०)। अपभ्रंश 'अइ' और 'अउ' संकुचित होकर क्रमशः गुजराती में 'ए' और 'ओ' तथा आधुनिक राजस्थानी में 'ऐ' और 'औ' हो जाते हैं।[1]

३६ १। प्राचीन राजस्थानी भाषा में मुख्यतः जैन आचार्यों, साधु साध्विय लिया, चारणों और कविरावों ने अपनी विभिन्न विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं। प्राची राजस्थानी भाषा की एक प्रधान विशेषता यह है कि इसमें पद्य के साथ गद्य भी प्रा ता है। प्राचीन राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

सदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाई।
जो कारणगुलि मूंदडउ सो बाहडी समाई॥
सुनारइ जिम यह हिइउ, पिय उक्कखि करेई।
विरह हुयासी दहेवि करि, आसाजलि सिंचेई॥

—अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)[2]

गयण मग्ग-सलग्ग लोल कल्लोल परपरू।
णिक्करणुक्ख उ नक्क चक्क चकमण दुहकरू॥
उच्छलत-गुरु-पुच्छ मच्छ रिछोलिनिरतरू।
विलसमाण जालाजडाल रउवानल दुत्तरू॥
आवत्त मयायम्नु जलहि लहु गोपउ जिवते नित्थरहि।
नीसेस वसण-गण निट्ठवणु पासनाहु जे सभरहि॥

—सोमप्रभु सूरि (वि० स० १२४१)[3]

एक्कणि वनि बसतड़ा एडउ अतर काइ।
सोह क्वडडी ना लहइ गैवर लक्ख विकाइ॥
गैवर गलै गळथोयो, जह खचै तह जाइ।
सोह गळथ्थण जे सहे तो दह लक्ख विकाइ॥

—सिवदास चारण (वि०सं० १४८५)[4]

---

१ — पुरानी राजस्थानी, डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, डा० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, पृ० ७८।

२ — सदेस रासक सिंघी जैन ग्रन्थ-माला सं० मुनि श्री जिनविजयजी भारतीय विद्या भवन बम्बई।

३ — कुमारपाल प्रतिबोध र० का० वि०स० १२४१।

४ — अचलदास खीची री वचनिका सं० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

किलकिलती वन विचरती, वेली वर वीसास।
सधि सामी साहस कीउ, हूं एकली निरास ॥
भणि असाइत भव अंतरि, समरि सामणि कंत।
हसाउलि धरती ढली, पिउ पिउ मुखिय भणंति ॥

— असाइत, र० का० वि०स० १४२७।[1]

हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर भरि ईडरवइ आइउ।
खान खवास खेलि वलि धायु, ईडर अहर दुग्गतल गाहु।
दमदमकार दमाम दमक्कइ, ढमढम ढमढम ढोल ढमक्कइ।
तरवर तववर वेस पहुटटइ, तरतर तुरक पडइ तलहटटइ।

— श्रीधर, वि०स० १४५७।[2]

राजा अनइ महामात्यु बे जणा अश्वापहारइ तउ अटवी माहि गया। भूखिया हुया। बणफल खाधा। नगरि आविया। राजा सूपकार तेडी करी कहइ। जिके भक्ष्यभेद संभवइ ति सगलाई करउ। सूपकारे कीधा। राजा आगइ आणिया। राजेंद्रि चीतविउ। मधुर मोदक पूयकादिक भक्ष्य भेद पाछेई भाविसिई। इणि कारणि पहिलउ बाकुल ढोकलादिक भक्ष्य भेद भखी करी पाछइ मधुराहार भक्षणु कीधउ।

—तरुणप्रभ सूरि (१३५८ ई०)

इ मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काल—

४० १। मध्यकालीन राजस्थानी भाषा का समय १५०१ ई० से १८५० ई० है। सोलहवीं सदी ईस्वी के प्रारम्भ मे गुजरात पर पूर्णत मुस्लिम शासकों का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। इसी समय गुजराती का विकास एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में होने लगता है और राजस्थानी से इसमे भिन्नता दृष्टिगोचर होने लगती है। राजस्थान और गुजरात के चारण साहित्यकार तथा जैन साधु एव साध्वियां अवश्य ही राजस्थान गुजरात की सांस्कृतिक एकता बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इस काल की अनेक चारण और जैन रचनाएं राजस्थान और गुजरात मे समान रूप से लोकप्रिय रहीं। राजस्थानी भाषा और साहित्य से गुजराती भाषा और साहित्य उसकी सन्तान के रूप मे पोषण शक्ति सतत् प्राप्त करते रहे।

४१ १। मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काव्य की एक प्रधान शैली 'डिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। डिंगल का मुख्य आधार मारवाडी बोली है, जिसको चारण कवियों ने अधिक अपनाया। डिंगल शैली का प्रचलन राजस्थान के सभी भागों मे हुआ। साथ ही मध्यप्रदेश और गुजरात के चारण कवियों तथा उनके अनुयायियों ने भी इसी शैली का प्रयोग किया।

---

१ व २ – प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ६, स डा० गोवर्धन शर्मा 'असाइत' पृ० १४ २५, 'श्रीधर' पृ० ३६ ५२, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान उदयपुर।

४२ १। शब्दों में "अइ" के स्थान पर 'ऐ' और "अउ" के स्थान पर "औ" रूप प्रचलित होने लगे थे। कतिपय शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

'अइ' के स्थान पर ए— उन्हाले (उन्हालइ), सियाले (सियालइ), जागिये (जागियइ)

'अउ" के स्थान पर ओ— उनमियो (उनमिअउ), जागियो (जागियउ)

द्वित्वगण— कडक्क, फडक्क, उठठ, उडिडय लग्गिय, मग्गिय आदि।

४३ १। राजस्थानी साहित्य की एक शास्त्रीय शैली के रूप में डिंगल स्थिर सी हो गई और राजस्थान के प्रायः सभी भाषा के साहित्यकार, मुख्यतः चारण कवियों ने इसमें विविध विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं। मध्यकालीन राजस्थानी में "गीत" और "दूहा" नामक छन्दों का प्राधान्य रहा।

मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली का दर्शन— मीरां, चन्द्रसखी दयाबाई, दादू और अनेक जैन कवियों की रचनाओं में होता है। मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली के अंतर्गत पिंगल भी प्रचलित हुई जिस पर व्रज भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

४४ १। मध्यकालीन राजस्थानी में विविध शैलियों और विषयों के पद्य के साथ ही गद्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया। मध्यकालीन राजस्थानी गद्य की विविध विधाओं के रूप में ख्यात, बात, वंशावली, वचा, हाल, हकीकत, विगत, पीढ़ी, याद आदि लिखे गये तथा संस्कृत और फारसी ग्रन्थों के अनुवाद भी किये गये। टीका ग्रन्थों, शिलालेखों और पट्टा परवाना के रूप में भी पर्याप्त राजस्थानी गद्य उपलब्ध होता है।[1]

४५ १। मध्यकालीन राजस्थानी भाषा में देशज शब्दों के साथ ही संस्कृत, तुर्की, अरबी और फारसी के तत्सम तथा तद्भव शब्द भी प्रचुर मात्रा में सम्मिलित हो गये। मध्यकालीन राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

> रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटाकडि ऊडइ।
> तुरक तणा पाखरिया तेजी, ते तरुआरे गूडइ॥
> माल तणी परि बाथे आवइ, प्राणइ बिलगइ फूटइ।
> गुडरा पाटू चोट बजावइ भिडइ प्रहार मोटइ॥
> ऊपरिया पूनार विछुटइ भूतलि जाजइ पाउ।
> वाढा सूढि ढालीइ ढाचा, धरणि बलइ नीहाउ॥

---

१ – क – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम जी लालस सम्पादकीय प्रस्तावना।
ख – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी गद्य।

भाजइ कध पडइ रिण माथा, धगड तणा धड धाइ ।
माहो माहि मारेवा लागा विगति किसी न कहाइ ॥ '

— पद्मनाभ कृत कान्हडदे प्रबन्ध (र० का० वि० स० १५१२)

'ते घोडा गंगोदकि स्नान कराव्या । तेह तणि सिरि श्री कमलि पूजा कीधी । तेह तणि पूठि बावनो चदन तणा हाथो दीधा । तेही तणि पूठि पच वर्ण पखर ढाली । किसी पखर— रणपखर, जीणपखर, गुडिपखर, लोहपखर, कातलीयाली पखर ।

— पद्मनाभ कृत कान्हडदे प्रबन्ध (र० का० वि० स० १५१२)[1]

फागुण केरा फणगरा, फिरि फिरि गाई फाग ।
चग बजावइ चग परि, आलवइ पचम राग ॥
केलि कुसु मा केरडा, केसर सुरतरु सोय ।
माधव कीजइ छाटणा, भ्रमर आश्चयइ जोइ ॥

— गणपति कृत माधवानल कामकन्दला, (र० का० वि० स० १५७४)[3]

स्याम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊ बाटडिया ।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पडत है आखडिया ।
तळफत तळफत बहु दिन बीता, पडी विरह की पासडिया ।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुमरी दासडिया ।
नैण दुखी दरसणकू तरसे, नाभि न बैठे सासडिया ॥
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखे पासडिया ।
लगी लगन छूटण की नाही, अब क्यू कीजे आटडिया ।
मीरा के प्रभू कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसडिया ॥

— मीरांबाई (वि० स० १५५५-१६०३)

ऊठि अचू का बोलणा, नारी पयपे नाह । घोण पाखर धमधमी सीधू राग हुवाह ॥
हुवो अति सीधवो राग बागी हका । थाट आया पिसण थाट लागे थका ॥
अखाडा जीति खग अरि घडा खोलणा । ऊठि हरधवल सुत अचु का बोलणा ॥

— ईसरदास बारहठ (वि० स० १५९५ १६७५)[4]

---

१ – स० श्री के० बी० व्यास, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

२ – वही ।

३ – प्रका० गायकवाड ओरिएटल सिरीज, विश्व विद्यालय, बडोदा ।

४ – हालां भाला रा कुण्डलिया, स० प० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ५, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर ।

सागो धरम महाय बाबर सू भिड़ियो बिहस ।
अकबर कदमा आय, पड़े न राण प्रतापसी ॥
अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिंदू अवर ।
जागे जगदातार पोहरे राण प्रतापसी ॥

— दुरसाजी आढ़ा (वि०स० १५९२ १७१२)[1]

पहिलो मुख राग प्रगट थियो प्राची अरुण कि अरुणोदय अम्बर ।
पेखे तिरि जागिया पयोहर, सझया वदण रिखेसर ॥

—महाराज पृथ्वीराज राठौड़ (वि० स० १६०६-१६५७)[2]

दादू इण ससार सो, निमख न कीजो नेह ।
जामण मरण आवटण, छिन छिन दाझै देह ॥
दादू सब जग निरधना धनवता नहिं कोइ ।
सो धनवता जाणिए, जाकै राम पदारथ होइ ॥

— दादूदयालजी (वि० स० १६०१ १६६०)[3]

सखि आयउ सावण मास पिउ नही माहरइ पासि ।
कत विना हू करतार, कीधी कि सामणी नारि ॥
भाद्रवइ बरसइ मेह बिरहण धूजइ दह ।
गयउ नेमि गढ गिरनारि निरवही न सकी नारि ॥

— समयसुन्दर (वि० स० १६२० १७०२)[4]

सुणि रामो सबळ रो एम बालिया अडीखभ ।
विडग आरि दळ विलद जवन लग हणू रूप जंम ॥
धण भलू सग घाव, साम निज काम सुधारू ।
सिर समपू सकर नू रभ चौसरि गळ धारू ॥
जग तणी माह माया तजू जिम गोपीचद भरथरी ।
चन्दि रथां अमरपुर मक्ति चढू, अमर कीत सज आपरी ॥

— कविया करणीदान (र० का० वि०स० १७८७)[5]

---

१ – विरुद छिहत्तरी, प्रताप सभा उदयपुर ।
२ – वेलि क्रिसन रुकमणी री छंद सं० ११ ।
३ – दादूवाणी ।
४ – बारहमासा समय-सुन्दर कृत कुसुमांजली, सं० श्री अगरचन्द नाहटा और श्री भंवर लाल नाहटा, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
५ – सूरजप्रकाश, सं० श्री सीताराम लालस, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

सावो मित्र सचेत, कहो काम न करे किसो।
हर अरजण रे हेत, रथ कर हांक्या राजिया ।।
मलयागिरि मझार, हर कोइ तरु चंदण हुवै ।
संगत लहै सुधार, रूंखा ने ही राजिया ।।

—कृपाराम खिड़िया (१९ वीं सदी वि०)[1]

ई आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल—

४६ १। आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल का आरम्भ सन् १८५१ ई० से होता है। आधुनिक राजस्थानी भाषा की प्रधान विशेषता यह है कि इसको "डिंगल" के विविध बंधनों से मुक्ति मिल गई है, जिसके परिणाम स्वरूप राजस्थानी का रूप जनता के लिए सर्वथा निकट एवं बोधगम्य हो गया है। उदाहरण के लिए केसरीसिंह बारहठ, कोटा (१८७३ १९४२ ई०) ऊमरदान लालस (ज० सं० १९०८), नाथूदान महियारिया (जन्म १८९२ ई०) और शक्तिदान कविया (जन्म १९४० ई०) आदि की सरल सरस रचनाओं को देखा जा सकता है।

राजस्थानी भाषा की लौकिक शैली भी आधुनिक काल में विकसित होती रही। मीरां और दादू आदि संतों की लौकिक शैली में ही आधुनिक काल में महाराज चतुरसिंहजी ने विविध विषयक गद्य और पद्यमयी रचनाएं लिखी जिनका जनता में विशेष प्रचार हुआ।

४७ १। पश्चिमी भाषा-साहित्य का प्रभाव भी आधुनिक राजस्थानी भाषा पर दृष्टिगत होता है। उदाहरण स्वरूप यूरोपीय भाषाओं के अनेक शब्द आधुनिक राजस्थानी भाषा में सम्मिलित हो गये हैं। यथा —

'अफसर, अरदली, अलमारी, अस्पताल, ईंजण, इस्कूल, इस्टेसण, ओफिस, एडवोकेट, कंडक्टर, कप कम्पाउंडर कालर किताब, कुली, गारड गिलास चाकलेट, चैक, चेयरमैन, टिकट, टेम, टेलीफून, टेसण, दराज, नोटिस, डाक्टर, डिप्टी नेकलेस, पिन पेनसिल, फाइल, फुटबोल, फुन, बटण बाइसिकल, बुरश बूट, बैंक, बोर्ड, मनीआडर, मास्टर, मिलेट्री, मोटर, रूल, रेल, रेल्वे, वोट, साइकल, सिगल, सैंडल, सोडा, हाल्डर।" आदि।

४८ १। आधुनिक राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

रहट फरे चरख्यो फरे, पण फरबा में फेर।
यो तो बाड हरयो करे, वो छूंता रा ढेर।।

---

१ – राजिया रा दूहा, हिंदी पुस्तक मंदिर, जोधपुर।

कारड तो कहतो फरे, हर कीनै हकनाक।
जा री व्है व्हीनै कहै, हिये लिफाफो राख॥

—महाराज चतुरसिंह (वि०स० १९३३ १९८६)[1]

सत ऊजळ सदेस, उदयराज ऊजळ अखै।
दीपै वारो देस ज्यारो साहित जगमगै॥
रटा वीर रजथान रा, साचो मत्र सदीव।
जीवै देस समाज वै, साहित जिका सजीव॥

—श्री उदयराज उज्ज्वल (जन्म वि० स० १९४२, वतमान)[2]

'राजस्थानी साहित्य मे जको तेज पैली हो वो ही आज भी है, कठै ही गयो कोनी। राजस्थान रे आज रे कवि म भी वाही प्रतिभा, वाही देशप्रेम, वाही आत्माभिमान वो ही तेज और वा ही आग भरी है। गाव गाव म आज भी इसा कवि बैठा है। पण वे प्रकाश म कोनी आवे। राजस्थानी रो आ नवा साहित्य प्रकाश म आवसी जके दिन ससार देखसी के राजस्थानी साहित्य रो तेज काई भाव घटयो कोनी।

—ठाकुर रामसिंह (जन्म स० १९५६, वतमान)[3]

पसवाडो मत फेर निंदालू, जागण री वेळा आई।
दिन उग्यो चिडकोली बोलो, आभे मैं लाली छाई।
माटी मुळकी, बीज पमीज्या, फूल पत पर जोबण छायो
फल पातडी बिछिया वण गी धरती रा मन अगरायो।
थोडी सी जे आख माज ली, निजर घणो ही आवेलो।
जे देखी अण दखी कर दी, बिना मोत मर जावेलो॥

—श्री मेघराज मुकुल' (जन्म स० १९८० वतमान)[4]

विरह

औरे अखर प्रीत रा भूलणा,
यां फलिया जोवण मद उमलै।
अभाव री अमली पोड
परसण रा छिण मणमणा
उर पतडा अनरै।

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलाल जी मेनारिया, पृ० २५८।
२ – राजस्थान की रसधारा पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २६, २८।
३ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २२।
४ – राजस्थान के कवि, भाग २, सम्पादक श्री रावत सारस्वत राजस्थान साहित्य एकेडेमी उदयपुर, पृ० ११६।

था सो बोभाळ न हरगिर आवम्यो,
था सो खरो न बासग जेर ।
पल पल कळप कलपना रो ।

— श्री नारायण सिंह भाटी (वर्तमान)[1]

अडवो ऊभ्यो खेत में,
सोनो निपजे रेत में,
खबरदार ! हरियाळी खेती रे कुण नजर लगावे,
रात अंधेरी बाड तोड ओ कुण छाने सी आवे ?
ऊजड चाले रे,
हरी भरी खेती घूमर घाले रे ।

— श्री गजानन वर्मा (वर्तमान)[2]

रगभीने परभात, पवन री मुधरो हेलो ।
चहके बैठी छान, कहैयो वो अलबेलो ।
कूकड री कुरळाट, सिकारी सीगी चाला ।
पण पोढया घर सेज, पुरस नी जागरा वाला ।।
बा पौढणिया काज, हम नी तपणी जगसी ।
साभ्र समै घरनार, सजीरे फेर न लगसी ।
बाबल माता पेख, बालिया हुडी न करसी ।
वाला होडाहोड, फेर नी कडिया चढसी ।।

— टामस ग्रे की "एलीजी" का राजस्थानी पद्यानुवाद
— श्री शक्तिदान कविया (वर्तमान)[3]

४ ललित कलाएं और राजस्थानी साहित्य

४६ १ । राजस्थान प्रदेश की महानता और विविधता के अनुरूप ही यहा की ललित कलाएं महान् हैं । राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण में मरुस्थलीय टीबा , भरी-हरी पर्वत श्रेणियो, उपजाऊ घाटियों, कल-कल निनादिनि सरिताओ और सुविस्तृत सरोवरा का अपूर्व सामजस्य हुआ है । राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण की विविधताओं से प्रेरित राजस्थानी

---

१ – राजस्थान के कवि, भाग २, पृ० ७७ ।
२ – सोनो निपजे रेत मे ।
३ – वाणी, मासिक, सं० श्री विजयदान देथा रूपायन प्रकाशन, बोरुन्दा (जोधपुर), अंक १ ।

कलाओं में भी मोहक विविधताओं का अनूठा सामंजस्य हुआ है। राजस्थानी साहित्य का संगीत चित्र और नृत्य से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है इसलिए सम्बन्धित कलाओं पर दृष्टिपात करना सर्वथा प्रासंगिक होगा।

क. संगीत

५० १। भारतीय संस्कृति का एक श्रीसम्पन्न केन्द्र होने से राजस्थान में भी भारतीय संगीत का विकास हुआ। राजस्थान के राजपूत नरेशों और सामन्तों ने न केवल संगीतज्ञों को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन दिया वरन् अनेक बार स्वयं भी संगीत के उत्थान में सक्रिय भाग लिया। राजस्थान के विविध तीर्थों और मन्दिरों आदि धार्मिक केन्द्रों से भी संगीत को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। राजस्थान के अनेक भक्त कवियों ने संगीत की विविध राग रागिनियों के अनुसार गेय पदों की रचना कर संगीत और साहित्य की एकता को प्रतिष्ठित किया। साथ ही मुगल साम्राज्य के पतन काल में अनेक प्रमुख भारतीय संगीतज्ञों और उनके घरानों को राजस्थान के राज-दरबारों में प्रश्रय प्राप्त हुआ।

५१ १। महाराणा कुम्भा (वि० सं० १४९० १५२५) स्वयं संगीतशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे जिन्होंने संगीत विषयक तीन ग्रन्थों की रचना की — संगीतराज संगीतमीमांसा और सूडप्रबन्ध।[1] इनमें से संगीत राज मुख्य है जिसकी रचना १६००० श्लोकों में की गई थी।[2] इस बृहद् ग्रन्थ के कतिपय भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं।[3]

५२ १। भक्त कवयित्री मीरांबाई ने संगीत के विकास में विशेष योग दिया जिनके भक्ति विषयक पदों को सम्पूर्ण देश में भावपूर्वक विभिन्न राग रागिनियों में गाया जाता है। भारतीय संगीत की रागों में 'मीराबाई की मलार' भी प्रसिद्ध है। राजस्थान में प्रचलित रागों में "सिंधु" और "माढ" भी भारतीय संगीत में विशेष स्थान रखते हैं। 'सिंधु राग" वीररस के सर्वथा उपयुक्त माना गया है जिसका उल्लेख राजस्थान के अनेक काव्य-ग्रन्थों में हुआ है—

> हूकले सीधवो वीर कलहल हुवे। वरण कजि अपछरा सूरिया सह वुवे॥
> — हालां झालां रा कुण्डलिया, ईसरदास (वि० स० १५९५ १६७६)[4]

---

१ — महाराणा कुम्भा, डा० हरविलास शारदा, पृ० १६६।

२ — डा० ओझा, रा० इ० जिल्द १ पृ० ३२।

३ — क — नृत्यरत्नकोश, स० रसिकलाल परीख और डा० प्रियबाला शाह, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

ख — संगीत राज स० सी० कुन्हन राजा, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

४ — स० प० मोतीलालजी मेनारिया, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर।

गाज अवाल पड रौल गैणाइया। सालुले सिंधुये राग सरणाइया ।।

— रुक्मणी-हरण, सायाँजी झूला (वि०सं० १६३२ १७०३) [1]

आघा पडवा ओलगण, जागड जीमणजाग। रण भड़तां भड दूर को, सुणसी सीधुराग।।

— वीर सतसई, सूयमल जी (वि० स० १८७२ १९२५) [2]

५३ १। 'माड राग' का भी राजस्थानी काय एव सगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। माड राग की उत्पत्ति जैसलमेर प्रदेश में मानी गई है। [3] माड राग मुख्यत श्रृगार रस के लिये प्रयुक्त होता है। राजस्थानी "दूहा" छन्दो को माड राग में अधिक गाया जाता है।

५४ १। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (वि०स०१७२९ ५५) के शासनकाल मे सगीत विषयक कतिपय महत्वपूर्ण ग्रथ लिखे गये जिनम प० भाव भट्ट कृत सगीत अनूपाकुश, अनूप सगीत विलास और अनूप सगीत रत्नाकर विशेष उल्लेखनीय हैं। [4] महाराजा प्रतापसिंह, जयपुर (स० १८२१ ६०) ने भी राधागोविन्द सगीत सार, राग रत्नाकर और स्वरसागर नामक सगीत सम्बन्धी ग्रथो के निर्माण म योग दिया। [5]

५५ १। राजस्थानी लोकगीतो, पवाडो और ख्यालो (राजस्थानी नाटको) आदि मे भी भारतीय सगीत की अनेक राग रागिनिया और धुनें सुरक्षित हैं। [6] राजस्थानी लोक-सगीत की कतिपय स्वरलिपिया भी तयार की गई हैं, जिनम भारतीय सगीत के अध्ययन मे विशेष सहायता प्राप्त होती है। [7]

५६ १। राजस्थान के अनेक कविया और कवियित्रियो ने संगीत की विविध राग-रागिनिया मे गेय पदो का निर्माण कर सगीत के प्रचार प्रसार में योग दिया है जिनमें

---

१ — स० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ० ४७।

२ — सम्पादक प्रो० कन्हैयालालजी सहल, पतरामजी गौड और ठा० ईश्वरीदानजी आशिया, बगाल हिन्दी मण्डल, ८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता, छ स० ११३, पृ० स० ६३।

३ — राजपूताने का इतिहास, ओझा जिल्द १, पृ० ३१।

४ — बीकानेर राज्य का इतिहास, ओझा, पृ० २८६।

५ — ब्रजनिधि ग्रथावली स० हरिनारायणजी पुरोहित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ० ४८।

६ — क — राजस्थान का लोक सगीत, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर।

ख — राजस्थानी लोक नाटक, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर।

७ — राजस्थान स्वर लहरी, भाग १ और २, श्री देवीलाल सामर और पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर।

मीराबाई (सं० १५५५ १६०३ वि०) के साथ ही चन्द्रसखी (सं० १८८०), दादू (सं १६०१ १६६०), रज्जब (सं०१६२४ १७४६), सुन्दरदास (सं०१६५३ १७४६) महाराजा प्रतापसिंह (सं०१८२१ १८६०वि०) महाराणा जवानसिंह (सं० १८५७ १८९५ वि०) महाराणा सज्जनसिंह (वि० सं० १९३५) महाराजा चतुरसिंह (सं०१९३१ १९८६) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ए. चित्रकला

५७ १। हमारे देश की प्राचीनतम चित्रकला के उदाहरण गुहा चित्रो के रूप में उपलब्ध होते हैं। कालान्तर में हमारे देश में चित्रकला की विशेष उन्नति हुई। अजन्ता गुहा चित्रो के उदाहरण भारतीय चित्रकला के रूप में उत्कृष्ट सिद्ध हुए है। १२ वी सदी ईस्वी के पश्चात् के चित्र हमारे देश में काष्ट-पट्टिकाओं, ताडपत्रों और कागज पर भी मिलने लगते हैं। जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार में प्राप्त काष्ट पट्टिकाओं और ताडपत्रों पर अंकित चित्र हमारे देश की मूल्यवान सम्पत्ति है। धीरे धीरे राजस्थान के राजपूत राजाओं के आश्रय में भारतीय चित्रकला ने विशेष उन्नति की और यह "राजपूत चित्रशैली" अथवा "राजस्थानी चित्रशैली" के रूप में प्रसिद्ध हुई।

५८ १। राजस्थानी चित्रशैली की स्थानीय प्रभाव के कारण विभिन्न उपशैलियां प्रचलित हुई जिनके नाम इस प्रकार है —

५९ १। उदयपुर कलम, जैसलमेर कलम, बीकानेर कलम, जयपुर कलम, अलवर कलम, बूंदी कलम, नाथद्वारा कलम जोधपुर कलम, कोटा कलम और अजमेर कलम। मालवा, कांगडा और बसोली की चित्रशैलियां भी राजस्थानी चित्रशैली से विकसित मानी जाती हैं।

६० १। भारतीय धार्मिक और राजपूती जीवन सम्बन्धी विषय रंगो का चटकीलापन, भावो की गहराई और रेखाओं की मार्मिकता राजस्थानी चित्रशैली की प्रधान विशेषताएं हैं। राजस्थानी चित्रशैली के विभिन्न उत्कृष्ट उदाहरण श्री कृष्ण चरित्र बारहमासा राग रागिनी, राजपूत राजाओ के दरबार, शिकार, रामायण महाभारत श्रीमद्भागवत गीता पंचतन्त्र, कल्पसूत्र दशवैकालिक-सूत्र तथा राजस्थानी साहित्य की विभिन्न रचनाओं जैसे पृथ्वीराज रासो,[१] ढोला मारू रा दूहा[२] सूरजप्रकाश,[३] मधुमालती[४] जलाल-बूबना,[५] सदयवत्स सावलिंगा री वार्ता,[६] आदि पर आधारित प्राप्त होते हैं।

---

१ — सरस्वती भण्डार संग्रह राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान शाखा, उदयपुर।
२ — पुस्तक प्रकाश, उम्मेद भवन जोधपुर।
३ — वही।
४ से ६ — राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर।

६१ १। राजस्थानी चित्रशैली के अनेक नमूने युरोप और अमेरिका के प्रमुख संग्रहालयों में, कलकत्ता दिल्ली, बम्बई और राजस्थान के राजकीय संग्रहालयों में तथा देश-विदेश के अनेक व्यक्तिगत संग्रहों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

६२ १। भारतीय संस्कृति की जितनी गहरी छाप राजस्थानी चित्रशैली पर अंकित है, उतनी किसी अन्य प्रकार के चित्रों पर नहीं। यही कारण है कि राजस्थानी चित्र भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन के विशेष माध्यम बन गये हैं।

ग नृत्य

६३ १। नृत्य का उद्भव मानव जीवन में हर्षातिरेक के अवसरों में हुआ। ऋतु परिवर्तन, देव-पूजा, फसल-पकना, विवाह, सन्तानोत्पत्ति, प्रिय मिलन आदि अवसरों पर मानवों में नाच गान की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। सिंधु घाटी में "हरप्पा" और "मुईन जो-दरो' नामक प्राचीन स्थलों के उत्खनन में नृत्य-मुद्राओं से युक्त एक प्राचीन कांस्य मूर्ति प्राप्त हुई है। इस कांस्य मूर्ति के आधार पर भारतवर्ष में नृत्य का प्रारम्भ ३५०० ई० पू० में सिद्ध हो जाता है।

६४ १। नृत्य के दो प्रधान रूप है— (१) लोक नृत्य और (२) शास्त्रीय नृत्य। भारतवर्ष में अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं, जिनमें नृत्य की प्रारम्भिक सरलता और सादगी है। भारतवर्ष की ग्राम्य जनता लोक-नृत्यों को जीवन के आवश्यक तत्व के रूप में अपनाये हुए है। लोक-नृत्य हमारे धार्मिक, सामाजिक और मनोरंजनात्मक प्रसंगों से सम्बद्ध हो चुके हैं और अनेक अवसरों पर लोक-नृत्य अनिवार्य माने जाते हैं।

६५ १। लोकनृत्य बहुधा सामूहिक होते हैं और स्त्री-पुरुष इनमें सम्मिलित रूप में अथवा अलग अलग भाग लेते हैं। अधिकांश लोक नृत्य वृत्त-नृत्य अथवा अर्द्ध वृत्त नृत्य होते हैं। भारतीय लोक-नृत्यों में पंजाब का भंगड़ा' और 'गिद्धा', गुजरात का 'गर्बा' तथा राजस्थान की 'घूमर' और 'गेर' विशेष प्रसिद्ध हैं। अधिकांश लोक-नृत्य कथाओं गीतों अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं इसलिये लोक नृत्य का साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। भारत के शास्त्रीय नृत्य—कत्थक, मणिपुरी, कथाकली और भरतनाट्यम् भी काव्य अथवा कथा पर आधारित होते हैं।

६६ १। राजस्थानी लोक-नृत्य लोक-गीतों लोक कथाओं अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं। राजस्थानी लोक नृत्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाना चाहिये—

(१) भौगोलिक आधार पर

मारवाड़ के लोक नृत्य, पूर्वी राजस्थान के लोकनृत्य, हाड़ौती लोक नृत्य, मेवाड़ के लोक नृत्य और भील प्रदेश के लोक नृत्य।

(२) साहित्यिक आधार पर

लोक गीत-सम्बन्धी, लोक-कथा सम्बन्धी, लोक नाटक, ख्याल-सम्बन्धी और लौकिक-काव्य-सम्बन्धी।

(३) उद्देश्य के आधार पर

धार्मिक और मनोरंजनात्मक।

(४) अवस्था और स्त्री पुरुष के आधार पर

पुरुष नृत्य, स्त्री-नृत्य बाल नृत्य और सब के सम्मिलित रूप में आयोजित किये जाने वाले नृत्य।

६७ १। नृत्य का, चाहे वह शास्त्रीय हो अथवा लोक नृत्य, साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। साहित्यिक बोलों के आधार पर ही नृत्य-सम्बन्धी अंग संचालन और हाव भाव का नियमन होता है। नृत्य में सम्बन्धित भावों को स्पष्ट रूपेण व्यक्त करने में साहित्य और संगीत का समान रूप में महत्त्व होता है। राजस्थानी अर्थात् जयपुर शैली का कत्थक नृत्य विभिन्न प्रकार के काव्यात्मक छंदों के आधार पर आयोजित किया जाता है और मंच पर छन्दोच्चारण के साथ ही नृत्य का प्रदर्शन होता है। राजस्थानी लोक नृत्य भी गीतों के साथ आयोजित होते हैं।



द्वितीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य

१ प्रारम्भिक परिचय

२. राजस्थानी साहित्य की परिभाषा

३ राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन : विभिन्न मत

(१) डा० एल० पी० तेस्सीतोरी
(२) प० मोतीलालजी मेनारिया
(३) नरोत्तमदासजी स्वामी
(४) डा० हीरालालजी माहेश्वरी
(५) श्री सीतारामजी लालस
(६) श्री गजराज ओझा
(७) श्री पुरुषोत्तमदासजी स्वामी
(८) डा० जगदीशप्रसाद
(९) श्री उदयसिंहजी भटनागर
(१०) उक्त मतो की समीक्षा और लेखक का मत

४. प्रारम्भ-काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख प्रारम्भ काल के कवि कोविद और कृतिया

(१) स्वयम्भू कवि
(२) महाकवि पुष्पदन्त
(३) योगीन्दु
(४) आचार्य हरिभद्र सूरि
(५) हेमचन्द्र सूरि
(६) ढोला मारू रा दूहा
(७) ऊजली जेठवे रा दूहा
(८) बीसल दे रास
(९) प्रारम्भ-काल के अन्य कवि कोविद

५ वीरगाथा काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख वीरगाथा काल के प्रधान कवि और कृतियाँ

(१) शालिभद्र सूरि
(२) शार्ङ्गधर
(३) असाइत
(४) बारूजी सौदा
(५) श्रीधर व्यास
(६) सिवदास गाडण
(७) बादर ढाढी
(८) पद्मनाभ
(९) पृथ्वीराज रासो
(१०) वीरगाथा काल के कतिपय अन्य कवि

६ भक्ति-काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख भक्ति-काल के प्रधान कवि

(१) मीरां बाई (२) दुरसाजी आढ़ा

(३) ईसरदास (४) महाराज पृथ्वीराज राठौड़

(५) सायाजी झूला (६) कविराजा बांकीदास

ग राजस्थान के सन्त-सम्प्रदाय

[अ] प्रारम्भिक परिचय

[आ] सन्त कवि

(१) सन्त दादूदयालजी (२) सन्त रज्जबजी

(३) स्वामी लालदासजी (४) सन्त मावजी

(५) सन्त चरणदासजी (६) जसनाथजी

(७) रामस्नेही सम्प्रदाय क कवि (८) जाम्भोजी

(९) जैन सन्त कवि

घ भक्ति काल के कतिपय अन्य कवि

७. आधुनिक काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख आधुनिक काल के प्रधान कवि

(१) महाकवि सूर्यमल (२) चारण कवि केसरीसिंहजी

(३) महाराज चतुरसिंहजी (४) नाथूदानजी महियारया

ग अन्य उल्लेखनीय कवि

घ आधुनिक राजस्थानी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां

८. राजस्थानी गद्य साहित्य

क प्राचीन राजस्थानी गद्य के मुख्य रूप

(१) धार्मिक गद्य (२) ऐतिहासिक गद्य

(३) मनोरंजनात्मक गद्य (४) अभिव्यक्ति का गद्य

(५) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयक गद्य

ख नवीन राजस्थानी गद्य

(१) उपन्यास लेखक, (२) कहानी लेखक, (३) नाटक लेखक,

(४) निबन्ध लेखक, (५) आलोचना लेखक, (६) अनुवाद लेखक।

द्वितीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य

१. प्रारंभिक परिचय

१ २। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान को परम गौरव-पूर्ण स्थान प्त हुआ है। राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने देश की स्वाधीनता और अपनी मान-र्यादा की रक्षा हेतु असीम त्याग एवं बलिदान किया है। गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त रना राजस्थानी जीवन का सदियों तक प्रधान उद्देश्य बना रहा और इन वीर-ोरांगनाओं ने मरण को भी महान् त्योहार के रूप में अङ्गीकृत किया। मरण-त्योहार विषय में कहा गया है–

> टह-टह घुरे त्रमागळा, व्है सिधव ललकार।
> चित कू कभ चेळा चहै, आज मरण-त्योहार॥
> आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय।
> बहू बळै वा हूळमे, पूत मरेवा जाय॥
> सुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बधु-समाज।
> मा नह हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज॥[1]
>
> औ त्योहारा देसड़ो, तिथ पर हुवै त्योहार।
> बिना वार तिथ आवणो, मोटो मरण-त्योहार॥[2]

२ २। राजस्थान भारतवर्ष की वीर भूमि के रूप में विख्यात् है जिसके विषय मे सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड ने लिखा है –

"राजस्थान में एक भी छोटी रियासत ऐसी नही है जिसमें थर्मापाली जैसी युद्ध भूमि

---

१ – मरण-त्योहार राजस्थान की रसधारा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई०, पृ० १–७।

२ – श्री नारायणसिंह भाटी, परम वीर, प्रकाशक– रसावतार पुस्तक मन्दिर, रातानाडा, जोधपुर, १९६३ ई०, पृ० ६१।

न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा उत्पन्न न किया हो।"[१]

३२। राजस्थान का वीर भूमि बनाने का प्रधान श्रेय राजस्थान के साहित्य एवं साहित्यकारों का है। राजस्थान के साहित्यकार लेखनी के साथ ही तलवार के धनी होते हुए स्वयं युद्ध भूमि में वीरों के साथ मरने मारने के लिये तत्पर रहे हैं। ऐसे चारणावतार कवियों की परम प्रभावशाली वाणी से प्रेरित होते हुए राजस्थान के अगणित वीर वीरांगनाओं ने अपने प्राण सहर्ष ही उत्सर्ग कर दिये, इसलिये जेम्स टॉड के उक्त कथन के अंतिम भाग को इस प्रकार संशोधित करना सर्वथा उपयुक्त होगा—

"और कदाचित ही कोई ऐसा नगर हो, जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा तथा होमर जैसा कवि नहीं उत्पन्न किया हो।'

४२। राजस्थानी साहित्य में अन्य भावनाओं के साथ ही वीर भावनाओं की विशेष अभिव्यक्ति हुई है।

२ राजस्थानी साहित्य की परिभाषा

५२। 'राजस्थानी साहित्य' से अनेक तात्पर्य हो सकते हैं। यथा—

(१) राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य।

(२) राजस्थान में रचित साहित्य, चाहे वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, खड़ी बोली, उर्दू और फारसी आदि किसी भी भाषा में हो।

(३) राजस्थानियों द्वारा रचित साहित्य, फिर चाहे वह राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती या बंगला किसी भी भाषा में हो।

(४) राजस्थान से सम्बन्धित साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा अथवा विषय का हो।

यहां राजस्थानी साहित्य से लेखक का अभिप्राय राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य से है क्योंकि 'गुजराती साहित्य' और 'बंगला साहित्य' आदि से तात्पर्य क्रमशः गुजराती और बंगला भाषा में लिखित साहित्य ही होता है।

३ राजस्थानी-साहित्य का काल-विभाजन

६२। विभिन्न विद्वानों ने 'राजस्थानी साहित्य' का काल विभाजन विकास क्रम की दृष्टि से निम्न प्रकार से किया है—

---

१ — एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान प्रस्तावना, विलियम क्रुक द्वारा सम्पादित संस्करण, भाग १ १९२० ई०। हिन्दी संस्करण, मंगल प्रकाशन, जयपुर।

(१) डा० एल०पी० तेस्सीतोरी

क – प्राचीन डिंगल–काल — १२५० ई० से १६५० ई०।

ख – अर्वाचीन डिंगल–काल — १६५० ई० से आज तक।[1]

(२) प० मोतीलालजी मेनारिया

क – प्रारम्भ-काल — सं० १०४५ से १४६०।

ख – पूर्व–मध्य–काल — सं० १४६० से १७००।

ग – उत्तर–मध्य–काल — सं० १७०० से १९००।

घ – आधुनिक काल — सं० १९०० से २००५।[2]

(३) प० नरोत्तमदासजी स्वामी

क – प्राचीन काल — सं० ११५० से १५५०।

ख – मध्यकाल — सं० १५५० से १८७५।

ग – अर्वाचीन काल — सं० १८७५ के पश्चात्।[3]

(४) श्री हीरालालजी माहेश्वरी

क – विकास काल अथवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल–सं० ११०० से १५००

ख – नवीन काल अथवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का नवीन काल–सं० १५०० से प्रारम्भ।[4]

(५) श्री सीताराम जी लालस

क – आदिकाल — वि० सं० ८०० से १४६०।

ख – मध्यकाल — वि०सं० १४६० से वि०सं० १९००।

ग – आधुनिक काल — वि०सं० १९०० से वर्तमान काल तक।[5]

---

१ – क – वचनिका राठोड़ रतनसिंह री, भूमिका पृ० ४।
ख – जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वो० १०, न० १०, पृ० ३७५–३७७।

२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृ० ७७।

३ – राजस्थानी साहित्य एक परिचय नवयुग ग्रन्थ-कुटीर, बीकानेर पृ० २२।

४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३०–३१।

५ – राजस्थानी शब्द कोष, प्रस्तावना, पृ० ८८।

(६) गजराज ओझा

क – प्रारम्भ काल — स० १००० से १४०० ।

ख – मध्यकाल — स० १४०१ से १८०० ।

ग – उत्तरकाल — स० १८०१ से आज तक ।[१]

(७) पुरुषोत्तम दास स्वामी

क – प्राचीन राजस्थानी-काल — स० १००० से १६०० ।

ख – माध्यमिक राजस्थानी-काल — स० १६०० से १९०० ।

ग – आधुनिक राजस्थानी-काल — स० १९०१ से वर्तमान समय तक ।[२]

(८) डा० जगदीश प्रसाद

क – प्राचीनकाल — लगभग १३०० ई० से १६५० ई० ।

ख – मध्यकाल — लगभग १६५० ई० से १८५० ई० ।

ग – आधुनिक-काल — लगभग १८५० ई० से आज तक ।[३]

(९) श्री उदयसिंह भटनागर

क – प्रथम उत्थान या सूत्रपात-युग — स० ७०० से १००० ।

ख – द्वितीय-उत्थान या नव-विकास युग — स० १००० से १२०० ।

ग – तृतीय उत्थान या वीरगाथा युग — स० १२०० से १५०० ।

घ – चतुर्थ उत्थान या भक्ति युग–स० १५०० से १७०० ।

ङ – पंचम उत्थान या रीति-युग — स० १७०० से १९०० ।[४]

(१०) उक्त मतों की समीक्षा और लेखक का मत

७२। राजस्थानी साहित्य के उक्त काल-विभाजनों में डा० तस्सीतोरी और डा० माहेश्वरी के काल विभाजन " डिंगल ' के भाषा रूप पर आधारित है, अतएव एकांगी हैं। अन्य विद्वानों के काल विभाजन विकास क्रम के प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल के अथवा प्रथम, द्वितीय, तृतीय उत्थान के रूढिगत दृष्टिकोण पर आधारित हैं। राजस्थानी साहित्य के विकास-क्रम को दर्शाने में काल सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियों पर अभी तक गहराई से विचार

१ – नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, अंक १ पृ० १८–१९ ।

२ – वही पृ० २२४–२३५ ।

३ – डिंगल साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद पृ०, ११ ।

४ – हिन्दी साहित्य हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद, पृ० ५१९ ।

नही हुमा है मौर न काल-सम्बन्धी परिवर्तन का ठोस ऐतिहासिक माधार ही प्रस्तुत किया गया है। माचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल न इस विषय में लिखा है— "सारे रचना काल को केवल मादि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खण्डो म माख मूद कर बाट देना – यह भी नही देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या माता है, क्या नही – किसी वृत्त सग्रह को इतिहास नही बना देता।" [1]

§ २। साहित्य विशष के इतिहास का काल विभाजन सम्बन्धित साहित्यिक प्रवृत्तियो के माधार पर होना चाहिये। विभिन्न परिस्थितियों के मनुरूप सामाजिक मनोवृत्तिया परिवर्तित होती रहती हैं मौर तदनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों का माविर्भाव होता है। सामाजिक मनोवृत्तिया मौर साहित्यिक प्रवृत्तियो के मूल में वस्तुत ऐतिहासिक परिस्थितिया होती हैं जिनकी उपेक्षा साहित्यिक इतिहास के लेखन मे नही की जा सकती। माचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्यिक इतिहास के विषय म लिखा है — "जनता की परिवर्तनशील चित्तवृत्तिया की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।" [2] उक्त दृष्टिकोण के माधार पर राजस्थानी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित चार भागा मे विभक्त करना सर्वथा उपयुक्त होगा –

क—प्रारम्भकाल — वि० स० ८३५ से १२४०।

ख – वीरगाथा काल — वि० स० १२४१ से १५८४।

ग – भक्ति-काल — वि० स० १५८५ से १९१३।

घ – माधुनिक-काल — वि० स० १९१४ से प्रारम्भ।

४. प्रारम्भकाल

क प्रारम्भिक परिचय

§ ३। सम्राट हर्ष की मृत्यु (वि०स० ७०५, ई० सन् ६४८) हमारे इतिहास में युग परिवर्तनकारी सिद्ध हुई क्योकि इसके पश्चात् हमारे देश में मनकता, पारस्परिक वैमनस्य, सामाजिक विश्रृखलता, धार्मिक मतवैपरीत्य मौर मार्थिक पतन का प्रारम्भ हुमा। इसी समय भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमामो पर इस्लामी सनिको के माक्रमण हाने लगे। मुहम्मद बिनकासिम न एक प्रबल सेना के साथ सिंध पर माक्रमण किया (वि० सं० ७६६,

---

१ – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, वक्तव्य, पृ० २।

२ – वही, पृ० १।

ई० सन् ७१२) जिसमें भीषण रक्तपात हुआ। हजारों व्यक्तियों को बन्दी बना कर उन्हें दास बनने के लिये विवश किया गया और बलपूर्वक भारत में इस्लाम धर्म की स्थापना की गई — 'काफिरों को या तो मुसलमान बना लिया गया है या नष्ट कर दिया गया है। मूर्ति मन्दिरों के स्थानों पर मस्जिदें तथा अन्य पूजा गृह खड़े कर दिये गये हैं। खुतबा पढ़ा जाता है, अजां लगाई जाती है, जिससे निश्चित समयों पर पूजा पाठ होता है। प्रतिदिन प्रातः काल तथा सन्ध्या को सर्वशक्तिमान् ईश्वर का गुण गान किया जाता है।'[1]

१० ३। सिन्ध पर हुए उस आक्रमण का भारतव्यापी प्रभाव हुआ और सारा देश अपनी निद्रा को त्याग कर विदेशी आक्रान्ताओं से लोहा लेने का उपक्रम करने लगा। राजस्थान में इसी समय प्रतिहार, परमार, गहलोत और चौहान राजपूतों का अभ्युदय हुआ जिन्होंने समय समय पर अखिल भारतीय राजनीति को प्रभावित किया और विदेशी आक्रमणकारियों का यथाशक्ति अवरोध करने का प्रयत्न किया। बापा रावल ने वि० सं० ७६० (७३३ ई०) में चित्तौड़ पर अधिकार कर मेवाड़ में गहलोत शासन की नींव रक्खी। इसी वंश में आगे चलकर खुमाण, रत्नसिंह कुम्भा सांगा प्रताप और राजसिंह जैसे शूरवीर हुए जिन्होंने अपनी मातृभूमि और मान-मर्यादा की रक्षा हेतु घोर संघर्ष किया।

११ ४। मुस्लिम आक्रमणों के साथ ही देश में चारण कवियों का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने अपभ्रंश की निवृत्तिमूलक शान्त रसमयी काव्य धारा को प्रवृत्तिमूलक राजस्थानी रूप प्रदान किया। चारण कवियों ने योद्धाओं को उत्साहित करते हुए विजयोपरान्त प्राप्त होने वाले सुख वैभवों के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया और युद्ध में वीरगति प्राप्त करने की अवस्था में प्राप्त होने वाले स्वर्गिक सुखों की ओर संकेत किया।

१२ ५। भारतवर्ष में यह समय राजपूतों के उत्थान का माना गया है। राजपूत राजाओं से प्रोत्साहन एवं आश्रय प्राप्त कर राजस्थानी साहित्य निरन्तर विकसित होता गया। राजपूत शासकों के प्रभाव से ही राजस्थानी साहित्य में वीरता भक्ति और शृंगारिक तत्वों का समान रूप से समावेश हुआ।

१३ ६। राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भ काल के ऐसे उदाहरण आचार्य हेमचन्द्र (वि० सं० ११४५ १२२९, ई० सन् १०८८ ११७२) ने अपनी व्याकरण में दिये हैं।[2] साथ ही इस युग के कवि स्वयंभू (वि० सं० ८४७ ई० सन् ७९०), महाकवि पुष्पदंत (वि० सं० ९५९ ९७२, ई० सन् ९०२ ९१५) आदि की रचनाओं में भी राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी

---

१ — मुहम्मद बिन कासिम का अपने चाचा को लिखा गया पत्र, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस० आर० शर्मा, पृ० ३३।

२ — कवियो, श्री मो० द० देसाई, भाग १, भूमिका पृ० ११५।

इन विशेषताओं के प्रारम्भिक दर्शन होते हैं। आगे चलकर राजस्थानी साहित्य मे इन विशेषताओं का समुचित रूप मे विकास हुआ।

कवि उद्योतन सूरि द्वारा जालोर दुर्ग मे वि० स० ८३५ (७७८ ई०) मे लिखित कुवलयमाला में राजस्थानी भाषा के मरुप्रदेशीय रूप का प्राचीनतम उल्लेख उदाहरण सहित प्राप्त हो चुका है[१] और आगे प्राचीन राजस्थानी रूपो के उदाहरण निरन्तर प्राप्त होते हैं इसलिये राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भकाल वि० स० ८३५ (७७८ ई०) से रखना सर्वथा उपयुक्त होगा।

१४ २। राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भकाल वि० स० १२५० (११९३ ई०) तक मानना चाहिये क्योंकि इसी वर्ष सम्राट पृथ्वीराज चौहान की तराइन युद्ध मे पराजय हो जाती है और भारतवर्ष मे नवीन ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक परिवर्तन होते हैं। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति के कारण ही परम विरक्त शालिभद्रसूरि भी वि० स० १२४१ (११८४ ई०) मे 'भरतेश्वर बाहुबलि घोर' जैसे युद्धपरक काव्य का निर्माण करते हैं।

१५ २। सक्षेप मे राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भ-काल (वि० स० ८३५, ७७८ ई० से वि० स० १२५०, ११९३ ई०) के निम्नलिखित आधार होते हैं—

(१) सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् समस्त भारतवर्ष मे एकता स्थापित करने वाली शक्ति का अभाव और देश की परिवर्तित ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक परिस्थिति।

(२) भारतवर्ष पर प्रारम्भ होने वाले मुसलमानों के आक्रमण लूट, हत्याए और धार्मिक अत्याचार।

(३) भारतवर्ष मे ७ वी शताब्दी से राजपूत राजाओं का अभ्युदय और उनके द्वारा देश की रक्षा हेतु किये जाने वाले विदेशियो से सघर्ष।

(४) चारण-कवियो का आविर्भाव और परिणाम स्वरूप साहित्य मे वीर भावना का समावेश।

(५) परिवर्तित साहित्यिक विषय, रस और प्रेरणा स्रोत।

---

१ – क–राजस्थानी शब्द कोश, श्री सीताराम लालस, रा०शो०स० जोधपुर भूमिका, पृ० ८८।
ख–राजस्थानी साहित्य का आदिकाल, स० श्री नारायणसिंह भाटी, 'परम्परा' रा० शो० स० जोधपुर, भूमिका, पृ० १०।

ख प्रारम्भकाल के कवि-कोविद और कृतियां

(१) स्वयंभू कवि

१६ २। स्वयंभू का उल्लेख सर्वप्रथम महाकवि पुष्पन्त ने अपने "महापुराण" में किया [1] जिसका प्रारम्भकाल सं० १०१६ है। स्वयंभू ने भी अपने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ' में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है जिनमे "रविषेणाचार्य' भी हैं। रविषेणाचार्य रचित "पद्मचरित' का लेखन-काल सं० ७३४ है। इस प्रकार स्वयंभू कवि का समय वि० सं० ७३४ से सं० १०१६ के मध्य होना चाहिये। स्वयंभू का समय राहुल सांकृत्यायन ने लगभग सं० ८४७ (७६० ई०) [2] और नाथूराम प्रेमी ने सं० ७३४ से ८४० के बीच [3] अनुमानित किया है।

स्वयंभू ने अपने पिता का नाम मारुतिदेव और माता का नाम पद्मनी सूचित किया है। स्वयंभू की दो पत्नियों के नाम भी ज्ञात होते हैं— आदित्याम्बा और सामिअम्बा। स्वयंभू के सबसे छोटे पुत्र का नाम त्रिभुवन था। कवि स्वयंभू के पिता और पुत्र भी कवि थे।

१७ २। स्वयंभू के निम्नलिखित चार ग्रंथ उपलब्ध हैं—

(१) पउमचरिउ (रामकथा पर आधारित जैन काव्य)
(२) रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंश पुराण),
(३) पंचमीचरिउ (नागकुमार कथा) और
(४) स्वयंभू छंद (छंद शास्त्र)।

१८ २। स्वयंभू की रचनाओं से प्रकट होता है कि वे एक कुशल कवि थे। उन्हें काव्यगत मार्मिक प्रसंगों की पहिचान थी और उन्होंने वस्तु वर्णन के साथ ही रसनिरूपण में पूर्ण सफलता प्राप्त की। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है —

सुग्रीव और मेघवाहन का युद्ध

किक्किंध-णराहिउ धरिउ जाव। घण-वाहणु मामडल हे ताव।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर। सरि सोत्त ‖ उत्तरे पहर थोर।

---

१ — चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु।
आलोइउ कइ ईसाणु बाणु। १ ५॥

२ — हिन्दी काव्य धारा, किताब महल इलाहाबाद, पृ० २२।

३ — हि० सा० का आ० इ०, डा० रामकुमार वर्मा, रा० ना० ला० इलाहाबाद, पृ० ७५।

छिज्जत महग्गय गरुअ गत्तु । णिवडत समुद्धुय धवल छत्तु ।
लोटटत महारह हय रहगु । घुम्मन्त-पडतमहातुरगु ।
तुट्टत कबड तुटटत खग्गु । णच्चत कवघउ असि-करग्गु ।
आयामेवि रणे रासिय मणेण । अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण ।
आमल्लिउ आयउ धगधगतु । अगार वरिसु णहे दक्खवतु ।
वारुणु विमुक्कु भामडलेण । ण गिरिहि वज्जु अखडलेण ।
उल्हाविउ जलणु जलेण ज जे । सरु णागबासु पम्मुक्कु त जे ।
घत्ता– पुप्फवइ मुउ दीहर पवर महासरेहि ।
परिवेढियउ मलयदुव विसहरेहि ॥ ६ ॥[1]

(२) महाकवि पुष्पदन्त

१६ २ । महाकवि पुष्पदन्त के पिता का नाम केशव भट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था । इनके पिता प्रारम्भ में शैव थे किन्तु बाद में जैन मुनि से प्रभावित हो कर जैन धर्म में दीक्षित हो गये —

सिव भत्ताइ मि जिण सण्णासे वे वि मयाइ दुरियणिण्णासे ।
बभणाइ कासवरिसी गोत्तइ गुरुवयणामिय पूरियसोत्तम ॥[2]

पुष्पदन्त देखने में सुन्दर नहीं थे[3] किन्तु पूरे आत्माभिमानी थे इसलिये उन्होंने अपने नाम के साथ 'अभिमानमेरु', 'काव्यरत्नाकर' और 'कविकुलतिलक' जैसे विरुद लगाये ।

२० २ । पुष्पदन्त एक समय अपने आश्रयदाता से रुष्ट हो कर वन में चले गये और वहा निम्नलिखित छन्द की रचना की —

णउ दुज्जन भउहा वकियाइ दीसतु कलुसभावकियाइ ।
वर णरवर धवलच्छिहे होहु म कुच्छिहे मरउ सोणिमुहणिग्गमे ।
खल कुच्छिय पहुवयणइ भिउडियण यणई म णिहालउ सुरुग्गमे ॥

(गिरि-कन्दराओ में घास खा कर रहना उचित है किन्तु दुर्जनो की टेढी भौंह देखना उचित नही । मा के गर्भ से उत्पन्न होते ही मर जाना उत्तम है किन्तु राजा की टेढी भृकुटि एव नेत्र देखना तथा उसके दुर्वचन सुनना उचित नही ।)[4]

---

१ – पउमचरिउ, ६५। १–६, हि० का० धा०, पृ० ६२ ।
२ – णायकुमारचरिउ ।
३ – उत्तरपुराण, ११ ।
४ – शर्मा, हि० सा० आ० इ०, पृ० ८१ ।

कवि के प्रथम आश्रयदाता राष्ट्रकूट-वंश के महाराजा कृष्ण के महामात्य भरत और द्वितीय आश्रयदाता भरत के पुत्र नन्न थे जो भरत के पश्चात् महामात्य हुए।

२१ २। महाकवि पुष्पदन्त की निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं —

(१) महापुराण— इस ग्रन्थ को "तिसटिठ महापुरिस गुणालकारु" भी कहा जाता है क्योंकि इसमे तिरसठ महापुरुषो के चरित्र वर्णित हैं। इस काव्य-ग्रन्थ के दो खण्ड हैं— आदिपुराण और उत्तरपुराण। आदिपुराण मे प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का और उत्तरपुराण मे शेष तेवीस तीर्थंकरो और उनके समकालीन महापुरुषो के चरित्र वर्णित हैं, जिनमे श्रीकृष्ण का चरित्र भी है। महापुराण महामात्य भरत की प्रेरणा से रचा गया था।

(२) णायकुमार चरिउ— इस काव्य मे नागकुमार सम्बन्धी काव्य वर्णित है। यह काव्य महामात्य नन्न की प्रेरणा से रचा गया था।

(३) जसहर चरिउ— इस काव्य में यशोधरा का चरित्र है।

(४) कोष— यह देश भाषा का कोष ग्रन्थ है।

इनकी रचना का एक उदाहरण निम्नलिखित है —

श्रीकृष्ण - महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु। मजणउ जणणि विहविय सत्तु।
दुर्धर भर रण धुर दिण्ण-खधु। उद्धरिय जण णिबद्धन वधु।
भजिवि णियलइ गय वर-गईह। सहु माणिणीइपोमावईह।
कइवय दियहहिं रइ कीलिरीहिं। बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिं।[1]

(३) योगीन्दु

२२ २। प० राहुल साकृत्यायन के मतानुसार योगीन्दु का काल १००० ई० है।[2] ये जैन साधु थे और सम्भवत राजस्थान के थे। इनकी रचनाएं—"परमात्म प्रकाश दोहा" और "योगसार दोहा" हैं।[3] इनकी रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं —

---

१ – हि० का० धा०, पृ० २३०।

२ – वही, पृ० २४०।

३ – प्रका० श्री रायचन्द्र जैन शास्त्र माला, बम्बई, (१९३० ई०) सम्पा० ए.एन. उपाध्ये।

ज्ञान समाधि

जो जाया झाणग्गिए, कम्म-कलंक डहेवि ।
णिच्च णिरंजण णाणमय, ते परमप्प णवेवि ॥१॥
ते हउं वंदउं सिद्ध गण, अच्छहिं जे वि हवंत ।
परम-समाहि महग्गियए, कम्मि धणई हुणंत ॥३॥
भावि पणविवि पंचगुरु, सिरि जोइंदु जिणाउ ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥

— परमात्मप्रकाश

(४) आचार्य हरिभद्र सूरि

२३ २। आचार्य हरिभद्रसूरि का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ किन्तु बाद में ये श्रीचन्द्रसूरि से जैन धर्म में दीक्षित हो गये। मुनि श्री जिनविजयजी के मतानुसार इनका जन्म-स्थान चित्तौड़ और जन्मकाल सं० ७५७ से ८२७ के मध्य है।[1] प्रो० हरमन याकोबी ने हरिभद्रसूरि का समय ईसा की नवीं शताब्दी माना है[2] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय ११५९ ई० (वि० सं० १२१६) लिखा है।[3]

२४ २। हरिभद्र सूरि के अनेक ग्रंथ हैं जिनमें ललितविस्तरा, धूर्ताख्यान, सम्बोधप्रकरण, जसहरचरिउ और णेमिनाहचरिउ मुख्य हैं। णेमिनाहचरिउ में से एक उदाहरण इस प्रकार है —

श्रीकृष्ण - सौन्दर्य

नील कुंतल कमल-नयणिल्लु विवाहरु सियदसणु,
कवुग्गीवु पुर-अर्गल उरयलु ।
जुय दीहर-भुय-जुयल वयण, ससि जिय कमल-उप्पल ।
पडमदवारुण करचलणु तविय-कणय गोरगु,
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विजिय अणगु ॥[4]

---

१ – हरिभद्रसूरि का समय निर्णय, जैन साहित्य-संशोधक, पूना, भाग १, अंक १।

२ – हरिभद्रसूरि रचित "नेमिनाथ चरिउ" की सम्पादकीय भूमिका।

३ – हि० का० धा०, पृ० ३८४।

४ – वही पृ० ३८८।

(५) हेमचन्द्र सूरि

२५ २। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि का जन्म-संवत् ११४५ वि० (१०८६ ई०) में कार्तिक शुक्ला १५ का और मृत्यु-संवत् १२२६ वि० माना गया है।[1] इनका जन्म-नाम चंगदेव था किन्तु दीक्षा के समय (वि० सं० ११५४) इनका नाम सोमचन्द्र और सूरि पद प्राप्ति के समय (वि० सं० ११६६) इनका नाम हेमचन्द्र हुआ। गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह सोलंकी ने हेमचन्द्र की विशेष प्रतिष्ठा की। सिद्धराज जयसिंह शैव थे किन्तु अन्य धर्मों का भी आदर करते थे। इनकी प्रेरणा से हेमचन्द्र ने सुप्रसिद्ध 'सिद्ध हैम-व्याकरण' का निर्माण किया।

२६ २। सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् इनका भतीजा कुमारपाल राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ जिसके शासन काल में हेमचन्द्र की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। हेमचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर कुमारपाल ने शिकार और मांस-सेवन का त्याग कर दिया। साथ ही कुमारपाल ने २१ ज्ञानकोष अर्थात् ग्रन्थ-भण्डार स्थापित किये और ७०० लहिया (प्रतिलिपिकर्ताओं) की नियुक्ति की, जिनका कार्य विभिन्न विषयक ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार करना था।

२७ २। आचार्य हेमचन्द्र रचित प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

अभिधानचिन्तामणि, काव्यानुशासन छन्दोऽनुशासन, देशीनाममाला, द्वयाश्रयकाव्य, योगशास्त्र, धातुपारायण, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्, परिशिष्ट पर्व और शब्दानुशासन (व्याकरण)।[2]

२८ २। हेमचन्द्र ने कुमारपाल चरित् में कतिपय स्वरचित काव्यात्मक रूप दिये हैं। जैसे –

अम्हे नि दहु कोवि जण, अम्हई वण्णउ कोवि।
अम्हे निन्दहु कवि नवि, न म्हई वण्णहुँ कवि॥
रे मण करसि की आलडी विसया अच्छहु दूरि।
करणई अच्छह रुंधिअइ, कडढउ सिवकलु भूरि॥
काय कुडुल्ली निज अथिर, जिवियडउ चलु एहु।
ए जाणिवि भवदोसडा, ससुहउ भावु चलेहु॥[3]

---

१ – जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दुलीचन्द देसाई भाग १ पृ० ११३।

२ – हेमचन्द्राचार्य सम्बन्धी विशेष विवरण के लिए देखिए– फार्बस रचित 'रासमाला' प्रथम भाग (दो खण्डों में) अनु० श्री गोपालनारायण बहुरा एम ए, मंगल प्रकाशन, जयपुर, उत्तरार्द्ध पृ० ६०–१६४।

३ – जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १२५ १२७।

२९ २। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपने पूर्व समय के प्रचलित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये है। राजस्थानी काव्य की समस्त विशेषतायें इन उदाहरणों में मूल रूप मे वर्तमान हैं इसलिये इनका विशेष महत्व है—

> भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कन्तु।
> लज्जेज्ज तु वयसिअहु, जइ भग्गा घर एन्तु।
> वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
> अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥
> पुत्तें जाए कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
> जा बापी की भुंहडी, चम्पिज्जई अवरेण ॥

३० २। राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भ काल की कतिपय रचनाएं ऐसी हैं, जिनके विषय मे अनेक प्रकार के मतभेद हैं। ऐसी रचनाओं में ढोला मारू रा दूहा, जेठव रा दूहा, बीसलदे रास और पृथ्वीराज रासो मुख्य हैं।

(६) ढोला मारू रा दूहा

३१ २। ढोला मारू रा दूहा राजस्थानी साहित्य का परम लोकप्रिय प्रणय-काव्य है। जितनी असंदिग्ध इस काव्य की उत्कृष्टता है उतनी ही संदिग्ध इतिहासकारों मे इसकी रचनाकाल और कर्ता सम्बन्धी धारणा है। इस काव्य का रचना-काल प० मोतीलाल जी मेनारिया के मतानुसार वि० स० १००० के आसपास है।[1] श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी के मतानुसार इन दूहों का प्राचीनतम रूप ११वीं – १२ वीं शताब्दी का है[2] तो श्री माला शंकर व्यास ने इनका समय १३ – १४ वी सदी माना है।[3] श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इनका निर्माण-काल स० १५०० लगभग लिखा है।[4] फ्रेंच विद्वान् वउडेविले के मतानुसार धौलपुर का संस्थापक राजा ढोलन अपर नाम धवल तवर (११ वीं सदी) ही ढोला मारू रा दूहा का नायक है।[5] ढोला मारू रा दूहा की स० १६१८ से पूर्व की लिखित कोई प्रति अब तक नही प्राप्त हो सकी है और यह प्रति भी कुशललाभ द्वारा जेसलमेर के तत्कालीन रावल हरराज की प्रेरणा से रचित चौपाइयों सहित है। ढोला सम्बन्धी दूहे आचार्य

---

१ रा० सा० रू०, पृ० २१९।

२ हि० सा० आ०, प० ९।

३ हि० सा० बृ० इ०, भाग १, खण्ड २, अ० ४, पं० ४०४।

४ ढोला-मारू रा दूहा का० ना० प्र० स०, प्रवचन, प० ७।

५ ढोला मारू – एन इंटरप्रेटेशन जर्नल आफ ओरिएंटल इन्स्टीट्यूट महाराजा सयाजी राव युनिवर्सिटी बडौदा, वो० ११, स० ४।

हेमचन्द्राचार्य (११४५-१२२६) के समय मे प्रचलित हो चुके थे, जिनके कतिपय उदाहरण उन्होने अपनी व्याकरण मे दिये हैं—

ढोल्ला सामला, धण चम्पा वण्णी ।
णाइ सुवण्णरेह, कस-वटठइ दिण्णी ॥८॥४॥३३०॥१
ढोल्ला मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु ॥ ८।४।३३०।२।
ढोल्ला सई परिहासडी, अइ भण मण कवणहि देसि ।
हउ झिज्जउ तउ केहि पिअ, तुहु पुणु अन्नहि रेसि ॥८।४।४२५।३

३२२। उक्त दूहा से प्रकट होता है कि १२ वी सदी वि० में ढोला मारू सम्बन्धी प्रेमाख्यान प्रचलित था और इसके दूहे जनता मे कहे सुने जाते थे।

३३२। निम्न दूहे म आये हुए "कल्लोल" शब्द के आधार पर "ढोला मारू रा दोहा" का कर्त्ता 'कल्लोल" माना गया है —

गाहा गूढा गीत रस, कवित कथा कल्लोल ।
चतुर तणा मन रीझवै, कहिया कवि कल्लोल ॥[1]

इसके विपरीत सिवाणा (मारवाड) के एक यति की प्रति म इसका कर्ता कुशलकरण खिडिया (चारण) लिखा है, ऐसा कहा जाता है[2]। सिवाणा की प्रति अभी सामने नही आई है इसलिये इस विषय मे निश्चित रूप स कुछ भी नही कहा जा सकता।

३४२। "ढोला मारू रा दूहा" के सम्पादको ने इस काव्य को "बेलेड" मानते हुए "बलेड' का अर्थ लोक-गीत दिया है।[3] बेलेड जनता म प्रचलित ऐसे कथा-काव्य को कहा जाता है जो गेय होता है और जिसका कर्ता प्राय अज्ञात होता है। इसमें समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्द्धन भी होते रहते हैं, यथा- आल्हा।[4] लोक गीत अंग्रेजी शब्द "फाक सोग' का पर्याय है। लोकगीत लघु मुक्तक रचनाओ के रूप मे जनता द्वारा गाये जाते हैं।[5] यह काव्य वास्तव मे ढोला-मारू कथा पर आधारित दूहो का सकलन

१ – क डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०१।
ख प० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १०१।
ग डा० गोवर्द्धन शर्मा, प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ६, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-सस्थान, उदयपुर, पृ० ८३-८५।

२ – श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्द कोष प्रस्तावना, पृ० ९३।

३ – प्रकाशक, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, भूमिका।

४ – हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६८७-६८८।

५ – हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६८९।

है। इसमें एक ही भाव के अनेक दूह हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस सकलन में समय-समय पर लिखे हुए अनेक कवियो के दूहे हैं। इस काव्य को हम कथा-मुक्तक कह सकते हैं। जैन यति कुशललाभ ने वि स० १६१८ मे जैसलमेर के तत्कालीन रावल हरराज की आज्ञा से इन दूहा का सकलन कर इनका कथा-सूत्र जोडने के लिये अनेक चौपाइयो की रचना की और लिखा —

" दूहा घणा पुराणा अछई। चउपई बंध कियो मइ पछई ॥ "

३६ २। ढोला मारू रा दूहा एक शृगारिक काव्य है, जिसमे सयोग वियोग की अनेक अवस्थाओं का सरस और मार्मिक चित्रण देश काल के अनुरूप हुआ है —

प्रीतम आयो है सखी, ज्यारी जोती वाट।
घर नाचे थाभा हसे, खेलण लागी खाट ॥
बीजळिया नीलज्जियां, जळहर तू ही लज्जि।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरद्द मधुरद्द गज्जि ॥

(७) ऊजली जेठवे रा दूहा

१६ २। राजस्थान और गुजरात दोनो ही प्रदेशो मे 'ऊजली जेठवे रा दूहा' प्रचलित हैं। इन दूहा का समय प० श्री मोतीलालजी मेनारिया ने स० ११०० के लगभग[1] और श्री झवेरचन्दजी मेघाणी ने स० १४०० १५०० तक प्राचीन[2] बताया है। ऊजली-जेठवा की कथा श्री जगजीवन पाठक ने सन् १९१५ ई० में 'गुजराती' के दीपावली अक मे और "मकरध्वज वशी महीपमाला" पुस्तक में प्रकाशित की है। इन दूहा मे जेठवा अथवा मेहउत नाम आता है। जेठवा १२ वी सदी में पोरबन्दर का राजा माना गया है[3] किन्तु इन दूहा की भाषा १२ वी शताब्दी की नही प्रतीत होती। सम्भवत मौखिक रहने से इन दूहो की भाषा परिवर्तित हो गई है। साथ ही ऊजली और जेठवा सम्बन्धी विभिन्न समयो में रचित दूह भी प्राचीन दूहो मे मिल गये हैं। उदाहरण स्वरूप मथानिया के चारण कवि जेतदानजी के स० १९७४ ७५ मे रचित दूहे 'जेठवे रा सोरठा' नामक परम्परा-प्रकाशन में सम्मिलित हैं —

---

१ — रा० सा० रूपरेखा, पृ० २१६।

२ — रा० सा० का आदिकाल पृ० १९३।

३ — राजस्थान की रसधारा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया राजस्थान सस्कृति परिषद्, जयपुर, पृ० २०।

डहुनयो डफर देस, वादळ थोथो नीर बिन ।
आई हाथ न एक, जळ री बूंद न जेठवा ।।
दरसण हुवा न देव, भेव विहूणा भटकिया ।
सूना मिंदर सेव, जनम गमायो जेठवा ।।

३७ २। "ऊजली जेठवे रा दूहा" ऊजली और जेठवा सम्बन्धी प्रेमाख्यान पर आधारित हैं।[1] जेठवा विशेष परिस्थिति मे एक रात के सहवास के पश्चात् ऊजली को अपनी राजधानी मे आमन्त्रित करने का आश्वासन देता है। अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका शकुन्तला की भांति थोड़े समय की प्रतीक्षा के उपरान्त ऊजली स्वयं जेठवा की राजधानी पोरबन्दर पहुँचती है। ऊजली के चारण-पुत्री के रूप मे पूज्य होने के कारण लोक निन्दा के भय से जेठवा उसको रानी के रूप मे स्वीकार नही कर पाता है। ऐसी अवस्था में ऊजली के उद्गार सोरठिया दूहा के रूप मे प्रकट होते हैं। इन सोरठिया दूहा में ऊजली का विरह जनित मर्मान्तक वेदना निहित है —

टीळी सूं टळियाह, हिरणा मन माठा हुवे ।
वाला बीछड़ियाह, जीवै किण विध जेठवा ।।
जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी ।
बिलखतड़ी बोहाय, ओगण कर गो जेठवा ।।
थे दीसो असवार, धुड़लारी घूमर किया ।
अबला रो आधार, अबो न दीसै जेठवा ।।
दुनिया जोड़ी दोय सारस ने चकवा तणी ।
मिली न तीजा मोय, जो जो हारी जेठवा ।।

(८) बीसलदे-रास

३८ २। बीसलदे-रास अपर नाम बीसलदेव रासो एक प्रेमाख्यानक काव्य है, जिसमें अजमेर के बीसलदे चौहान और धाराधिपति राजा भोज परमार की पुत्री राजमती की कथा वर्णित है। यह काव्य चार भागो में विभक्त है। प्रथम भाग में बीसलदे और राजमती का विवाह-वर्णन है। द्वितीय भाग में बीसलदे का राजमती के प्रति उदासीनता और उड़ीसा यात्रा वर्णित है। तृतीय भाग में मुख्यतः राजमती का वियोग-वर्णन है। चतुर्थ भाग में बीसलदे और राजमती का पुनर्मिलन बताया गया है।

३९ २। काव्य के नाम से ही प्रकट है कि यह गेय है। बीसलदेरास का काव्य सौन्दर्य इसका सरल स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति और स्थानीय वातावरण की सुरम्य सृष्टि में निहित है।

---

१ — राजस्थान की रस-धारा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया पृ० २० २५।

४० २। काव्य में बीसलदे के रूठ कर उडीसा प्रस्थान का मुख्य कारण इस प्रकार है —

गरब करि उभो छई साभर्‍यो राव। मो सरीखा नहिं ऊर भूपाल ॥
म्हा घरि साभर उग्गहइ। चिहु दिसी थाण जेसलमेर ॥
गरबि न बोलो हो साभरया राव। तो सरीखा घणा और भुवाल ॥
एक उडीसा को धणी। वचन हमारइ तू मानि जु मानि ॥
ज्यू थारइ साभर उग्गहइ। राजा उणि घरि-उग्गहइ हीरा खान ॥
× × ×
कडवा बोल न बोलिस नारि। तू मो मेल्हसी चित्त बिसारि ॥
जीभ न जीम बिगोयनो। दव का दाधा कुपली मेल्हइ ॥
जीभ का दाधा न पागुरइ। नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ ॥[1]

काव्य में स्थानीय वातावरण —

परणवा चाल्यो बीसलराव। पच सखी मिलि कलस बदावि ॥
मोती का आपा किया। कू कू चदन पाका पान ॥
अमली समली आरती। जाई बघेरइ दियो मिलाए ॥[2]

४१ २। बीसलदे के उडीसा प्रस्थान पर राजमती कामना करती है कि मार्ग में अपशकुन हो और राजा लौट आवे —

चाल्यो उलीगाणो नग्र मझारि। आडी आवज्यो ईंधण दार।
साड तडूकज्यो जीमउइ अङ्ग। सामइ जोगणी काल भुयग।
बाट काटे मजारडी। सामही छीक हुणाई कपाल ॥
आडी लुकडी आवज्यो। गोरडी कउ प्रीय पाछो हो वाल ॥[3]

४२ २। काव्य का प्रधान अग राजमती का वियोग वर्णन है —

श्री जनम काई दीयो हो महेस। अवर जनम थारे घणा हो नरेस ॥
रानह न सिरजी हरिणली। सूरह न सिरजी धौगु गाई ॥
बनखड काली कोइली। बइसती अब कइ चंप की डालि ॥
बइसती दाख बीजोरडी। इणि दुख झूरइ अबला बालि ॥[4]
× × ×

---

१ – बीसलदेव रासो, स० सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० सं० पृ० ३७।
२ – वही, पृ० १२।
३ – वही, पृ० ५९–६०।
४ – वही, पृ० ६५।

कुहणी फाटइ काचुवउ । पोपरि फाटइ धन को चीर ।
जाणो दब दाधी लाकडी । दूबलो हुइ झूरइ ईम नाह ॥
डावा हाथ को मू दडउ । आवण लागो जीवणी बाह ॥[1]

४३ २ । बीसलदे रासो का कर्ता नरपति नाल्ह है, जिसके जन्म-काल और स्थान आदि के विषय मे विशेष इतिवृत्त ज्ञात नहीं है । नरपति के विषय म रासा से इतना ही प्रकट होता है कि वह व्यास ब्राह्मण था—

"व्यास वचन इम ऊचरई, दिन-दिन प्रतिपे बीसलराई ।'
— छन्द ६१, भाग प्रथम।

"नरपति व्यास कहइ करि जोडि, तो तूठा तेंतिसो कोडि।"
— छन्द ८४, भाग प्रथम ।

"चउरास्या सहू वणव्या अम्रत रसायण नरपति व्यास ।'
— छन्द १०३, भाग तृतीय ।

४४ २ । बीसलदे रास के निर्माणकाल के विषय म अनेक मत प्रचलित हैं। रासो की एक प्रति मे रचना तिथि— ज्येष्ठ कृष्णा ६ बुधवार स० १२७२ दी गई है --

बारह से बहोत्तरा हा मझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि ।
नाल्ह रसायण आरभई, सारदा तूठि ब्रह्मकुमारी ॥[2]

मिश्र बन्धुओ ने रासा के निर्माण-काल पर विचार करते हुए लिखा है कि ज्येष्ठ कृष्णा ६ को बुधवार वि० स० १२७२ म नही आता, किन्तु शक सवत् १२२० में आता है इसलिये रासो का निर्माणकाल शक सवत् १२२० अर्थात १३५४ वि० सवत् मानना चाहिये। इस विषय में डा० गौरीशकर ह राच द ओझा का मत है कि राजस्थान में इस समय शक सवत् नही, विक्रमी सवत् ही प्रचलित था । डा० ओझा के मतानुसार 'बीसलदेव रासो' का निर्माणकाल सम्बन्धित प्रति के अनुसार वि० स० १२७२ ही सही है और इसका चरित्रनायक बीसलदेव विग्रहराज तृतीय है जिसकी विद्यमानता का समय वि० स० ११५० है। इस प्रकार विग्रहराज तृतीय के १२२ वर्ष पश्चात् इस रासो की रचना हुई।[3] श्री सत्यजीवन वर्मा ने बीसल देव रासो का निर्माण-काल वि० स० १२१२ लिखा है[4] और रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसका

---

१ — बीसलदे रासो स० सत्यजीवन वर्मा, ना० ना० प्र० स०, पृ० ७५ ।
२ — वही, प्रथम सग ४ ।
३ — ना० प्र० प०, वष ४-५, अक २ पृ० १६३-७१ ।
४ — बीसलदे रासो, भूमिका, पृ० ५ ।

समर्थन किया है।[१] इन दोनों ने बहोत्तरा का अर्थ द्वादशोत्तर अर्थात् बारह माना है। बड़ा उपाश्रय, बीकानेर में प्राप्त बीसलदेव रासो की एक प्रति में रचनाकाल निम्नलिखित है—

'संवत् सहस तिहुतरइ जाणि। नाल्ह कवीसर सरसीय बाणि ॥'' [२]

डा० रामकुमार वर्मा ने भी उक्त उद्धरण के आधार पर बीसलदेव रासो का निर्माण काल सं० १०७३ लिखा है।[३] इस विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि रासो में वर्णित स्थान सं० १४०० तक बस गये थे इसलिये रासो का निर्माणकाल सं० १४०० मानना चाहिये।[४]

पं० मोतीलाल जी मेनारिया ने बीसलदेव रासो के निर्माणकाल के विषय में लिखा है कि रासो की प्राचीनतम प्रति सं० १६६६ की प्राप्त हुई है। गुजरात में नरपति नामक कवि की 'नन्दबत्तीसी (सं० १५४५), 'विक्रमपंचदण्ड' (सं० १५६०) और 'स्नेह परिक्रम' नामक रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं।[५] पं० मोतीलालजी मेनारिया ने बीसलदेव रासो का कर्ता और उक्त रचनाओं का कर्ता एक ही नरपति अनुमानित किया है[६] और रासो का निर्माणकाल सं० १५४५-६० अनुमानित किया है। श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने भी पं०मोतीलालजी के उक्त मत का ही समर्थन किया है।[७]

बीसलदेव रासो में बीसलदेव का विवाह राजा भोज परमार की पुत्री राजमती से होना लिखा गया है। राजा भोज विग्रहराज द्वितीय का समकालीन था, जिसका समय १०३० से १०५६ वि० सं० माना जाता है। ऐसी अवस्था में नरपति नायक का समकालीन सिद्ध नहीं होता जब कि उसने रासो में वर्तमान कालिक क्रियाओं का प्रयोग किया है। रासो में आना सागर का वर्णन भी है—

दीठउ आनासागर समद तणी वहार। हंस – गवणी मृग–लोचणी नारि ॥
एक भरइ बीजी कलिरव करइ। ताजी धरी पावजे ठण्डा नीर ॥
चौथी घनसागर जू घूलई। इसो हो समद अजमेर को बीर ॥ [८]

---

१ – हि० सा० इ०, ७ वां सं०, पृ० ३४।
२ – ना० प्र० प०, भाग १४ अंक १, पृ० ६६।
३ – हि० सा० आ० इ०, पृ० १४७।
४ – बीसलदेव रास, सं० डा० मा० प्र० गुप्त और अ० च० नाहटा, हि० प० प्रयाग, भूमिका पृ० ५८।
५ – मो० द० दे०, जैन गुजर कविओ, भाग ३, पृ० २१५१।
६ – रा० भा० सा० हि० सा० स०, पृ० ८८।
७ – हि० सा० आ० का०, पृ० ५२।
८ – ना० प्र० स० स०, छ० स० २७, पृ० २७।

४५ २। अनासागर का निर्माण विग्रहराज चतुर्थ के पिता अर्णोराज द्वारा सम्पन्न हुआ था।[1] इस क्षेपक से बीसलदेव रासा का चरित्र नायक विग्रहराज चतुर्थ ज्ञात होता है और राजमती धाराधिपति भोज परमार की पुत्री न हो कर किसी अन्य भोज वंशीय अथवा भोज अवटंक धारी परमार की कन्या हो सकती है।

वास्तव में बीसलदेव रासो १३वी सदी मे गेय प्रेमाख्यान के रूप म नरपति द्वारा रचा गया था। अनेक वर्ष मौखिक रहने से इसमे अनेक प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित हो गये और इसकी भाषा का मूल रूप भी सुरक्षित नही रह सका। १७ वी सदी वि० मे यह लिपिबद्ध किया गया और इसी समय की भाषा का रूप सौंदर्य इसमे सुरक्षित है।

४६ २। बीसलदेव रासो की समीक्षा इतिहास की दृष्टि से न हो कर एक काव्य ग्रंथ के रूप मे ही होनी चाहिये।

(६) प्रारम्भकाल के अन्य कवि-कोविद

(१) पुष्पी, वि० स० ७००, दोहो में रचित अलकार ग्रन्थ।
(२) ढेंढणपा वि० स० ६००, चतुर्योग भावना।
(३) गोरखनाथ, वि० स० ६००, गोरखवाणी।
(४) खुमाण, वि० स० ६००, खुमाण रासा।
(५) देवसेन, वि० स० ६६०, १ सावय धम्म-दोहा, २ दशन सार।
(६) पुष्पदन्त, वि० स० १०१५, १ महापुराण २ जसहरचरिउ, ३ णायकुमार चरिउ।
(७) लाखा, वि० सं० १०३६, फुटकर दोहे।
(८) रामसिंह, वि० स० १०५०, पाहुड दोहा।
(६) धनपाल, वि० स० १०५०, भविस्सयत्तकहा।
(१०) मुञ्ज वि० स० १०५०, फुटकर दोहे।
(११) भोज, वि० स० १०५०, फुटकर दोहे।
(१२) कनकामर मुनि, वि० स० ११२६, करकंड चरिउ।
(१३) जिनवल्लभ सूरि, वि० स० ११६६, वृद्धनवकार।
(१४) जिनदत्त सूरि, वि० स० ११५०, १ चाचरि २ उवएसरसायण, ३ काल स्वरूप कुल।

---

१ – डा० ओझा, रा० का० इ०, जी० १, पृ० ३०५।

(१५) श्राम भट्ट, वि० स० ११५०, फुटकर छन्द ।
(१६) अज्ञात, वि० स० १२०६, उपदेशतरगिणी ।
(१७) महेश्वर सूरि, वि० स० १२२०, समयजसमजरी ।
(१८) जिनपति सूरि, वि० स० १२३२ बघावणा गीत ।
(१९) वज्रसेन सूरि, वि० स० १२२५ भरतेश्वर-बाहुबलि घोर ।
(२०) कुमण चारण, उपदेश तरगिणी में सकलित रचनाए ।
(२१) रामचन्द्र चारण, पुरातनाचार्य प्रबन्ध मे सकलित रचनाए ।
(२२) बागण कवि, पुरातनाचार्य प्रबन्ध म सकलित रचनाए ।
(२३) उदयसिह चारण, प्रबन्ध चितामणी म सकलित रचनाए ।

३ वीरगाथा काल

क प्रारम्भिक परिचय

४७ २ । भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान की वि० स० १२५० (ई० सन् ११९३) में मुहम्मद गोरी स पराजय के फलस्वरूप विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओ का आधिपत्य भारतवर्ष में स्थिर हो जाता है और देश मे एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है । इसी समय भारतीय इतिहास में मुस्लिम काल प्रारम्भ होता है । तत्पश्चात् भारतीय स्वाधीनता सघर्ष की बागडोर मुख्यत राजस्थान के राजपूत नरेशो क हाथो में रह जाती है और महाराणा कुम्भा, कान्हडदव चौहान, हमीर एव महाराणा साँगा जैसे वीर नरेश भारतीय सस्कृति की रक्षा करते हुए विदेशी आक्रान्ताओ से तत्परतापूर्वक सघर्ष करते हैं । इन राजपूत राजाओ द्वारा राजस्थानी साहित्य, सगीत, नृत्य, चित्र और शिल्प स्थापत्यादि प्रवृत्तियो का विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होता है । राजस्थानी भाषा साहित्य की विभिन्न विधाए इस काल मे स्पष्ट रूपण परिलक्षित हो जाती हैं । जैन पद्य गद्य और चम्पू रचनाओं के साथ ही चारण रचनाए इस काल की विशेष उपलब्धिया हैं ।

४८ २ । इस काल की जन-भावनाओ में भी विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं । जनता राजपूत शासको और सेना नायको को अपना एक मात्र त्राता समझती है। इस काल में भारतीय स्वाधीनता सघर्ष के लिये राजस्थान एक विशेष केन्द्र बन जाता है । राजपूत सेना-नायक राजस्थान क विभिन्न सुरक्षित भागो मे अपने शासन स्थापित करते हैं । गुहिलोत राजपूतो का शासन मेवाड मे वि० स० ७९०, (७३३ ई०) से ही स्थापित हो चुका था किन्तु राठोडो का जोधपुर और बीकानेर मे, कछवाहो का ढूढाड में तथा हाडा चौहानो का हाडौती प्रदेश म शासन इसी काल मे स्थापित हुआ ।

पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के मध्य हुए अन्तिम तराइन युद्ध में गोरी की विजय हुई, जिससे प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जनता में प्रबल वीर भावना जागृत हुई। राजस्थान में वीरता पूर्ण धर्म युद्ध, जौहर और बलिदान की ऐसी परम्पराएं प्रचलित हुईं जिनके उदाहरण विश्व इतिहास में अन्यत्र अप्राप्य है।

४६ २। वीरता के इस युग में प्रायः जैन और अन्य प्रकार के सन्त कवियों ने भी वीररसात्मक रचनाएं लिखी और भक्ति का स्वरूप भी वीरता का आवरण ओढ़ कर सामने आया।

ख वीरगाथा काल के प्रधान कवि और कृतियां

(१) शालिभद्र सूरि

५० २। राजस्थानी साहित्य के वीरगाथाकाल के प्रथम कवि शालिभद्र सूरि हुए, जिन्होंने वि० सं० १२४१ में भरतेश्वर बाहुबलि रास काव्य लिख कर रास परम्परा के अन्तर्गत वीर रसात्मक काव्यों का श्रीगणेश किया। मुहम्मद गोरी की पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध तराइन युद्ध (वि० सं० १२४०, ई० ११९३) की विजय से जनता में प्रबल प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई और वीर रस का संचार हुआ। फलस्वरूप शालिभद्र सूरि अहिंसा व्रत धारि एवं जैन साधु होते हुए भी अपने आप को समसामयिक वीर भावना से वंचित न कर सके।

सामयिक वीर भावना के परिणामस्वरूप जैन साहित्य में भरतेश्वर और बाहुबलि युद्ध विषयक काव्य निर्माण की परम्परा प्रचलित होती है। भरत और बाहुबली के मध्य हुए युद्ध के दृश्य अर्बुदाचल के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर विमल वसही में सुन्दरतापूर्वक उत्कीर्ण किये गये हैं।[1] यह रास वीर रस पूर्ण होते हुए भी निर्वेदान्त है। इसमें उत्साह, दर्प और स्वाभिमान पूर्ण उक्तियों की काव्यात्मक पंक्तियां विशेष पठनीय हैं। अनेक स्थल नाटकीय संलापों से अलंकृत हैं यथा— मतिसागर-भरतेश्वर संवाद, दूत-बाहुबलि संवाद आदि। दूत-बाहुबलि संवाद का एक उदाहरण निम्नलिखित है —

दूत पभणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ,
भरहेसर चक्क धरु कहि न कवणि दूहवण कीजिइ,
बेगि सुबेगि बोलिह सभलि बाहुवलि।
बिण बंधव सवि सपइ ऊणी, जिम बिण लवण रसोई अलूणी।
तुम बसणि उत्कठित राउ, नितु नितु बाट जोह भाउ॥

---

१ — भरतेश्वर बाहुबलि रास, सं० लालचन्द भगवानदास गांधी, प्राच्य-विद्या मन्दिर, बड़ौदा, प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

बाहुबलि दूत को वीरतापूर्वक उत्तर देते है —

राउ जपइ राउ जपइ सुणिन सुणि दूत ।
जविहि लिहीउ भालयलि तजि लोह इह लोइ पामइ ।
अरि रि ! देव न दानव महिमडलि मडलेव मानव
काइ न लघइ लहोयालोह, लाभइ अधिक न ओछा दोह ।[1]

५१ २ । इस रास मे सना वणन, दिग्विजय-वर्णन, हाथी, घोडों और सैनिका के अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, कि तु भाषा मे सवत्र प्रवाह और अनुप्रासो की छटा वर्तमान है । वीर-रसात्मक का यो मे सेना यात्रा के प्रसग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने हैं । भरतेश्वर बाहुबलि रास में सेना यात्रा का वर्णन इस प्रकार है —

ठवणि

अहि उग्गमि पूरव दिसिहिं, पहिलउ चालिय चक्क ।
घूजिय धरयल थरहरए, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पूठि पियाणु तउ दियए, भुयबलि भरह नरिदु तु ।
पिडि पचायण परदलहे, हलियलि अवर सुरिंद तु ॥१६॥
वज्जिय समहरि सचरिय, सेनापति सामत ।
मिलिय महाधर मडलिय, गाढिम गुण गज्जत ॥२०॥[2]

(२) शार्ङ्गधर

५२ २ । कवि शार्ङ्गधर के हमीर रासो और हमीर का य नामक ग्र थ प्रसिद्ध हैं किन्तु ये पूर्ण रूप में अप्राप्य हैं । इनके सस्कृत ग्र थ शार्ङ्ग धर सहिता (वैद्यक) और शार्ङ्गधर पद्धति (सुभाषित, र० का० १४२० वि०) अवश्य ही पूर्णरूप मे प्राप्त होत हैं । इनके भाषा काव्यो के कतिपय उदाहरण प्राकृतपैंगलम म प्राप्त होते हैं, जिनसे ये कुशल कवि प्रतीत होते हैं —

पिधउ दिढ सणाह बाह उप्पर पक्खर दइ ।
बधु समदि रण धसउ हम्मीर बअण लइ ।
उड डल णाहपटट भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ ।

---

१ — आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रासकाव्य, 'हरीश', मगल प्रकाशन, जयपुर ।

२ — क — हिन्दी काव्य धारा, राहुल सांकृत्यायन, पृ० ४०० ।

ख — आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, 'हरिश', मगल प्रकाशन, जयपुर ।

हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ, कोहाणल मुहमह जलउ ।
सुलताण सीस करवाल दइ-तज्जि कलेवर दिम चलउ ॥

उक्त पद्य मे रणथम्भोर के राजा हमीर का सेनापति जज्जर प्रतिज्ञा करता है कि — मजबूत कवच पहन कर, घोड़े पर पाखर डालकर बंधुजनों को आश्वासन देकर और शाह हमीर के वचनों को ग्रहण कर मैं रण में उतरता हूँ। मैं अन्तरिक्ष एवं आकाश मार्ग में भ्रमण करता हूँ। खड्ग से शत्रुओं के सिरों को काटता हूँ। पाखर से पाखर ठेल-ठेल कर मैं पर्वतों को कम्पायमान करता हूँ। जज्जर कहता है कि हम्मीर के कार्य हेतु मैं बार-बार कोपाग्नि में जल रहा हूँ और सुलतान के मस्तक पर तलवार का प्रहार कर देह को तज स्वर्ग में चलता हूँ।[1]

(३) बारूजी सौंदा

५३ २। बारूजी 'सौदा' नामक शाखा के चारण कवि थे और मेवाड़ के महाराणा हमीर के समकालीन थे। महाराणा हमीर के समयानुसार बारूजी का रचना काल सं० १४०८ से १४२१ के बीच निश्चित होता है। बारूजी रचित स्वतन्त्र काव्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, किन्तु स्फुट रचनाएं अवश्य मिलती हैं।[2] इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

एला चित्तोड़ा सहै घर आसी, हूँ थारा दाखिया हरू ।
जगणी इसो कहू नह जायो, कहवे देवी बीज करू ॥१॥

रावळ बापा जसो रायगुर रीझ खीझ सुरपत री रूस ।
दस सहसा जहो नह दूजो, सकती कर गला रा सूस ॥२॥

मन साचे मासे महमाया, रसणा सहती बात रसाळ ।
सरज्यो लै अडसी सुत सरखो, पकडे लाउ नाग पयाल ॥३॥

आलम कलम नवे खड एता, वैल पुरारी मीढ किसो ।
देवी कहै सुण्यो नह दूजो, अवर ठिकाणे भूप इसो ॥४॥

(४) श्रीधर व्यास

५४ २। श्रीधर व्यास कृत "रणमल छन्द" भी इसी काल का एक उत्कृष्ट रचना है। श्रीधर ईडर के राजा रणमल राठौड़ के समकालीन थे। रणमल और पाटण के सुबेदार

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ७६।

२ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, रा० शो० स०, जोधपुर प्रस्तावना पृ० १०३।

मुजफ्फरशाह के मध्य सन् १३९७ (वि० सं० १४५४) में हुए युद्ध का वर्णन कवि ने ओजस्वी शब्दावली में किया है। रणमल छन्द ७० छन्दों की एक लघु कृति है किन्तु प्राचीनता और रसपरिपाक के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है —

गोरीदल गाहवि दिटठ दहु हिमि गढि मढि गिरि गहरि गडिय।
हणहणि हवकन्तउ हुँहुँ हय हय हुकारवि हयमरि चडिय॥
धडहडउ धडि धमधज्ज धरातलि धसि धगडायण धूस धरइ।
ईडर वइ पडर वेस सरिसु रणि रामायण रणमल्ल करइ॥[1]

(५) सिवदास गाडण

५५ २। सिवदास जाति के चारण थे और गाडण इनका गोत्र था। सिवदास ने "अचलदास खीची री वचनिका" नामक वीर रसात्मक चम्पू काव्य लिखा। इस काव्य में गागरोनगढ (कोटा) के खीची राजा अचलदास और माडू के बादशाह हुशंग गोरी के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध वि०सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में हुशंग गोरी के गागरोनगढ पर चढाई करने पर हुआ था। डा० तेस्सीतोरी ने ग्रंथकार को अचलदास का समकालीन बताते हुए युद्ध के समय ही काव्य का निर्मित होना सूचित किया है।[2] डा० हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार काव्य का निर्माण सं० १५०० के लगभग हुआ।[3] इस प्रकार काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। यह काव्य भाषा – सौष्ठव, उक्ति वैचित्र्य और वीररस की दृष्टि से उत्तम काव्यों की श्रेणी में है। इस के उदाहरण इस प्रकार हैं —

"एकणि वनि वसतडा, एवड अतर काइ।
सीह कवडडी न लहै, गैवर लक्खि विकाइ॥ १॥
गैवर गलै गळथीयो, जह खचे तह आइ।
सीह गलथ्थण जे सहै, तो दह लक्ख विकाइ॥ २॥

वात

देस तो कोण-कोण। सत्यासी। नमीयाड, आसेर, रायगण, ग्रोली, पट्टोली, सेलारपुर, माड सीहोर, हैसगाबाद नगर का। इमा एक ते कटक बाघ। देस-देसक।

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस भूमिका पृ० १०४।

२ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलोग आफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेनुस्क्रिप्ट्स, भा० प्रथम, बीकानेर स्टेट, पृ० ४१।

३ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ८४।

खड खड का। नगर नगर का। घर घर का। खान, मार, उमराउ, चतुरग दल चढि चाल्या। पातसाहि पायाए पै पलाए चाल्या। इसो होद राजा कौण छे जिहा का पातसाह के मनि रोस वसी। कुणे का माथा सो तिसी। कुणे देव रुठो। कुणे की माइ वियाणी जो सामहो रहे।"

(६) बादर दाढी

५६ २। बादर अर्थात् बहादुर जाति का मुसलमान ढाढी था जिसने अपने आश्रयदाता दला जोईया और वीरमजी के बीच होने वाले सघर्ष का वर्णन् वीरमायण काव्य में किया है। प० रामकर्ण जी आसोपा ने वीरमायण के कर्ता का नाम रामचन्द्र लिखा है।[1] स्व० आसोपाजी का यह मत समीचीन नही है क्योकि काव्य में कर्ता का नाम बादर ढाढी ही मिलता है —

"बादर ढाढी बोलियो नीसाणी गला।"[2]

५७ २। राजस्थान में ढाढी हिन्दु और मुसलमान दोनो ही जातियो के होते हैं। बादर मुसलमान ढाढी था क्योकि उसने अपने काव्य मे हिन्दुओ के लिये "काफर" शब्द का प्रयोग किया है —

'काफर माल कुराण कु लरा वेर लगाणी।[3]

५८ २। वीरमायण के रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं। प० मोतीलालजी मेनारिया ने बादर को मारवाड के राव वीरमजी का आश्रित बताते हुए वीरमायण का रचना काल राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा और डिंगल में वीर रस[4] में स० १४४० के आसपास बताया है। बाद मे आपने अपना मत परिवर्तित करते हुए इस काव्य का रचना काल अठारहवी शता० ी का मध्य लिखा है।[5] डा० सुकुमार सेन ने राव वीरम को ही कवि का आश्रयदाता मानते हुए वीरमायण का रचना-काल १५ वी सदी लिखा है।[6]

---

१ – मारवाड का मूल इतिहास, पृ० ८७।

२ – प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, नीसाणी स० ८०,।

३ – वीरवाण (वीरमायण) स० श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, छन्द सख्या ६५, पृ० स० ३१।

४ – क – प्रकाशक– छात्र हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग, पृ० २२१।
ख – प्रकाशक– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भूमिका पृ० ३६।

५ – राजस्थानी भाषा और साहित्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २२६।

६ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग, पार्ट १, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, पृ० ३।

५६ २। बादर ने वीरमजी और दला जोइया के मध्य होने वाले सघर्ष के कारणों और सघर्ष का वर्णन किया है जिसमें वीरमजी और उनके अनुयायियों को दोषी तथा जोइयो को निर्दोष बताते हुए जोइया की प्रशसा की है —

> अला अला उचार के चढ खेंगा चला।
> जुडिया तेगा जोइया हुय वीरा हला।
> वीरम मला वोटीया बाजो गलबला।
> भड वीरम मदु भिडे जाणे जम टीला।
> वीरमदे जोया विचे भासे रिण भला।
> सिह अचानक साकडे घड कु जर थला।
> केहर जाणक कोप कर उठिया गीर टीला॥[1]

यह कृति जोईयो के ढाढी बादर की (बहादुर की) है —

'हू बादर ढाढी जोया रो हो। सो मैं पूछ ने सुणी जिसी हगीगत सु बणावट करी। मै जोइया रे नगारे माथे हो। हेत-वेर सारो निजरा देख्यो। पछे धीरदेजी काम आया। जा पछे तेजमाल जोये मने कैयो के बादर सिरदार मारिजिया जिण तरै हुइ थे देखी जिसो सारी हगीगत बरण करो।"[2]

६० २। ऐसी अवस्था में "वीरमायण' को "दलायण" भी कहा जा सकता है। सम्भव है प्रारम्भ मे यह कृति "दलायण" के नाम से ही प्रचलित रही हो और कालान्तर में वीरमजी राठोड के पक्ष वालो ने इसमें वीरमजी का वर्णन देख कर इसको "वीरमायण" के नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो।

(७) पद्मनाभ

६१ २। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्थान में रणथमोर, चित्तौड और जालोर आदि दुर्गों पर आक्रमण किये। राजपूत योद्धाओं ने वीरतापूर्वक प्रतिकार किया तथा राजपूत रमणियों ने जौहर व्रत का पालन किया, जिसके विषय में अनेक काव्यो और वार्ताओं की रचनाए हुई —

चित्तौड-युद्ध —

(१) मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत (र० का० १५९७ वि०),

---

१ – वीरवांण (वीरमायण) स० श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्र थ स० ८५, पृ० स० ४५।

२ – वही, पृ० १५।

(२) हेमरतन – गोरा बादल पदमिणी चऊपई (र० का० १६४६ वि०)[1]
(३) लब्धोदय कृत – पद्मनी चरित् (र० का० १७०२ वि०),
(४) जटमल कृत – गोराबादल वार्ता (लि० का० १८२८ वि०),
(५) भाग्य विजय कृत – गोराबादल चौपाई (लि० का० १८०३ वि०),
(६) अज्ञात कर्तृक – गोराबादल कथा।

रणथम्भोर युद्ध —

(१) नयचन्द्र कृत – हमीर महाकाव्य, स० (लि० का० १४४२ वि०),
(२) जोधराज कृत – हमीर रासो, अपर नाम हमीरायण (र० का० १७८५ वि०),
(३) ग्वाल कवि कृत – हमीर हठ,
(४) चन्द्रशेखर कृत – हमीर हठ।

जालोर युद्ध —

(१) कवि पद्मनाभ कृत – कान्हडदे प्रबन्ध (र० का० १५१२ वि०)
(२) अज्ञात कर्तृक – वीरम दे सोनीगरा री वात, (लि० का० १७६१ वि०)।

६२ २। अलाउद्दीन के आक्रमण के समय जालोर पर सोनीगरा चौहान कान्हडदे का शासन था। कान्हडदे ने अपने वीर राजपूत सैनिकों सहित अनेक वर्षों तक संघर्ष किया और अन्त में वीरगति प्राप्त की। कान्हडदे के साथ ही उसके पुत्र वीरमदे ने वीरतापूर्वक युद्ध किया। कवि ने वीरमदे और अल्लाउद्दीन की पुत्री का पूर्व जन्मों का सम्बन्ध बताते हुए प्रेम प्रसंग भी काव्य में दिया है।

६३ २। कान्हडदे प्रबन्ध प्राचीन राजस्थानी का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जिसका निर्माण काल संवत् १५१२ है। काव्य की रचना जालोर के चौहान नामक अखैराज के ही आश्रित कवि पद्मनाभ ने युद्ध के १५० वर्ष पश्चात् की, जिससे इसका विशेष महत्त्व है। काव्य का मूल पाठ पूर्ण रूपेण सुरक्षित रहा है।[2]

६४ २। कान्हडदे प्रबन्ध चार खण्डों में विभाजित है। 'वीरमदे सोनीगरा री वात' भी इसी विषय पर आधारित है, जिसकी राजस्थान में अनेक प्रतियां प्राप्त होती

---

१ – श्री रुद्रकाशिकेय, प्रधान सम्पादक — 'राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रन्थमाला', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, ने इस कृति का र०का० १७६० वि० दिया है (छिताई वार्ता, परिचय, पृ० २२)। यह कृति महाराणा प्रताप के दीवान भामाशाह के लघु भ्राता ताराचन्द कावड्या की आज्ञा से सादड़ी में वि०सं० १६४६ में रचित है।

२ – डा० माताप्रसाद गुप्त, आलोचना, भाग १६, पृ० ६४, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

है।[1] प्रबन्ध – दोहा, चौपाई और सवैया भी देशियो मे लिखा गया है। इसमे पाच लौकिक शैली के गीत और दो गद्यांश भी दिये गये हैं।

६५ २। पद्मनाभ एक कुशल कवि था इसलिए कवि को इतिहास, कल्पना और काव्य तत्वो के निर्वाह मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार-"पद्मनाभ कोरा ऐतिहासिक ही नही था, वह कवि भी था, अत उसे ऐसी कथाओ की कल्पना और उसके समावेश का भी पूर्ण अधिकार था।"[2] कवि ने तत्कालीन भौगोलिक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो का भी यथातथ्य चित्रण अपने काव्य मे किया है। काव्य के सम्पादक प्रो० के० बी० व्यास ने इसकी तुलना पृथ्वीराज रासो स करते हुए इसको समान रूप म महत्वपूर्ण बताया है।[3]

६६ २। कान्हडदे प्रबन्ध म कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

पदमनाभ पडित भणइ, जनमेतरि जे रीति।
जाति हुई जूजूई, पूठि न छाडइ प्रीति ॥३, २०६

× × ×

पदमनाभ पडित भणइ, प्रीति परीक्षा एह।
अग विठु जण उल्हसइ, नर नारी नवनेह ॥३, २३०

× ×

सीन्हा तुरी ऊडवइ गाउत भला नावरइ भाला।
माझिम राति म्लेच्छ मारता, दह दिसि हीडइ भूला ॥१, २०८॥
सपराणा सीगीणे गुण गाजइ तीन्हा तूर विछूटइ।
जरइ जीण आगा बोध्यनिइ, अगि सू सरा फटइ ॥१, २०९॥
अगो अगि परे अणीयाले, प्राणइ पापर फोडइ।
पाडा तणे घाइ समराणे, साथिइ साथि विछोडइ ॥१, २१०॥

(८) महाकवि चन्द : पृथ्वीराज रासो

६७ २। महाकवि चन्द कृत पृथ्वीराज चौहान विषयक रचनाओ के प्राचीनतम प्रमाण ४ छप्पय-छन्दो के रूप मे मुनि श्री जिनविजयजी पुरातत्वाचार्य को वि०स० १२९० से १५२८ तक रचित छन्दो के वि०स० १५२८ मे लिपिबद्ध हुए "पुरातन प्रबन्ध सग्रह"

---

१ – राजस्थानी साहित्य सग्रह भाग २ सम्पा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

२ – शोध पत्रिका, भाग ३, अक १, पौष २००८।

३ – प्रस्तावना प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

में उपलब्ध हुए[1] और इन छन्दों में से तीन छन्द काशी नागरी प्रचारिणि सभा से प्रकाशित संस्करण में भी परिवर्तित रूप में श्री मुनिजी ने खोज निकाले। उक्त छप्पय इस प्रकार है —

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पई कईवासह मुक्कश्रो।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ।
बीअंकरि सधीउ भमइ सूमेसरनदण –
एहु सु गडि दाहिमश्रो खणइ खुद्दइ सइमरिवणु।
फुड छडि न जाई इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।,
न जाणउ चंदबलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥[2]

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यो।
उर उप्पर थरहरयो बीर कष्पतर चुक्यो॥
बियो बान सधान हन्यो सोमेसर नंदन।
गाढो करि निग्रह्यो षनिव गड्यो सभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरो गड्यो गुन गहि अग्गरो।
इम जपे चदवरद्दिया कहा निघट्टे इन प्रलो॥[3]

अगहु म गहि दाहिमश्रा रिपुरायखयकरू।
कूडु मन्त्र मम ठवश्रो एहु जबुय (य) मिलि जग्गरू।
सहनामा सिक्खवउ जइ सिक्खिवउ बुज्झाइ।
जपइ चदवलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरिघणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास विश्रास विसट्ठविणु मच्छिबधिबद्धश्रो मरिसि॥[4]

अगह मगह दाहिमो देव रिपुराई षयंकर।
कूरमत जिन करौं मिले जम्बू वै जगर॥
मो सहनामा सुनो एह परमारथ सुज्झै।
अज्जैं चद बिरद्द बियो कोई एह न बुज्झै॥
पृथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस।
कैमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बध्यो मरिस॥[5]

---

१ – सिंघी जन ग्रन्थमाला, संख्या २, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, पृ० ८६, ८८ और ८९।

२ – पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ८६, पद्य २७५।

३ – पृथ्वीराज रासो, पृ० १४६६, पद्य २३६।

४ – पु० प्र० स०, पद्य २७६।

५ – पृ० रा०, पृ० २१८२, पद्य ४७५।

त्रिण्हि लक्ष तुयार सबल पाषरीमइ जसु हय,
चऊद सय मयमत्त दति गज्जति महामय।
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क षणुद्धर,
ल्हसडु अरु बलु यान सरव कु जाणई ताह पर।
छत्तीस लक्ष नरहिवई बिहि विनडिम्रो हो किम भयउ,
जइचद न जाणउ जल्हुकइ गयउ कि मुउ कि घरि गयउ,॥[1]

असिय लष्य तोषार सजउ पष्पर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुग्न गज्जत महाबल॥
पच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर।
जुध जुधान वर वीर तोन बधन बद्धनभर॥
छतीस सहस रन नाइवो बिहि त्रिम्मान ऐसो कियो।
जैचद राइ कविचद कहि उदधि बुड्डि कै घर लियो॥[2]

उक्त ■ पद्यो से सिद्ध होता है कि कवि चन्द ने पृथ्वीराज के विषय मे छद लिखे थे और वे वि० स० १५२८ तक लोकप्रिय हो चुके थे एव इन छदो को सग्रह ग्रथो मे मान्यता मिलने लगी थी।

६८ २। पृथ्वीराज रासो की लगभग ६० प्रतिया ग्रब तक उपलब्ध हो चुकी हैं[3] और इन सब मे आकार प्रकार एव रूप की दृष्टि से अनेक भेद हैं। पृथ्वीराज रासो के रूपान्तरों को ४ भागो में विभक्त किया गया है —

(१) वृहत् रूपातर, (२) मध्यम रूपातर (३) लघु रूपातर, (४) लघुतम रूपातर।[4]

वृहत् रूपातर की प्रतिया वि० स० १७६० और उसके बाद की हैं और इसकी प्राचीनतम प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भण्डार के सग्रह मे सुरक्षित है। वृहत् रूपान्तर महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि० स० १७५५ १७६७) की आज्ञा से तैयार किया गया था। वृहत् रूपातर की उक्त प्रति के अन्त में निम्नलिखित छप्पय भी प्राप्त होता है —

---

१ – पु०प्र० स०, पृ० ८८, पद्य २८७।

२ – पृ रा०, पृ० २५०२, पद्य२१६।

३ – राजस्थान का पिंगल साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ४४, ४५।

४ – प० नरोत्तमदासजी स्वामी राजस्थान भारती, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, अप्रेल सन् १९४६, पृ० ३४।

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय ।
छन्द गुनी ते तुट्टि मन्द कवि भिन्न भिन्न किद्धिय ॥
देस देस विप्पारय, मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करि मेलवत, आस विन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस नृप, हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लाख रासो उद्दिम कियौ ।

उक्त छप्पय से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज रासो के छन्द मूल ग्रन्थ से अलग हो गये थे, जैसे कोई माला टूट कर उसकी मणियां बिखर जाती हैं। महाराणा अमरसिंह की आज्ञा से मेवाड़ देश में प्रचलित इन छन्दों को एकत्रित कर क्रमबद्ध किया गया। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण बृहद् रूपांतर पर आधारित है। अब आवश्यकता यह है कि प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर पृथ्वीराज रासो का एक बृहत्तम संस्करण तैयार किया जाय जिससे इस महान् कृति का समुचित मूल्यांकन हो सके। सं० १७६० में किये गये उक्त संकलन में अनेक छन्दों का छूट जाना संभव है। पृथ्वीराज रासो का पूर्ण रूप सामने आना आवश्यक है। अवश्य ही इसमें प्राचीन काल में किये गये अनेक कवियों के क्षेपक होंगे किन्तु इन क्षेपकों को भी काव्य सीमा से बाहर नहीं रखा जा सकता।

६९ २। पृथ्वीराज रासो के मध्यम रूपांतर वि० सं० १७२३ और १७३६ १७४० में लिपिबद्ध हुए हैं। बृहत् रूपान्तरों में अध्यायों का नाम 'सम्यौ' है किन्तु मध्यम रूपान्तरों में इनको 'प्रस्ताव' कहा गया है।

७० २। लघु और लघुतम रूपान्तरों की प्रतियां १७वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुई हैं। लघु रूपान्तरों में अध्यायों को 'खण्ड' कहा गया है और लघुतम रूपान्तर की प्रतियां अध्यायों में विभक्त नहीं हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति धारणोज में वि०सं० १६६७ की उपलब्ध हुई है और यह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के केन्द्रीय पुस्तकालय जोधपुर में सुरक्षित है। इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

"इति श्री कवि भट्ट चंदवरदाई कृत राजा श्री प्रिथीराज चहुआण रासउ रसाल संपूर्ण ॥ ग्रंथाग्र १३०० सिलोक छन्द। श्रेयमस्तु। लेखक पाठयो। यादृशं पुस्तके दृष्टा तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ श्री रस्तु ॥ श्री कल्याण ६६ ॥ संवत् १६६७ वर्षे, शाके १५३२ प्रवत्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याणमलजी तत्पुत्र राजा श्री भाणजी तत्पुत्र राजा श्रीभगवानदासजी पठनार्थं श्रेय कल्याण श्री शुभ भवतु।"

७१ २। उक्त प्रति मे और पुरातन प्रबन्ध संग्रह से महाकवि चन्द द्वारा पृथ्वीराज रासा का १६वां सदी से पहले रचा जाना सिद्ध होता है। लघुत्तम रुपांतर वृहद् पृथ्वीराज रासा का संक्षिप्त रूप भी हो सकता है। राजस्थान में विशाल काव्य ग्रंथो को संक्षिप्त रूप देने की परम्परा भी रही है, उदाहरण स्वरूप बिडदसिणगार' और 'जसवंतभूषण' नामक काव्यों को लिया जा सकता है। 'बिडदसिणगार १२५ छन्दों का काव्य है और यह चारण कवि वरसीदान कृत सूरजप्रकाश' नामक साढे सात हजार छन्दों में रचित महाकाव्य का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार जसवंतभूषण नामक काव्य कविराजा मुरारीदान कृत जसवंतजसोभूषण का संक्षिप्त रूप है।

७२ २। डा० मातांप्रसाद गुप्त ने पृथ्वीराज रासो के लघुतम रूपान्तर को मूल के समीप अनुमानित करते हुए लिखा है —"मंगलाचरण और कथा की एक संक्षिप्त भूमिका के अनन्तर जयचन्द के राजसूय और संयोगिता के पृथ्वीराज सम्बन्धी प्रेमानुष्ठान विषयक विवरणों से रचना प्रारम्भ हुई होगी। तदनन्तर उसमें मंत्री कयमास के वध, पृथ्वीराज के कन्नोज गमन में उसके प्राकट्य, संयोगिता परिणय पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध और दिल्ली आकर पृथ्वीराज संयोगिता के केलि विलास की कथाएं उसके पूर्वार्द्ध की सृष्टि करती रही होंगी और उत्तरार्द्ध में उस केलि विलास से चन्द के द्वारा किये गये पृथ्वीराज के उद्‌बोधन, शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के (द्वितीय) युद्ध तथा शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अन्त की कथाएं रही होंगी। इस मूल रूप का आकार लगभग ३६० रूपकों का रहा होगा।' [1]

७३ २। आचार्य प० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के मतानुसार — मूल रासो की रचना शुक शुकी संवाद के रूप में होनी चाहिए अतएव शुक शुकी संवादों से युक्त प्रसंग ही प्रचलित रासो की प्रतियों में प्रामाणिक है — शुक शुकी के संवाद रूप में कथा कहने की योजना तत्कालीन प्रचलित नियमों के अनुकूल तो थी ही, इसलिए भी आवश्यक थी कि उसमें चंद कवि स्वयं एक पात्र है। किसी दूसरे के मुख से ही अपने बारे में कुछ कहलवाना कवि को उचित लगा होगा।[2]

७४ २। स्व० कविराव मोहनसिंह के मतानुसार पृथ्वीराज रासो में संस्कृत वृत्तों के अतिरिक्त साटक, गाथा दोहा और कवित्त (छप्पय) का ही समावेश होना चाहिए क्योंकि कवि चन्द ने इन्हीं छन्दों के लेखन का संकेत किया है —

छन्द प्रबन्ध कवित्त जति साटक, गाह, दुअत्थ।
लहु गुर मंडित खंडियहिं पिंगल अमर भरत्थ॥[3]

---

१ – हिन्दी साहित्यकोष, भाग २, ज्ञान मंडल वाराणसी, पृ०३२१।
२ – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६५।
३ – प्रथम समय।

७५ २। उक्त आधार पर डा० कविराज जी ने पृथ्वीराज रासो का सम्पादन भी किया।[1] किन्तु लेपक कर्त्ताओं ने उक्त छन्द भी अन्य रासो में जोड़े होंगे। अतएव कविराजजी द्वारा रासो पाठ ग्रहण एवं सम्पादन के लिए अपनाया गया आधार निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी द्वारा बताए गए शुक शुकी संवादों में भी क्षेपक जुड़ना स्वाभाविक है।

७६ २। पृथ्वीराज रासो का उल्लेख उदयपुर के निकट राजसमुद्र नामक विशाल सरोवर के बांध पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में इस प्रकार उपलब्ध होता है —

"भाषारासापुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोऽस्तिविस्तरः ।"[2]

राजप्रशस्ति महाकाव्य का कर्ता मोटिंग भट्ट था, जिसने इसका लेखन कार्य वि०सं० १७१८ में प्रारम्भ कर वि०सं० १७३२ में पूर्ण किया था।[3]

पृथ्वीराज रासो का उल्लेख वि०सं० १७८७ में लिखित "जसवन्तउद्योत" नामक काव्य में भी हुआ है —

> चंद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि।
> संग बारह सामंत ले गयो सुपन अनुहारि।
> संयोगिता कुमारिका, बर्यो जहां चौहानु।
> तहीं पिथोरा कहु दयो, राह सबै जिय दानु।
> रासो पृथ्वीराज को, तहां बहुत विस्तारु।
> मैं बरन्यो संक्षेप हो, सकल कथा को सारु॥ — जसवन्त उद्योत[4]

तदुपरान्त कवि यदुनाथ कृत वृत्तविलास नामक काव्य में रासो का उल्लेख मिलता है —

> एक लाख रासो किया, सहस पंच परिमान।
> पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान॥[5]

बल्लभ कृत कुंवरप्रसंगाख्यान में रासो का उल्लेख इस प्रकार मिलता है —

---

१ — प्रकाशित, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर।
२ — सर्ग ३ — श्लोक २७।
३ — ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ५७०, ५७२ ५७७।
४ — अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की प्रति।
५ — रचनाकाल सं० १८००। डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का निबंध, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भारत समु प्रमाण, रासा ना तमासा मालो ।
कर्या भारत बेत्रण आरत उबेखिए ॥
पृथ्वीश प्रसशा कयो, मानशे नु मोधु तेमा ।
प्रेमानन्द नी कविता सविता सी पेखिए ॥
ब्राह्मण थी भाट थया, वशज विधि ना आ तो ।
कवीश्वर ना पिता थी, चद मद देखिए ॥[1]

७३ २। पृथ्वीराज रासा के उक्त उल्लेख १८वीं शताब्दी विक्रमी के हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राप्त अधिकाश प्रतिया भी १८वीं शताब्दी विक्रमी की प्राप्त होती हैं। इस आधार पर प० मोतीलाल जी मेनारिया ने पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल १८वीं शताब्दी विक्रमी माना है। इनका मत है — 'विक्रमी स० १७०० से पूर्व की अधिकाश प्रतियो मे सम्वत् और तिथि के साथ वार का उल्लेख नही है और किसी प्रति में वार का उल्लेख है तो वह गणना के अनुसार सही ज्ञात नही होता। इसलिए १७०० से पूर्व की प्रतिया जाली हैं। मेवाड के महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र के बाध पर शिलालेख के रूप म लगवाने के लिए राजप्रशस्ति महाकाव्य का निर्माण प्रारम्भ करवाया तब चद का कोई वशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बाते उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पडती अतएव चद रचित बतलाकर उसने इस सारे झगडे का अत कर दिया। चद का नाम लोक प्रचलित था ही। लोगो को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।"[2] प० मोतीलालजी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति महाराणा अमरसिंह द्वितीय (स० १७५५ ६६) के शासन काल में वि०स० १७६० में लिखी गई। यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भण्डार संग्रह में उपलब्ध है, इसकी पुष्पिका-लेख निम्नलिखित है —

"स० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायण गते श्री सूर्य शिशिर ऋतौ सन्मागलप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंह जी विजय राज्ये। मेदपाट जातीय भटट गोवधन सुतेन रूपजो ना लिखित चद बरदाई कृत पुस्तक।'

---

१ — रचनाकाल स० १८३८ श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, गुजरात एण्ड इटस लिटरेचर पृ० २००।

२ — राजस्थान का पिंगल साहित्य हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, पृ० ४०।

इसी प्रति के अन्त मे एक छप्पय इस प्रकार लिखित है —

> मिलि पकज गन उदधि करद कागद कातरनो।
> कोटि कवि काजलह कमल कटिक तै करनो।
> इहि तिथी सख्या गुनित कहै कक्का कविया ने।
> इहि श्रम लेखनहार भेद भेदे सोइ जाने।
> इन कष्ट ग्रथ पूरन करय, जन बड या दुख ना लहय।
> पालिये जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखिक विनती करय ॥

उक्त छप्पय का अर्थ करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है — "यदि पकज से पकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान ले, तो स० १६४१ बनता है। शेष शब्दो मे मास, तिथि आदि होगो, पर यह स्पष्ट नही होता। यदि इस हिसाब से रासो का सकलन स० १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नही होगा, इससे कई बातो का सामजस्य हो जायगा।'[1]

७८ २। उक्त मत के विपरीत 'मिली पकज गन उदधि करद' का अर्थ उदधि को ८ और करद (खग) को १ मानते हुए वि०म० १७६० किया गया है और अमरेश नृप से अभिप्राय अमरसिंह द्वितीय लिया गया है जिनका शासनकाल १७६० था।[2] साथ ही 'कातरनी' का अर्थ दो करते हुए रासो का निर्माणकाल १२०० के लगभग भी बताया गया है और महाराणा अमरसिंह के समय इसकी एक प्रति का लिपिबद्ध होना सूचित किया गया है।[3]

७९ २। वास्तव म उक्त छद लिपिकार क प्रति-लेखन मे किये गये परिश्रम को भी सूचित करता है। पकज गन स अर्थ हाथ की उगलिया और उदधि स अर्थ दवात है। करद, कागद, कातरनी, काजल, कटि आदि के अर्थ स्पष्ट हैं। उक्त शब्द 'क' स प्रारम्भ होने वाले हैं और नागरी लिपि का वर्णमाला भी कक्का कही जाती है। लिपिकार कहता है कि यह प्रति कष्टपूर्वक लिखी गई है इसलिए इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

---

१ — ओरियटल कान्फ्रेस स० १९९० के हिन्दी विभाग मे दिया गया भाषण।

२ — प० मोतीलाल जी मेनारिया राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर पृ० ४७।

३ — कविराव मोहनसिंह का निबन्ध, पृथ्वीराज रासो की विवेचना, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

८०२। डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, कविराजा श्यामलदास और कविराजा मुरारीदान आदि ने पृथ्वीराज रासो में ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक त्रुटियां बताते हुए इसको जाली लिखा है। इतिहासकारों में से सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टाड का ध्यान पृथ्वीराज रासो की ओर आकर्षित हुआ और उसने निम्नलिखित शब्दों में इस ग्रंथ की प्रशंसा की —

"चंद का यह ग्रंथ अपने समय का एक विश्वयुगीन इतिहास है। इसके ६९ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम सम्बन्धी एक लाख छन्द हैं जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्व पुरुषों का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिए राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखने वाली जातियां इसे अपने संग्रहालयों में रखती हैं और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओं का पता लगाती हैं जिन्होंने किर्मान के दर्रों में जबकि युद्ध के बादल हिमालय में हिन्दुस्तान तक के मैदानों में गड़गड़ा रहे थे, युद्ध-तरंगों का जल पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धों उनकी सन्धियों उनके वशवर्ती अनेक शक्तिशाली राजाओं, उनके निवासस्थानों तथा वंशावलियों ने चंद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्व का एक अमूल्य ज्ञापन बना दिया है तथा देव गाथाओं, रीतिव्यवहारों व मनुष्य के मन के इतिहासों का भी वह एक कोषागार है।"[1]

८१२। जेम्स टाड ने रासो के ३००० छन्दों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।[2] जेम्स टाड के अनुसार फ्रांसीसी विद्वान गार्सांदतासी ने भी अपने 'इस्तवार द ला लितरातयूर इंदुई ए इंदुस्तानी" (सन् १८३९ ई०) नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में रासो की प्रशंसा करते हुए इसको १२वीं शताब्दी की प्रति बताया। रावर्ट लिंज नामक रूसी विद्वान ने रासो के एक खण्ड का अनुवाद किया।[3] तदुपरान्त एफ० एस० ग्राउस, जान बीम्स और रूडाल्फ हार्नली प्रभृति विद्वानों ने जेम्स टाड का समर्थन करते हुए अनेक लेख लिखे और उसका अंग्रेजी अनुवाद छपवाना प्रारम्भ किया।[4]

८२२। ऐतिहासिकता की दृष्टि से रासो का सर्व प्रथम विरोध उदयपुर के कविराजा श्यामलदास ने किया और इस विषय में "पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता" नामक निबंध हिन्दी में सं० १९४२ में तथा अंग्रेजी में सन् १८८६ में प्रकाशित करवाया।[5]

---

१ – दि एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज आव राजस्थान (प्रथम संस्करण) सन १८२९ ई० पृ० २५४।
२ – वही, पृ० २५४।
३ – डा० जार्ज ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० ४।
४ – सेंटिनरी रिव्यु आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, सन १७८४–१८८३, परिशिष्ट – सी०, पृ० १०५–१६७।
५ – जरनल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, संख्या १, भाग १।

कविराजा जी ने अपने इस निबन्ध में निम्नलिखित तथ्यों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया —

(१) पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज चौहान के समय से बहुत बाद मे बना है।[1]

(२) पृथ्वीराज रासो का कर्त्ता मेवाड के वेदला अथवा कोठारिया के चौहान जागीरदारों का आश्रित कोई भाट था जिसने अपनी जाति के बड़प्पन के लिए इसकी रचना की।[2]

(३) पृथ्वीराज रासो इतिहास की दृष्टि से दोषपूर्ण और अनुपयोगी है।[3]

(४) पृथ्वीराज रासो का निर्माण सं० १६४० और सं० १६७० के मध्यकाल में हुआ।[4]

८३२। उदयपुर के पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा' नामक पुस्तिका तैयार कर सं० १६४४ में प्रकाशित की। पण्ड्याजी ने यह बताने का प्रयत्न किया कि रासो में अनन्द विक्रम सम्वत् का प्रयोग हुआ है जिसमें ६० या ६१ वर्ष जोड़ देने से विशुद्ध वि० सं० निकलता है। पण्ड्याजी की यह कल्पना मात्र थी और कसौटी पर खरी नहीं उतरी।[5]

८४२। रासो सम्बन्धी उक्त विवाद में अनेक विद्वान् तटस्थ रहे, क्योंकि रासो कवि चन्द नामक भाट का लिखा हुआ है और कविराजा श्यामलदास तथा मुरारीदान जैसे चारण विद्वान् इसके विरोधी थे और इस विवाद को चारण और भाटों के परम्परागत मन मुटाव का परिणाम समझा गया। इसी बीच जर्मन विद्वान् प्रो० बुलर को काश्मीर में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज करते हुए कवि जयानक कृत पृथ्वीराजविजय नामक महाकाव्य की भोज पत्र पर लिखित प्रति प्राप्त हुई। इस प्रति का अध्ययन कर प्रो० बुलर ने अप्रेल सन् १८९३ ई० में एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता को पत्र लिखा —

मेरे एक शिष्य मि० जेम्स मारीसन ने संस्कृत पृथ्वीराज विजय" का अध्ययन कर लिया है, जिसे मैंने जोनराज की टीका के साथ (जो सन् १४५०-७५ के बीच लिखी गई थी) सन् १८७५ में काश्मीर में प्राप्त किया था।

---

१ — पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता पृ० २।

२ — वही, पृ० १?।

३ — वही पृ० ८७।

४ — वही, पृ० ७५।

५ — नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, सं० १९९७, पृ० ३७७-४५४।

ग्रन्थकार निश्चित रूप से पृथ्वीराज का समकालीन था और उसके राज कवियो मे एक था। वह सम्भवत काश्मीरी था और अच्छा कवि और पण्डित भी था। उसके द्वारा वर्णित चौहानो का वर्णन चन्द के वर्णन से प्रत्येक विवरण म भिन्न है और वह वि०स० १०३० और १२२५ के शिलालेखो से मिलता है। पृथ्वीराज का वश वर्णन उसी प्रकार है जैसा हम इन शिलालेखो मे पाते हैं। अ य बहुत से विवरण जो "विजय" से मिलते है, अ य साक्षियो से भी मिलते हैं। (जैसे मालवा और गुजरात के शिलालेख)

मैं समझता हूँ इस काल के इतिहास पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और च द का रासो अप्रकाशित ही रहने दिया जाय। वह जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारीदान और उदयपुर के श्यामलदास न बहुत पहले कहा है। 'विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के ब दीराज या प्रधान कवि का नाम पृथ्वीभट्ट था, न कि च द वरदाई।[१]

८५ २। डा० बुलर ने पृथ्वीराज विजय का विस्तृत विवरण अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित करते हुए इसकी ऐतिहासिकता का दृष्टि से प्रामाणिकता सिद्ध की।[२] डा० बुलर के पत्र से प्रभावित होकर एशियाटिक सोसाइटी ने रासो का प्रकाशन स्थगित कर दिया।

८६ २। डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने ऐतिहासिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का परीक्षा की और इसको वि० स० १६०० के लगभग की रचना बताया।[३]

डा० ओझा ने रासो की प्रामाणिकता पर मुख्यत निम्नलिखित आरोप लगाये —

(१) उसम इतिहास सम्ब धी अनेक भ्रान्तिया हैं जो शिलालेखो और पृथ्वीराज विजय से सिद्ध हो जाती हैं।

(२) उसमें तिथिया बिल्कुल अशुद्ध दी गई हैं।

(३) उसमें अरबी, फारसी के शब्द बहुत हैं जो च द के समय किसी प्रकार भी व्यवहार म नही लाये जा सकते थे। ऐसे शब्द प्राय दस प्रतिशत है।

---

१ – प्रोसीडिंग्स आव दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, फार एप्रिल, १८६३।

२ – डिटेल रिपोर्ट आँव ए टूअर इन सच आव सस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस मेड इन काश्मीर, राजपूताना, स ट्रल इण्डिया, डा० जी बुलर, १८७७।

३ – क – पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

ख – नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०।

(४) भाषा अनुस्वारात शब्दों से भरी हुई है और उसमें कोई स्थिरता नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश की शब्द रूपावली का कोई विचार नहीं है और शब्दों की रूपावली और नये पुराने ढंग की विभक्तिया बुरी तरह मे मिली हुई हैं।

८७ २। डा० श्रोझा के विरोध मे बाबू श्यामसुन्दर दास और मिश्र बन्धुओं ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये, किन्तु ये तर्क की कसोटी पर खरे नहीं उतरते। डा० रामकुमार वर्मा ने भी सतर्क कारण बताते हुये पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक लिखा है।[1]

८८ २। पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन इतिहास की दृष्टि से नहीं वरन् एक महाकाव्य की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण मे पृथ्वीराज रासो के सर्ग निम्नलिखित हैं —

(१) आदि पर्व (मंगलाचरण चौहान वंश की उत्पत्ति आदि पृथ्वीराज का जन्म)।
(२) दसम समय (विष्णु के दशावतारो का वर्णन)।
(३) दिल्ली कीली कथा।
(४) अजानबाहु समय।
(५) कन्हपट्टी समय (मूछ ऐंठने पर प्रतापसिंह चालुक्य को कन्ह चौहान भरे दरबार मे मार डालता है। पृथ्वीराज उसे दरबार मे अपनी आंखो पर पट्टी बांधने के लिए बाध्य करता है)।
(६) आखेटक वीर समय (मृगया वर्णन)।
(७) नाहर राय समय (नाहर राय से युद्ध)।
(८) मेवाती मुगल समय (मेवातियो से युद्ध)।
(९) हुसेन कथा समय (शहाबुद्दीन से हुसेन के लिय युद्ध जिसने पृथ्वीराज की शरण ली थी)।
(१०) आखेटक चूक वर्णन (शहाबुद्दीन के द्वारा आखेट मे पृथ्वीराज पर आक्रमण, पर उसकी पराजय)।
(११) चित्ररेखा समय (गक्कर कुमारी जो शहाबुद्दीन की प्रियतमा थी और जिसे लेकर हुसेन पृथ्वीराज के समीप भाग आया)।
(१२) भोलाराय समय (गुजरात के भोलाराय से युद्ध)।
(१३) सलख युद्ध समय (सलख के द्वारा सुल्तान के बन्दी होने पर उसका उद्धार)।

---

१ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७० १७२।

(१४) इछिनी ब्याह कथा (पृथ्वीराज का इछिनी से विवाह)।

(१५) मुगल युद्ध कथा (मुगला से युद्ध)।

(१६) पुण्डीर दाहिमी ब्याह कथा (दाहिमी से ब्याह)।

(१७) भूमि स्वप्न प्रस्ताव।

(१८) दिल्ली का दान प्रस्ताव (अनगपाल के द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का उपहार)।

(१९) माधो भाट कथा (माधो भाट का आगमन, शहाबुद्दीन का पुन आक्रमण, पर पराजय)।

(२०) पद्मावती ब्याह कथा (पद्मावती से विवाह)।

(२१) पृथा ब्याह कथा (चित्रकोट के राजा समरसी के साथ पृथ्वीराज की बहन पृथा का ब्याह)।

(२२) होली कथा (होलीकोत्सव का वर्णन)।

(२३) दीपमालिका कथा (दीपमालिकोत्सव का वर्णन)।

(२४) धन कथा (खत्त वन में पृथ्वीराज को खजाने की प्राप्ति)।

(२५) शशिव्रता वर्णन (देवगिरि के राजा की पुत्री का पृथ्वीराज द्वारा हरण और फलस्वरूप कन्नौज के राजा जयचन्द से युद्ध)।

(२६) देवगिरि समय (जयचन्द के द्वारा देवगिरि का घेरा, पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय द्वारा जयचन्द की हार)।

(२७) रेवातट समय (सुल्तान शहाबुद्दीन से रेवातट पर युद्ध)।

(२८) अनगपाल समय (अनगपाल का दिल्ली आगमन, फिर बद्रीनाथ गमन)।

(२९) घघ्घर नदी की लड़ाई (सुल्तान शहाबुद्दीन से घघ्घर नदी पर युद्ध)।

(३०) करनाटि पात्र गमन (पृथ्वीराज का करनाट गमन)।

(३१) पीपा युद्ध।

(३२) करहूरा युद्ध।

(३३) इन्द्रावती ब्याह।

(३४) जैतराय युद्ध (जैतराय द्वारा सुल्तान को फिर पराजय, जिसने धोखे से मृगया करते समय पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था)।

(३५) कागुरा युद्ध प्रस्ताव (कागुरा किले पर पृथ्वीराज की विजय)।

(३६) हसवती नाम प्रस्ताव (हसवती से ब्याह)

(३७) पहाड़ राय समय।

(३८) धरण कथा ।
(३९) सोमेश्वर वध (गुजरात के भोला भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता का वध)
(४०) पज्जून धोगा नाम प्रस्ताव ।
(४१) चालुक्य प्रस्ताव ।
(४२) चन्द द्वारिका गमन (चन्द की द्वारिका की तीर्थयात्रा) ।
(४३) कैमास युद्ध (पृथ्वीराज के सेनापति कैमास द्वारा फिर सुल्तान को पक[ड़]
जाना ।
(४४) भीम वध (अपने पितघाती भीम का पृथ्वीराज द्वारा वध) ।
(४५) विनय मगल नाम प्रस्ताव (सयोगिता के पूर्व ज म की कथा, उसकी तपस्या)
(४६) विनय मगल ।
(४७) सुक वर्णन ।
(४८) बालुकराय वर्णन ।
(४९) पग जग्य विध्वस समय ।
(५०) सजोगिता नेम प्रस्ताव (सजोगिता का पृथ्वीराज से विवाह करने का प्रण)
(५१) हासीपुर प्रथम जुद्ध ।
(५२) हासीपुर द्वितीय जुद्ध ।
(५३) पज्जून महोबा प्रस्ताव ।
(५४) पज्जून पातसाह जुद्ध प्रस्ताव (दसवी बार सुल्तान का फिर बन्दी होना, प[र]
उसे फिर छोड़ देना) ।
(५५) सामत पग जुद्ध प्रस्ताव ।
(५६) समर पग जुद्ध प्रस्ताव ।
(५७) कैमास वध समय ।
(५८) दुर्गा केदार समय ।
(५९) दिल्ली वर्णन ।
(६०) जगम कथा ।
(६१) कनवज्ज जुद्ध कथा (कन्नौज के राजा जयचन्द से युद्ध, सारे महाकाव्य [में]
सबसे बड़ा 'समय') ।
(६२) शुक चरित्र ।
(६३) आखेटाचार श्राप प्रस्ताव ।

(६४) धीर पुण्डीर प्रस्ताव (पुंडीर का फिर सुल्तान को बन्दी करना पर उसे मुक्त कर देना)।

(६५) विवाह सम्यो (पृथ्वीराज की स्त्रियों की सूचि)।

(६६) बड़ी लड़ाई (पृथ्वीराज का मुल्तान से लड़ाई में पराजित और बन्दी होना)।

(६७) बान बेध सम्यो (युद्ध के बाद चंद का गजनी पहुँचना पृथ्वीराज का शब्द-वेधी बाण से सुल्तान को मारना)।

(६८) राजा रैनसी नाम प्रस्ताव (पृथ्वीराज के पुत्र नारायणसिंह का दिल्ली में राज्याभिषेक पर उसका वध और दिल्ली का पतन।)।

(६९) महोबा जुद्ध प्रस्ताव।[1]

८९ २। रासा, रासो, और रासउ आदि शब्दों के मूल में 'रास' है जिसको भ्रू पद आदि रासों में गेय बताया गया है, —

"तदेव भ्रुवमुन्निन्ये तस्मै मान च बहुदात्"[2]

सलग्न रासा, रासो और रासउ आदि से प्रकट होता है कि बीसलदे रास और अन्य अनेक रास परक काव्यों की भाँति पृथ्वीराज रासो भी मूलतः एक गेय काव्य रहा और गेय होने से यह काव्य कालान्तर में विकसित होता गया। इस प्रकार "पृथ्वीराज रासो" वास्तव मे एक विकसनशील महाकाव्य है।

९० २। पृथ्वीराज रासो के आंशिक रूप मे गेय होने का एक अन्य प्रमाण भी हमें उपलब्ध हुआ है। संगीत-ग्रन्थ 'राग कल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण[3] के सम्पादक श्री नगेन्द्रनाथ बसु ने राग कल्पद्रुम के निर्माता स्व० कृष्णानन्द व्यास "राग सागर" का परिचय देते हुए लिखा है —

'इस समय एक मात्र यही कवि चन्द का वह रायसा उपयुक्त रूप से गा सकते हैं। हमने बहुत डरते डरते गुरु स्थानीय बसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और 'राग सागर' ने भी हसते हसते बालक का मन रख दिया। उन्होने कवि चन्द का गान सुनाने के लिए पहले अपना परिष्कृत परिच्छेद

---

१ — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १५४ १५७।

२ — श्री मदभागवत् स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक १०।

३ — प्रकाशक-बंगीय साहित्य परिषद २४३।१ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता प्रकाशन काल स० १९७१। राग कल्पद्रुम का प्रथम संस्करण संवत् १९००(सन् १८४३ ई०) में स्वयं श्री कृष्णानन्द व्यास ने प्रकाशित किया था।

समस्त खोल लाल लंगोटा पहना। पीछे वीर रसात्मक कवि चन्द का एक पद गाया। ऐसा हृदय उत्तेजक और वीर रसात्मक गान फिर हमें कभी सुना न रहा। जो लोग आनन्दकृष्ण वसु महाशय के पुस्तकागार में उस समय बैठे थे वे 'राग-सागर' महाशय का अपूर्व स्वरालाप सुन और हाव भाव देख मानो मन्त्रमुग्ध हो गये।" [1]

९१ २। श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने — श्रीकृष्णानन्द व्यास का जन्म सन् १७९४ ई० बताया है और इन्हें मेवाड़ के "कोटेनो" स्थान का निवासी लिखा है। श्री व्यास उदयपुर महाराणा के संगीताचार्य थे और उदयपुर महाराणा ने ही इन्हें 'राग सागर' का सम्मान प्रदान किया था।[2]

९२ २। पृथ्वीराज रासो का निर्माण पृथ्वीराज चौहान की वीरता एवं अद्भुत चरित्र से प्रेरित होकर पृथ्वीराज के मृत्युपरान्त अर्थात् विक्रमी संवत् १२५० के लगभग ही सम्भवत प्रारम्भ हुआ। विभिन्न कवियों द्वारा कालान्तर में पृथ्वीराज रासो का विकास होता रहा और रासो के मुक्तक गेय होने से इसकी गान परम्परा मौखिक रूप में चलती रही। वि० सं० १६६७ से पहले की इसकी कोई लिखित प्रति नहीं प्राप्त होती। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि०सं० १७५५ १७६६) ने पृथ्वीराज रासो के बिखरे हुए रूपों को एकत्रित करवाया जिसको बृहत् रूपान्तर की संज्ञा दी गई है।

९३ २। पृथ्वीराज रासो हमारे साहित्य भण्डार का एक अनुपम और अनमोल जगमगाता रत्न है। इसमें मूलकथा के साथ, अनेक उपकथाओं रसों छन्दों और अलंकारादि काव्यांगों का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। अवश्य ही रासो में अनेक क्षेपक हैं किन्तु उनका भी काव्य की दृष्टि से महत्व है। क्षेपक के आक्षेप से तो हमारे वाल्मिकीय रामायण, महाभारत और रामचरित मानस आदि भी वंचित नहीं हैं तो फिर क्षेपकों के कारण पृथ्वीराज रासो को साहित्यिक दृष्टि से महत्वहीन नहीं कहा जा सकता।

९४ २। पृथ्वीराज रासो की प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर इस महाकाव्य के पूर्ण पाठ का वैज्ञानिक "बृहद्तम संस्करण" के रूप में सम्पादित करते हुए इसका अध्ययन और मूल्यांकन करना सर्वथा उचित होगा।

९५ २। वीरगाथा काल के कतिपय अन्य कवि —

(१) जिनपद्म सूरि, वि०सं० १२५०, थूलिभद्द फागु।

(२) विनयचन्द सूरि, वि०सं० १२५० नेमिनाथ चतुष्पदि।

---

१ – राग कल्पद्रुम, द्वितीय संस्करण (सं० १६७१) में प्रकाशित वक्तव्य।

२ – वही।

(३) अजयपाल, वि०स० १२५५ फुटकर छन्द।

(४) आसिगु वि०स० १२५७ (१) जीव दया रास, (२) चन्दनबाला रास।

(५) धर्म (धम्म) मुनि, वि०स० १२६६ जम्बूस्वामी रास।

(६) अभयदेव सूरि, वि०स० १२८५, जयतविजय।

(७) विजयसेन सूरि, वि०स० १२८७ रेवन्तगिरि रास।

(८) पल्हण, वि०स० १२८६, (१) आबू रास, (२) नेमिनाथ बारहमासा।

(९) जिनभद्र सूरि वि०स० १२६०, वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्धावली।

(१०) सुमतिगणि, वि०स० १२६५, (१) नेमि रास (२) गणधर सार्धशतक वृहद्वृत्ति।

(११) साधना वि०स० १३०० भक्ति के पद।

(१२) लक्खण वि०स० १३०० अणुव्रतरण।

(१३) अभयतिलक गणि, वि०स० १३०७, महावीर रास।

(१४) लक्ष्मीतिलक उपाध्याय, वि०स० १३११, (१) बुद्ध चरित्र, (२) श्रावकधर्म प्रकरण वृहतवृत्ति।

(१५) प्राणद सूरि एव प्रेम सूरि वि०स० १३२३ द्वादश भाषा (ढाल) निबद्ध तीर्थमाला रास।

(१६) रत्नप्रभ सूरि, वि०स० १३२४ पद।

(१७) त्रिलोचन वि स० १३२४ रचनाए अप्राप्य।

(१८) कवि सोममूर्ति, वि०स० १३३१, जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वर्णन रास।

(१९) सोममूर्ति (?), वि०स० १३३२, जिनप्रबोध सूरि चचरी।

(२०) मुनि राजतिलक, वि०स० १३३२, शालिभद्र रास।

(२१) हेमभूषण गणि वि०स० १३४१, जिनचन्द्र सूरि चचरी।

(२२) जज्जल, वि०स० १३५० हम्मीर की प्रशसा में काव्य।

(२३) अज्ञात, वि०स० १३५६ शालिभद्र कक्का।

(२४) मेरुतुङ्गाचार्य, वि स० १३६१, प्रबन्धचिन्तामणि सग्रह।

(२५) श्रावक कवि वस्तिम, वि०स० १३६२, बीस विरह मान रास।

(२६) राजशेखर सूरि वि०स० १३७०, नेमिनाथ फागु।

(२७) गुणाकर सूरि वि०स० १३७१, श्रावकविधि रास।

(२८) अम्बदेव सूरि, वि०स० १३७१, समरा रास।

(२९) मुनिधर्मकलश १३७७, जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास।

(३०) छल्हु, (१) क्षेत्रपाल (२) द्विपदिका।

(३१) सारमूर्ति, पद्मसूरिपट्टाभिषेक रास।

(३२) जिनपद्म सूरि, स्थूलिभद्र रास।

(३३) पउम, शालिभद्र काव्य।

(३४) सोलणु, चर्चरिका।

(३५) जिनप्रभ सूरि, वि०स० १३८५, पद्मावती चौपाई।

(३६) राजेश्वर सूरि, वि०स० १४०५, (१) प्रबन्ध कोश, (२) नेमिनाथ फागु।

(३७) हलराज, वि०स० १४०६, स्थूलिभद्र फागु।

(३८) मुनि शालिभद्र सूरि, वि०सं० १४१०, पाच पाडव रास।

(३९) मुनि विनयप्रभ सूरि, वि०स० १४१२, गौतमस्वामी रास।

(४०) हरसेवक, वि०स० १४१३, मयणरेहा रास।

(४१) जैनमुनि ज्ञानकलश, वि०स० १४१५ जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास।

(४२) प्रसन्नचन्द सूरि वि०स० १४२२, पार्श्वनाथ फागु।

(४३) कष्ठावर्पी जयसिंह सूरि, वि०स० १४२२, (१) प्रथम नेमिनाथ फागु। (२) द्वितीय नेमिनाथ फागु।

(४४) श्रावक विद्धणु वि०स० १४२३, ज्ञानपचमी चौपाई।

(४५) असाइत, वि०स० १४२७ हसाउलि।

(४६) मधुधर, वि०स० १४३० नेमिनाथ फागु।

(४७) मेरुनन्दणगणि वि०स० १४३२, जिनोदय सूरि गच्छनायक विवाहलु।

(४८) देवप्रभ गणि, कुमारपाल रास।

(४९) कवि चपा, वि०स० १४४५, देवसुन्दर रास।

(५०) साधु हस, वि०स० १४४५, शालिभद्र रास।

(५१) जाखो मणिहार, वि०स० १४५३, हरिचन्द पुराण।

(५२) चरकानन्द, चरपट।

(५३) जयशेखर सूरि, वि०स० १४६२, (१) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, (२) नेमिनाथ फागु (३) अर्बुदाचल बीनती।

(५४) अज्ञात, वि०स० १४६२, प्रबोधचिंतामणी।

(५५) भीम, वि०स १४६६, सदयवत्सचरित।

(५६) धना भगत, वि०स० १४७२, पद।

(५७) हीरा चन्द सूरि वि०स० १४८५, वस्तुपाल-तेजपाल रास।

(५८) महाराणा कुभा, वि०स० १४९०, फुटकर रचनाएं।

(५६) अज्ञात, वि०स० १४६६ पाच पाडव फागु।

(६०) अज्ञात, भरतेश्वर चक्रवर्ती फाग।

(६१) समर, वि०स० १४६३, नेमिनाथ फागु।

(६२) पद्म, वि०स० १४६३, नेमिनाथ फागु।

(६३) चारण चौहत वि०स० १४६१ गीत।

(६४) अज्ञात, वि०स० १४६६, राणापुरमण्डल चतुर्मुख आदिनाथ फागु।

(६५) चानण खिड़ियो, वि०स० १४६५ फुटकर रचनाए तथा नाटक।

(६६) गुणवत, वसतविलास।

(६७) माडण वि०स० १४६८, सिद्धचक्र श्रीपाल रास।

(६८) मेहा कवि वि०स० १४६६ (१) रणकपुरस्तवन। (२) तीर्थमाला स्तवन।

(६९) सोमसुदर सूरि, वि०स० १४६६, नेमिनाथ नवरस फाग।

(७०) बारहठ दूदो, स्फुट छन्द।

(७१) धरमो कवियो स्फुट छद।

(७२) खिडियो लूणकरण, स्फुट छद।

(७३) पसाइत, (१) राव रिणमल रो रूपक, (२) गुण जोधायण।

(७४) देववर्धन स० १५००, नल दमयती आख्यान।

(७५) अज्ञात, वि०स० १५००, सामुद्रिक स्त्री-पुरुष शुभाशुभ।

(७६) जयसागर, जिनकुशल सूरि सप्रतिका।

(७७) अज्ञात, वि०स० १५०० वसन्त विलास।

(७८) देपाल जंबूस्वामी रास।

(७९) महर्षि वर्धन सूरि, १५१२, नलदमयती रास।

(८०) दामो वि०स० १५१६, लक्ष्मणसेन पद्मावती चउपई।

(८१) कवि भाडउ, वि०स० १५३८ राय हमीर देव चौपाई।

(८२) हंस कवि वि०स० १५४०, चन्दकवर री वार्ता।

(८३) सालभद्र, वि०स० १५५० मुनिपति चरित।

(८४) धर्मसमुद्र गणि, (१) सुमित्रकुमार रास, (२) कुलध्वज कुमार रास, (३) रात्री भोजन रास, (४) शकुन्तला रास।

(८५) तत्ववेत्ता वि०स० १५५०, कवित्त।

(८६) सिद्धसेन, वि०स० १५५६ विक्रम पचदण्ड चउपई।

(८७) चतुर्भुज, वि०सं० १५५६, भ्रमर गीता।

(८८) कोल्ह वि०सं० १५५१ ८४, पद।

(८९) आसानन्द, वि०सं० १५६१ १६६०, (१) लखमणायण, (२) निरंजन पुराण, (३) गोगाजी री पेड़ी (४) बाघा रा दूहा, (५) उमादे भटियाणी रा कवित्त, (६) फुटकर छंद।

(९०) सांदा बारहठ जमनाजी, वि०सं० १५६१ ८४, स्फुट रचनाए।

(९१) हरिदास, वि०सं० १५६६, स्फुट रचनाए।

(९२) केसरिया चारण वि०सं० १५८४, स्फुट रचनाए।

(९३) गणपति, वि०सं० १५७४, माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध।

(९४) छीहल, सं० १५७५, पंचसहेली रा दूहा।

(९५) गोरा, (१) रावलूणकरणरा कवित्त, (२) रावजैतसी रा कवित्त।

६ — भक्तिकाल

क. सामान्य परिचय

६६ २। महाराणा सांगा की खानवा-युद्ध (सं० १५८४, सन् १५२७) में बाबर से पराजय और विशाल राजपूत वाहिनी के विनाश तथा दूसरे ही वर्ष सांगा की मृत्यु से जनता की समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया। खानवा-युद्ध के परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष में मुस्लिम शासन की जड़ें जम गई। खानवा-युद्ध के पश्चात् बाबर ने दिल्ली को अपनी राजधानी बना कर भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव रखी। जनता में चारों ओर घोर निराशा का वातावरण छा गया और जन भावनाएं जीवन संघर्ष से पलायन की ओर उन्मुख हुई। जनता ईश्वर को ही अपना एक मात्र त्राता समझती हुई भक्ति भावना में डूब गई। अन्य मुस्लिम आक्रान्ताओं की भांति बाबर लूट मार कर भारत से विदा नहीं हुआ, वरन् उसने स्वयं भारतीय शासन की बागडोर भारत में ही रहते हुए सम्हालने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। इससे भारतीय जनता का अस्तित्व ही आपत्ति-ग्रस्त हो गया। हिन्दू जनता और हिन्दू राजा न तो बाबर जैसे मुस्लिम शासक का सफलतापूर्वक विरोध कर सकते थे और न अपने धर्म को ही सरलता पूर्वक छोड़ सकते थे इसलिये परिस्थिति विषम हो गई। जनता में भय का संचार हुआ और भक्ति का प्रबल रूप में प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारत में प्रारम्भ हुए भक्ति आंदोलन का प्रभाव उत्तरी भारत एवं राजस्थान में अधिकाधिक होता गया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य के भक्ति-पीठ अनेक केन्द्रों में स्थापित हुए और जनता के समक्ष भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया।

राजस्थान के राजपूत राजाओं ने वैष्णव धर्माचार्यों को विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और अपनी अपनी राजधानियों में उनको गद्दीयां स्थापित की। परिणामस्वरूप जनता के समक्ष अवतार रूप में परब्रह्म परमेश्वर का लोक रक्षक और लोक-रंजक रूप आया तथा आशा का संचार हुआ।

६७ २। भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव मूलत दक्षिण में वैष्णव धर्म के प्रभाव से हुआ — "यह भक्ति भावना उत्तरी भारत में पल्लवित होने के पूर्व दक्षिण में अपना निर्माण कर चुकी थी। यह भावना वैष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध भागवत या पंचरात्र धर्म से है। वैष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में और देवत्व की प्रधानता में मिलता है।"[1] "विष्णु" शब्द की व्युत्पत्ति 'विश्' धातु से हुई है जिसका अर्थ "व्याप्त होना" है। विष्णु का सर्व प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है —

> अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्या सप्तधामभि ॥ १६ ॥
> इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदं समूलहमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
> त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य अतो धर्माणि धारयन् ॥१८[2] ॥

६८ २। विष्णु की गणना ऋग्वेद में प्रधान देवताओं में नहीं की गई और वे सौर शक्ति के रूप में ही माने गये। किन्तु कालान्तर में विष्णु क्रमश देवों में प्रधान एवं सर्व शक्तिमय विष्णु हो गये। विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण में उनको देवों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो गया। विष्णु परब्रह्म परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हो गये और राम तथा कृष्ण भी विष्णु के ही अवतार माने गये।

६९ २। भगवान् विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के पावन चरित्रों के प्रकाश में मुस्लिम साम्राज्य रूपी घोर अन्धकार युग में भी भारतीय जनता अपना श्रेय मार्ग ग्रहण कर सकी। राम और कृष्ण की लोकरक्षक और लोकानुरंजन कारिणी लीलाओं से प्रभावित हो कर जनता ने सुख की सांस ली। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में भारतीय जनता ने रावण और अन्य अत्याचारी दानवों का विनाश देखा। राम ने अपने पराक्रम से ऋषि मुनियों की यज्ञादि प्रवृत्तियों को पुन निर्विघ्नता पूर्वक सम्पादित करने की व्यवस्था कर जनता को निर्भय बना दिया था और अत्याचारी दानव रावण द्वारा हरी गई भारत-लक्ष्मी रूपी सीता को लाकर पुन आर्यावर्त में प्रतिष्ठित किया था। इसी प्रकार श्री कृष्ण ने शकटासुर, वत्सासुर, बकासुर, प्रलम्बासुर अघासुर भौमासुर, जरासंध और शिशुपाल आदि का

---

१ — डा० रामकुमार वर्मा, हि० सा० आ० इ०, पृ० २०२।

२ — ऋग्वेद संहिता सायणभाष्य, प्रथमस्य द्वितीय सप्तमो वर्ग — डा०

वध कर पुन धार्मिक व्यवस्था की थी। साथ ही श्रीकृष्ण ने रासलीलादि लोकरंजक प्रवृत्तियां द्वारा जनता मे नवीन आशा, विश्वास और सुख का सचार किया। राम और कृष्ण के चरित्र से प्रभावित हो कर भारतीय धर्मप्राण जनता ने घोर निराशा के वातावरण में भी सुख को सवदा समीप देखा।

१०० २। रामानुजाचार्य मध्वाचार्य वल्लभाचाय और निम्बार्काचार्य प्रभृति धर्म गुरुओं ने अपने सिद्धान्ता का प्रतिपादन सस्कृत ग्र थो म ही किया कि तु इनके शिष्य प्रशिष्य कवियो ने जनता तक सिद्धान्ता क प्रचार प्रसार क उद्देश्य स जन भाषाओ का उपयाग किया। कवियों ने आचार्य सिद्धान्तानुसार सर्वथा सरल और सरस भाषा का अपनी रचनाओं में प्रयोग कर अपना सन्देश सर्वत्र पहुँचा दिया।

१०१ २। इसी काल म अनेक स त ऐसे भी हुए जिन्हाने हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया। हिन्दु मुसलमानो का सम्पक मे रहते हुए अनक वर्ष व्यतीत हो गये थे और दोनो ही वर्ग एक दूसरे की विशेषताओं म परिचित हो चुक थे। ऐसी अवस्था मे हिन्दू मुस्लिम सस्कृतियो का समन्वय अवश्यम्भावी था। ऐसे सन्त कवियो ने निर्गुण और निराकार ब्रह्म का उपासना का समथन किया तथा मूर्तिपूजा, व्रत, रोजा नमाज आदि का विरोध किया। स त कवियो पर रामानन्दाचार्य की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है जिन्हाने जातिवाद क ब धना को शिथिल कर तथाकथित निम्न वर्गों के लिए भी भक्ति का मार्ग खोल दिया। निर्गुणी सन्तो क सूफी सम्प्रदाय का प्रचार राजस्थान में अत्यल्प हुआ किन्तु ज्ञानमार्गी सम्प्रदायो का तो राजस्थान विशेष क द्र ही बन गया। दादू रज्जब रामस्नेही जसनाथी आदि कतिपय सम्प्रदायो की ज ममूमि होन का श्रेय भी राजस्थान को प्राप्त हुआ।

१०२ २। इस काल में राजस्थान विभिन्न जन सम्प्रदायो का भी क द्र बन गया। राजपूत राजाओ के दीवान और प्रबन्धक बहुधा जैनमतावलम्बी होते थे, जिन्हाने राजस्थान में अनेक जन मन्दिरो और उपाश्रयो का निर्माण कराया। राजस्थान मे अनेक जैन साधुओं, साध्वियो और यतियो आदि न अपने धार्मिक सिद्धान्तो क अनुसार प्रचुर मात्रा मे विविध विषयक साहित्यिक रचनाए प्रस्तुत की।

१०३ २। राजस्थानी साहित्य क वीरगाथा-काल म अहिंसा व्रतानुरागी अनक जैन कवियो ने भी जन भावनानुसार तत्कालीन अन्य कवियो क अनुकरण में वीररसात्मक रचनाएं प्रस्तुत की थीं किन्तु इस भक्तिकाल म ईसरदास जी, सायाजा भूला और माधोदास जी जैसे चारण कवियो ने भी भक्तिरस का काव्य लिखे। इन कवियो न महापुरुषो को देव तुल्य मानते हुए उनकी वार्ता का वर्णन भी भक्ति क अन्तर्गत किया।

ख भक्तिकाल के प्रधान कवि

(१) मीराबाई

१०४ २। राजस्थानी साहित्य में भक्तिकाल का प्रारम्भ मेवाड़ की विख्यात सुप्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीराबाई की सरस भक्तिपरक रचनाओं से होता है। राठौड़ राज-कुल में उत्पन्न और मेवाड़ के शीशोदिया राजकुल में विवाहिता मीरां ने वास्तव में जन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने गेय पदों में भक्ति मंदाकिनी प्रवाहित की है।

१०५ २। मीरा के पद भारतीय जनता में इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि राजस्थानी के अतिरिक्त गुजराती, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं में भी मीरा के नाम पर अनेक पद बन गये। आज मीरा के मूल और क्षेपक पदों को अलग करना तथा मूल पदों के आधार पर मीरा का जीवन चरित्र निरूपित करना एक समस्या है। मीरा के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के अभाव में जेम्स टॉड जैसे इतिहासकार भी भ्रान्ति में पड़ गये और उन्होंने मीरा को मेवाड़ के महाराणा कुम्भा की रानी लिख दिया।[1] यही भ्रान्त मत टॉड का अनुसरण करते हुए ग्रियर्सन[2] और शिवसिंह[3] जैसे विद्वानों ने व्यक्त किया है। यह भ्रान्ति सम्भवतः ऐसे पदों से हुई है जिनमें कुम्भाजी का नाम है और जिनको मीरा रचित कहा जाता है —

> राणा कुम्भाजी ओ जी जीव रा सगाती जग में नाय मिले जी।
> राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो मायड़ रे दोय डीकरा जी।
> एक तो बैठो राज करे, दूजो मारी बंचण जाय॥ राणा कुम्भा जी०
> राणा कुम्भाजी ओ जी एक तो गायड़ रे दोय डीकरा जी।
> एक तो शिवजी रे नादियो, दूजो कसाया रे जाय॥ राणा कुम्भा जी०
> राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो बेलड़ रे दोय तूमडा जी।
> एक तो राणाजी खप्पर भरे जी, दूजो अमलाजी में जाय॥ राणा०
> राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो कुम्भार हाडा दो घड़िया जी,
> ज्यारा न्यारा-न्यारा लेख ज्यारा न्यारा न्यारा लेख,
> एक तो महादेव जी रे जलेरी चढ़े, दूजो जूठण री कुण्डी॥ राणा०
> मीरा जीव रा सघाती जुग में नाय मिले जी॥[4]

---

१ – दी एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज आफ राजस्थान, क्रुक्स संस्करण, लंदन, पृ २८६।

२ – दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान पृ० १२।

३ – शिवसिंह सरोज, पृ० १०२।

४ – लेखक के निजी संग्रह का पद।

१०६ २। मीराबाई को महाराणा कुम्भा की रानी लिखना वास्तव में इतिहास और अनुमान दोनों के विपरीत है। महाराणा कुम्भा के ६० शिलालेख प्राप्त हुए हैं[1] किन्तु किसी में भी मीरां का नाम नहीं है। कुम्भा की अनेक रानियां थीं। इनमें से रानी कुम्भलदेवी का नाम चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति (स० १५१७) में[2] और अपूर्व देवी का नाम गीत गोविन्द की महाराणा कुम्भा कृत 'रसिक प्रिया टीका' में[3] प्राप्त होता है। राणा कुम्भा की रानियों के नाम ख्यातों में भी दिये हुए हैं किन्तु इनमें कहीं मीरां का नाम नहीं है। मीरां का वर्णन नाभादास कृत भक्त माल में भी उपलब्ध होता है किन्तु इसमें महाराणा कुम्भा का कोई उल्लेख नहीं है —

लोक लाज कुल शृ खला तजि मीरा गिरधर भजी ।।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक जसरसना गायो ।।
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो ।।
भक्ति निशान बजायके, काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृ खला, तजि मीरा गिरधर भजी ।।[4]

१०७ २। यदि मीराबाई महाराणा कुम्भा जैसे प्रसिद्ध महाराणा की रानी होती तो उक्त रचनाओं में अवश्य ही उसका उल्लेख किया जाता। कुम्भा का देहान्त वास्तव में मीरां के जन्म से ३० वर्ष पूर्व स० १५२५ में हो चुका था।[5]

१०८ २। मीराबाई का जन्म वि०स० १५५५ के लगभग मेड़ता के कुड़की नामक गांव में माना जाता है।[6] यह राव दूदाजी राठौड़ के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की एक मात्र संतान थी। मीरां का विवाह महाराणा सांगा (स० १५६६-८४) के पाटवी कुंवर भोजराज के साथ स० १५७३ में सम्पन्न हुआ किन्तु भोज का देहान्त थोड़े समय पश्चात् ही हो गया। खानवा युद्ध (स० १५८४) में मीरां के पिता रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुए और फिर राणा सांगा को भी विष दे दिया गया, जिससे मीरां का ध्यान पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण भक्ति में

---

१ — ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ३१८।

२ — यस्यानकमुतूहलक मदवो कुम्भल्लदेवी प्रिया। श्लोक स० १८१।

३ — महाराज्ञी श्री अपूर्वदेवी हृदयाधिनाथेन महाराजाधिराज महाराज श्री कुम्भकर्ण महीमहेन्द्रेण। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई का संस्करण पृ० १७४।

४ — भक्तमाल, सटीक पृ० ६६४।

५ — ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२।

६ — क — हरविलास सारदा महाराणा सांगा, पृ० ९९।

ख — ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५६।

लग गया। मीरा ने भक्ति विषयक अनेक पदों की रचनाएं की। मीरा का देहान्त सं० १६०३ में हुआ।[1]

१०६ २। उक्त घटनाओं के अतिरिक्त मुगल सम्राट अकबर का मीरा के दर्शन हेतु आना और मीरा का गोस्वामी तुलसीदास से पत्र-व्यवहार करना जैसी घटनाएं सन्देह रहित नहीं कही जा सकती क्योंकि मीरा के देहान्त काल में अकबर की आयु केवल ४ वर्ष का और तुलसीदास की आयु १४ वर्ष निश्चित होती है। इसी प्रकार मीरा के गुरु रैदास भी सिद्ध नहीं होते हैं क्योंकि रैदास नाभादास कृत भक्तमाल के अनुसार रामानन्द के शिष्य थे और रामानन्द का जन्म सं० १३५६ में हुआ था।[2] रैदास शिष्य होने के नाते रामानन्द से अवश्य छोटे रहे होंगे किन्तु यदि उन्हें रामानन्द के समान उम्र का मान लिया जाय तो भी वे मीरा के समकालीन नहीं सिद्ध होते। रैदास की मृत्यु १२० वर्ष की आयु में मानी जाती है[3] अर्थात् रैदास की मृत्यु सं० १४७६ में हुई। यह समय मीरा के जन्म से ७९ वर्ष पहले का है और मीरा द्वारा रैदास का शिष्यत्व स्वीकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सम्भव है मेवाड़ के प्रतिष्ठित राजवंश से अपना सम्बन्ध बताने के लिये रैदासी पंथ के अनुयायियों ने पदों में मीरा और रैदास के नाम जोड़ दिये हों। इसी प्रकार के प्रयत्न वल्लभ सम्प्रदाय वालों की ओर से भी हुए जैसा कि "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" से प्रकट होता है। अन्य मत रघुनाथ दास को[4] और जीव गोस्वामी[5] को मीरा का गुरु मानते हैं। वास्तव में मीरा सम्प्रदायों और मतमतान्तरों से ऊपर उठी हुई एक सद्गृहस्थ भक्त महिला थी।

११० २। मीरा की रचनाएं निम्नलिखित मानी जाती हैं —

१ पदावली, २ गीतगोविन्द टीका, ३ नरसी जी रो माहरो, ४ सत्यभामाजी नूं रूसणूं, ५ राग सोरठ, और ६ राग गोविन्द।

१११ २। मीराबाई के पदों की संख्या हजारों ही है जिनके अनेक संग्रह हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। मीरा के पदों की प्राचीन प्रामाणिक प्रति के अभाव में यह निर्णय करना कठिन है कि मीरा के रचित मूल पद

---

१ — क — मुंशी देवीप्रसाद मीराबाई का जीवन चरित्र, पृ० २७।
ख — ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ३६०।

२ — क — डा० बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ४१।
ख — आर० जी० भण्डारकर, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टमस, पृ० ६६।

३ — डा० रामकुमार वर्मा, हि० सा० आ० इ०, पृ० २२५।

४ — श्री ब्रजरत्नदास, मीरा माधुरी भूमिका, पृ० ७९।

५ — श्री वियोगी हरि, वही, पृ० ७९।

कितने और किस रूप में हैं ? पदावली के अतिरिक्त मीरा की अन्य रचनाएं भी सन्देहात्मक हैं और सामान्य कोटि की हैं।

११२२। सरल, सरस भाषा में हार्दिक प्रेमाभिव्यक्ति ही मीरां पदावली का प्रधान आकर्षण है। मीरा की कला, कला के आडम्बर से सर्वथा शून्य है इसलिये रसिकों और भक्तों में विशेष प्रिय है। मीरा पदावली में माधुर्यभाव से पूर्ण मीरां की भक्ति का उदाहरण प्राप्त होता है।

(२) दुरसाजी आढा

११३२। चारण कवि दुरसाजी आढा का जन्म वि० सं० १५६२ में जोधपुर के धूंधला नामक गांव में हुआ। इनके पिता का देहान्त इनके बचपन में ही हो गया था अतएव इनका पालन पोषण बगडी के ठाकुर प्रतापसिंहजी ने किया। श्री सीताराम लालस ने लिखा है कि निर्धनता के कारण इनके पिता ने सन्यास ग्रहण कर लिया था।[1] बगडी के ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए दुरसाजी ने लिखा —

माथे मावीताह, जनम तणे वयावर जितो।
सोहड सुध पाताह, पालणहार प्रतापसी॥

११४२। एक निर्धन परिवार में जन्म लेते हुए भी दुरसाजी को अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के कारण आगे चल कर अनेक राजदरबारों में पर्याप्त सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुआ। बीकानेर के राजा रायसिंहजी ने जोधपुर पर अधिकार करने पर चार गांव, एक हाथी और एक करोड रुपयों का पुरस्कार प्रदान किया।[2] सिरोही के राव सुरताण ने भी इस महाकवि को एक करोड का "पसाव" दे कर सम्मानित किया।[3]

११५२। कहते हैं कि मुगल सम्राट अकबर के दरबार में भी दुरसाजी को बहुत सम्मान मिला और अकबर ने इनको एक करोड 'पसाव' प्रदान किया। अकबर और दुरसाजी के विषय में अनेक उपाख्यान प्रचलित हैं। यथा —

दुरसाजी से अकबर के प्रथम परिचय के विषय में कहते हैं — एक समय अकबर आगरा से अहमदाबाद जा रहा था। मार्ग में सोजत के डेरे से गुंदोज के डेरे तक राह प्रबन्ध का कार्य बगडी के ठाकुर प्रतापसिंह का था। दुरसाजी इस कार्य में प्रतापसिंह के प्रमुख सहायक थे। दुरसाजी के कार्य - कौशल और प्रबन्ध पटुता से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ एवं दुरसाजी को इसने लाख पसाव दिया।

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, भूमिका पृ० १३६।
२ – दयालदास री ख्यात, भाग २ पृ० ११८।
३ – प० मोतीलालजी मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १३७ १३६।

अकबर के दरबार में लक्खाजी नामक एक चारण कवि थे। लक्खाजी के सहयोग से दुरसाजी भी दरबार म पहुँचे। तब लक्खाजी की प्रशंसा म दुरसाजी न यह दूहा बनाया —

> दिल्ली - दरगह् अब - तरु, ऊंचो फळद अपार।
> चारण लक्खो चारणा, डाळ नमावणहार॥

एक समय की घटना है कि अकबर का अभिभावक बैरामखा कार्यवश अजमेर आया हुआ था और दुरसाजी भी पुष्कर स्नान के लिये वहा पहुच हुए थे। दुरसाजी बैरामखा के डेरे पर उसस मिलन गये किन्तु बैरामखा के आदमियो ने नही मिलने दिया। तब बैरामखा क बाहर भ्रमण क लिये जाने पर दुरसाजी न उसको यह दूहा सुनाया —

> आफताब अधेर पर, अगनी पर ज्यु नीर।
> दुरसा कवि का दुक्ख पर, है बहराम वजीर॥

बैरामखा न दुरसाजी को निकट बुला कर बातचीत की। दुरसाजी न बैरामखा को ये दूहे सुनाये —

> तू बन्दा अल्लाह का, मै बन्दा तेराह।
> तेरा है मालिक खुदा, तु मालिक मेराह॥
> पीर पराई मेटणा एह पीर का काम।
> मेरो पीडा मेट दे, बडा पीर बहराम॥
> बिभीषण कू भेटियो, लका म एक राम।
> आण मिल्या अजमेर मे, दुरसा कू बेराम॥

बैरामखा ने दुरसाजी की कष्ट गाथा सुन कर दुरसाजी को दिल्ली बुलाया और अकबर से मिला कर दुख दूर किया।

११६ २। प० मातीलालजी मेनारिया ने इस प्रकार की कथाओ को मुख्यत इस आधार पर कपोल कल्पित बताया है कि दुरसाजी का नाम मुसलमान तवारीखो तथा राजस्थान की प्राचीन ख्यातो में नही मिलता। इन्होंने लिखा है कि दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्व को बढा कर बतलाने के लिये चारण लोगों ने इनको गढ लिया है।[१]

११७ २। वास्तव में ऐसी घटनाओं को निरी कपोल कल्पित और गढी हुई नही बताया जा सकता। दुरसाजी प्रारम्भ में जोधपुर के सरदारो और राजा के साथ थे जिन्होंने अकबर की अधीनता ही नहीं स्वीकार की वरन् अकबर से विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिये थे। ऐसी अवस्था म दुरसाजी का अकबर क सम्पर्क मे आना और अकबर का दुरसाजी की काव्य चातुरी स प्रसन्न होना असम्भव नही ज्ञात होता। इन कथाओ म थोडा-बहुत सार

---

१ — राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।

अवश्य है। दुरसाजी ने अपनी विरुद छिहतरी नामक कृति मे महाराणा प्रताप को आर्य धर्म का रक्षक ही नही ईश्वर का अवतार भी बताया और अकबर के लिये 'अधम' एव 'लालची' जैसे विशेषण प्रयुक्त किये। दुरसाजी जैसे स्वाभिमानी कवि के लिये ऐसा करना सर्वथा स्वाभाविक ही था और उस युग म ऐसा सम्भव भी था। महाराज पृथ्वीराज राठौड न भी अकबरी दरबार मे रहते हुए महाराणा प्रताप की प्रशसा मे अपनी काव्यात्मक रचनाए प्रस्तुत की। दुरसाजी क विषय म उक्त कथन के प्रमाण मे पृथ्वीराज का उदाहरण पर्याप्त है।

११८ २। दुरसाजी कवि होने के साथ ही कुशल योद्धा भी थे। स० १६४० मे सीसोदिया जगमाल की सहायता क लिये सिरोही के राव सुरताण क विरुद्ध अकबर द्वारा भेजी हुई सेना मे दुरसाजी भी जोधपुर के रायसिंह च द्रसेनोत के साथ थे। दुरसाजी इस युद्ध मे घायल हुए। युद्ध क अ त मे सिरोही के राव सुरताण और उनके साथी घायलो के निरीक्षण के लिये रण त्र मे पहुँचे तो दुरसाजी को घावो से लथपथ देखा। राव सुरताण ने इनक बचने की सभावना नही जान कर इनका दूध देना (मारना) चाहा तब दुरसाजी ने कहा मैं राजपूत नही, चारण हू। तब सुरताण ने कहा 'यदि वास्तव मे चारण हो तो अभी युद्ध में मारे गये देवडा समरा की प्रशसा मे कविता कहो' दुरसाजी ने तब यह दूहा सुनाया —

धर रावा जस डू गरा, ब्रद पोना सत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोका चहुवाण।

युद्ध में घायल हुए चारणो की सभी प्रकार से रक्षा की जाती थी, इसलिये राव सुरताण ने पालकी में ले जा कर दुरसाजी का उपचार करवाया और अपना "पोलपात" बना कर इन्हे दो गाव "पेशुवो" और "साल" भेंट कर "क्रोड पसाव" भी प्रदान किया। दुरसाजी का देहान्त ११७ वर्ष की अवस्था में वि०स० १७१२ मे माना जाता है।[1]

११६ २। दुरसाजी की रचनाए निम्नलिखित हैं —

१ विरुद छिहतरी, २ किरतार बावनी, ३ श्रीकुमार अजाजीनी भूचर मोरी नी गजगत ४ राउ श्री सुरताण रा कवित, ५ झूलणा रावत मेघा रा, ६ दूहा सोलकी वीरमदेव रा, ७ गीत राजि श्री रोहितास जी रो, ८ झूलणा राव श्री अमरसिंघजी रा, और ९ स्फुट छन्द।

१२० २। दुरसाजी अपन समय के एक राष्ट्रीय कवि थे क्योकि इन्होने राष्ट्रवीर महाराणा प्रताप को देवोपम मान कर उनकी भक्तिपूर्ण प्रशसा करत हुए भारतीय सस्कृति तथा मान मर्यादा की रक्षा हेतु अपनी वाणी को मुखरित किया था।[1] दुरसाजी ने अपने

---

१ – रा० भा० सा०, हि० सा० स०, पृ० १३९।

समय के अन्य व्यक्तियों में भी गुण देखे तो उनका बिना संकोच अपनी रचनाओं में चित्रण किया। आबू पर्वत पर अचलेश्वर के मन्दिर में इनकी एक सर्वधातु की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है जिससे इनकी देशोपम प्रतिष्ठा ज्ञात होती है।

(३) भक्त कवि ईसरदास

१२१ २। भक्त कवि ईसरदास का जन्म चारणों की बारहठ शाखा में हुआ। पिंगलसी भाई पाता भाई के मतानुसार ईसरदास जी का जन्म विक्रम संवत् १५१५ है। इन्होंने अपने मत के समर्थन में यह दोहा उद्धृत किया है —

> संवत् पनर पनडोतरे, जनम्या ईसरदास।
> चारण वरण चकार मा, ईंण दिन हुओ उजास॥[1]

उक्त मत के विपरीत किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने ईसरदासजी के जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा उद्धृत किया है —

> पनरासो पिच्चाणवे, जनम्या ईसरदास।
> चारण वरण चकार मे, उण दिन हुवो उजास॥[2]

उक्त मतों में से प्रथम मत का समर्थन मानदान जी बारहठ ने यह दोहा देते हुए किया है —

> सर भुव सर शशी बीज, भृगु श्रावण सित पखवार।
> समय प्रात सुरा घरे, ईसर को अवतार॥[3]

वास्तव में ईसरदास जी का जन्म सम्वत् इनकी मूल जन्म पत्रिका के आधार पर सम्वत् १५६५ ही सिद्ध होता है और जन्म सम्बन्धी दोहे का मूल रूप भी इस प्रकार प्राप्त होता है —

> पनरासौ पिच्चाणवै, जनम्यो ईसरदास।
> चारण वरण चकार में, उण दिन हुवो उजास॥[4]

१२२ २। ईसरदास जी के पिता का नाम सूजाजी और माता का नाम अमरबाई था। इनके काका गुरु भक्त कवि आशानन्द थे। एक बार ईसरदास जी द्वारिका यात्रा के

१ — ईसर बारोठ कृत हरिरस ग्रन्थ, द्वितीय संस्करण, सं० १९८० ।

२ — हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता।

३ — श्री हरिरस प्रथम संस्करण, जामनगर सं० १९६४।

४ — हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता।

प्रसंग में जामनगर में ठहरे। जामनगर के रावल ने इनका अच्छा सत्कार किया और द्वारिका से लौटते समय ईसरदास जी को जामनगर म ही रोक लिया। जामनगर के रावल ने ईसरदास जी को " करोड पसाव " दिया। इनकी पहली पत्नी का देहान्त हो चुका था इसलिये रावल जी ने आग्रह कर इनका दूसरा विवाह जामनगर में ही किया। जामनगर रावल की सभा में पीताम्बर भट्ट नामक संस्कृत के पंडित थे, जिनसे इन्होंने भागवत् का अध्ययन किया —

> लागू हू पहली लुले, पीताम्बर गुरु पाय।
> भेद महारस भागवत् प्रापू जास पसाव॥ [1]

ईसरदास जी वृद्धावस्था में अपने जन्म स्थान के निकट लूनी नदी के किनारे एक कुटिया में रहने लगे, जहा सवत् १६२२ के लगभग इनका देहान्त हो गया —

> सम्वत् सोल बावीस बुध, शुदि नौमी मधुमास।
> ईशाणद कवि उद्धरे, विश्व करो विश्वास॥

कवि मावदान जी भीमजी भाइ रतनु ने भी इसी मत का समर्थन किया है। [2] इसके विपरीत कतिपय इतिहासकारो ने इनका मृत्युकाल सवत् १६७५ लिखा है। [3]

१२३ २। ईसरदास जी रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं —

१ हरिरस २ छोटा हरिरस, ३ बाल लीला, ४ गुण भागवत हस, ५ गुरुड पुराण, ६ गुण आगम, ७ गुण निन्दा स्तुति, ८ देवियाण, ९ गुण वैराट १० सांखिया, ११ हाला झाला रा कु डलिया, १२ रास कैलास, १३ दाण लीला १४ गुण सभा पर्व, १५ गीत छन्द, १६ सामला रा दूहा, १७ भजन (पद और वाणिया)।

१२४ २। ईसरदास जी राजस्थान और गुजरात में " ईसरा सो परमेसरा " के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनकी कृति हरिरस का एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप मे नित्य पाठ का प्रचलन है जिससे इनकी महत्ता प्रकट होती है। ईसरदास जी की रचनाओ में "हरिरस" और ' हाला झाला रा कु डलिया" श्रेष्ठ मानी गई हैं। हरिरस में ईश्वर के सगुण रूप के साथ ही निर्गुण रूप का समर्थन भी किया गया है।

१२५ २। हाला झाला रा कु डलिया राजस्थानी भाषा का वीररस पूर्ण श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें हाला और झाला क्षत्रियों के बीच होने वाले युद्ध का सरस वर्णन है।

---

१ — वही, दोहा स० १।
२ — यदुवंश प्रकाश अने जामनगर नो इतिहास, प्रथम सस्करण, स० १९९१।
३ — रा० भा० सा, हि० सा० स०, पृ० ११६।

इनकी रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं —

जनम-पीड जगदीश, ईस अवतार म आणे ।
छल बल करि छोडवण, जनम आपण कर जाणे ।
भणे नाम हू मणिस जोति जगती जगदीसे ।
कृपा साधना करण, तवन कोड तेतीसे ।
द्रगदेव दिनकर ससि हुवे, त्रिगुण नाथ तारण-तरण ।
" ईसरो " कहे असरण-सरण किसु तूझ कारण करण । — हरिरस

ऊठि अचू का बोलणा नारि पयपै नाह ।
घोडा पाखर धमधमी, सीधू राग हुवाह ॥
हुवौ अति सीधवो राग बागी हका ।
थाट आया पिसण घाट लागै थका ॥
अखाडा जोति खग अरि घडा खोलणा ।
ऊठि हरधवल सुन अचू का बोलणा ॥ — हाला भाला रा कुंडळिया ।

(४) महाराजा पृथ्वीराज राठौड

१२६२। पृथ्वीराज का जन्म बीकानेर राज परिवार में विक्रमी संवत १६०६ में माना जाता है। पृथ्वीराज बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के द्वितीय पुत्र थे। इनका अकबर के दरबार मे सेनापति और मनसबदार के रूप मे उच्च स्थान था। अकबर के दरबार में रहते हुए भी इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के परम प्रेरक महाराणा प्रताप की प्रशंसा मे अनेक गीत और दूहे लिखे। साहित्य जगत मे पृथ्वीराज 'पीथल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। महाराणा प्रताप को लिखा गया पृथ्वीराज का पत्र साहित्य जगत मे प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि इस पत्र के द्वारा ही महाराणा प्रताप को अकबर से संघर्ष करते रहने की प्रेरणा मिली। इतिहासकारो ने अवश्य ही पृथ्वीराज के इस पत्र को अप्रामाणिक माना है।[1] पृथ्वीराज का पत्र महाराणा के उत्तर सहित इस प्रकार है —

पातळ जो पतसाह, बोलै मुख हूता वयण ।
मिहर पिछम दिस माह, ऊगे कासपराव-उत ॥ १ ॥
पटकूं मूछां पाण, कै पटकूं निज तन करद ।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥ २ ॥

महाराणा प्रताप का उत्तर —

तुरक कहासी मुख पते, इण तनसू, इकलग ।
ऊगे ज्याही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ ३ ॥

१ – ओझा निबंध संग्रह भाग ३ ४, पृ० ५४।

खुसी हूत पीथळ कमध, पटको मू छा पाण।
पछटए है जैते पतो कलमा सिर कैवाण ॥ ४ ॥
साग मू ड सहसी सको, सम-जस जहर सवाद।
भड पीथळ जीता भला वैण तुरक सू वाद ॥ ५ ॥[1]

पृथ्वीराज के लिखे हुए चार काव्य ग्रन्थ हैं —

१ वेलि किसन रुक्मणी री, २ ठाकुरजी रा दूहा, ३ गगाजी रा दूहा, ४ फुटकर दोहे व गीत[2] और छप्पय।[3] प० मोतीलालजी मेनारिया[4] और श्री सीतारामजी लालस[5] के अनुसार पृथ्वीराज की रचनाएं इस प्रकार है —

१ वेलि क्रिसन रुक्मणी री २ दसम भागवत रा दूहा, ३ गगा लहरी, ४ वसदे रावउत, ५ दसरथ रावउत।

रचनाओं के नामो मे उक्त अन्तर वसदे रावउत और दशरथ रावउत को ठाकुर जी रा दूहा मानने मे और गगालहरी को गगाजी रा दूहा मानने से तथा कवि पीथल के अनेक स्फुट गीत और दूहे मिलने से हुआ है। कवि पीथल ने दशरथ रावउत मे श्रीराम का और वसदेरावउत में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन किया है। शान्त रस विषयक इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

हरि जेम हलाडो जिम हालीजै, कायै धणिया सू जोर कृपाल।
मोली दिवी दिवी छत्र माथे, देवी सो लेऊ स दयाल ॥ १ ॥
रीस करो भावै रलियावत गज भावै खर चाढ गुलाम।
माहरै सदा ताहरी माहव, रजासजा सिर ऊपर राम ॥ २ ॥
मूझ उमेद बडो महमेहण, सि धुर पापै केम सरे।
चोतारो खर सोस चित्र दे, किमू पुतलिया पाण करे ॥ ३ ॥
तू स्वामी पृथुराज ताहरो, बलि बीजा को करे विलाग।
रूडो जिको प्रताप रावला भू डो जीको हमीणो भाग[6] ॥ ४ ॥

---

१ — श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित राजस्थान रा दूहा भाग पहलडो, प्रथम सस्करण १९३५ ई०, पृ० ६८ व ६९।

२ — श्री हीरालाल माहेश्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य, १९६० ई०, पृ० १५५।

३ — श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का निबन्ध 'पृथ्वीसिंह राठोड के छप्पय', शोध पत्रिका वर्ष १९६३।

४ — राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १२२।

५ — राजस्थानी शब्दकोष राजस्थानी शोध-सस्थान, चौपासनी, भूमिका, पृ० १३८।

६ — वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडमी), भूमिका पृ० ४४।

१२७ २। कवि पृथ्वीराज की रचना वेलि किसन रुकमणी री राजस्थानी काव्यों मे एक श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

(५) साया जी झूला

१२८ २। भक्त कवि साया जी का जन्म चारणों की झूला शाखा [1] मे विक्रमी स० १६३२ मे माना जाता है। साया जी ईडर राज्यान्तर्गत लीलछा [2] नामक गाव क जागीरदार स्वामीदास जी के दूसरे पुत्र थे। साया जी के बडे भाई का नाम भाया जी था। साया जी का देहान्त विक्रमी सवत् १७०३ माना जाता है। साया जी ईडर नरेश राव वीरमदेव जी और इनकी मृत्यु के पश्चात् राव कल्याणमलजी के आश्रित थे। दोनों ही नरेशों ने साया जी को एक एक लाख पसाव भेंट किया था। राव कल्याणमल जी ने लाख पसाव के साथ ही इनको कुवावा नामक ग्राम भी भेंट किया, जहा इनके वशज आज भी रहते हैं। [3]

१२९ २। राज्याश्रय में रहकर और राज्य सम्मान प्राप्त कर साया जी ने अपने आश्रयदाता की प्रशसा न करते हुए केवल मात्र श्रीकृष्ण के गुणगान में ही अपनी रचनाए लिखी।

१३० २। साया जी रचित कतिपय फुटकर पद्य और 'नागदमण तथा रुक्मणी-हरण' नामक काव्य उपलब्ध होते हैं। 'नागदमण' मे श्रीमद्भागवत के आधार पर कालिय-दमन की कथा और 'रुक्मणी हरण' मे कृष्ण रुक्मिणी विवाह की कथा वर्णित है।

(६) कविराजा बाकीदास

१३१ २। कविराजा बाकीदास का जन्म जोधपुर राज्य म पचपद्रा परगने में भाडियावास मे वि० स० १८३८ मे माना जाता है। बाकीदास जी आसिया शाखा के चारण थे और इनके पिता का नाम फतहसिंह था। अपने गाव मे सामान्य शिक्षा प्राप्त कर बाकीदास जी जोधपुर आये जहा रामपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह जी ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न हो कर इन्हें विभिन्न गुरुओ से काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि की शिक्षा दिलवाई। [4]

---

१ – चारणों की १२० शाखाओं में से "रेट" शाखा के अन्तर्गत "झूला" एक उपशाखा मानी गई है। महाकवि सूर्यमल कृत वशभास्कर, भाग १, स० प० रामकरण जी आसोपा, प्रताप प्रेस, जोधपुर स० १९५६, पृ० ८४।

२ – लीलछा गांव गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह ने आसाजी झूला को प्रदान किया था। सायांजी के पिता स्वामीदासजी आसाजी की नवीं पीढ़ी में हुए थे। नागदमण स०, राज्य कवि हमीरदानजी — प्रकाशक राज्यकवि लालाजी कानजी, दिल खुशालबाग पालनपुर, भूमिका, पृ० १–२।

३ – रुक्मणी हरण, सम्पादक-पुरुषोत्तमलाल मेनारिया राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० १७-२६।

४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हि० सा० स०, पृ० १९६।

जोधपुर मे बांकीदास जी महाराजा मानसिंह के गुरु आयस देवनाथ जी से मिले तो आयस देवनाथ जी इनकी कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें महाराजा से मिलाया। महाराजा मानसिंह ने बांकीदास जी को अपना काव्य गुरु बना कर सम्मानित किया और कागजों पर गुरु शिष्य सम्बन्ध की सूचक मोहर लगाने की स्वीकृति प्रदान की। मोहर पर यह छंद उत्कीर्ण करवाया गया —

श्रीमन् मान धरणिपति, बहु गुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनो, बांकीदास॥ [1]

१३२ २। कविराजा बांकीदास जी संस्कृत, ब्रज, राजस्थानी और फारसी के ज्ञाता होने के साथ ही इतिहासज्ञ भी थे। बांकीदास जी भारत में अंग्रेजी शासन के प्रथम विरोधी और हिन्दु मुस्लिम एकता के समर्थक थे।

१३३ २। कविराजा आशुकवि होने के साथ ही काव्यशास्त्र के अध्येता थे और पद्य के साथ ही गद्य लेखन में भी कुशल थे। इनकी राजस्थानी भाषा सरल होने के साथ ही प्रौढ़ और प्रसादगुणयुक्त है। कविराजाजी अनेक छन्दों के लेखन में सिद्धहस्त थे, किन्तु आपके दूहो और गीतो का चमत्कार विशेष प्रभावशाली है। कविराजाजी की रचनाएं इस प्रकार हैं–

१ सूर छत्तीसी, २ सीह छत्तीसी, ३ वीर विनोद, ४ धवल पचीसी, ५ दातार बावनी ६ नीतिमंजरी, ७ सुपहछत्तीसी, ८ वैसकवारता, ९ मावड़िया मिजाज, १० कृपणदरपण, ११ मोहमरदन १२ चुगलमुख चपेटिका, १३ वेस वारता, १४ कुकवि बत्तीसी, १५ विदुर बत्तीसी, १६ भुरजाल भूखण १७ गंगालहरी १८ जेहल जस जड़ाव, १९ कायर बावनी, २० कमाल नखसिख, २१ सुजस छत्तीसी २२ संतोष बावनी, २३ सिद्धराव छत्तीसी, २४ वचन विवेक २५ कृपण पच्चीसी, २६ हमरोट छत्तीसी, २७ स्फुट सग्रह, २८ कृष्ण चन्द्रिका, २९ विरहचन्द्रिका, ३० चमत्कारचन्द्रिका, ३१ मान जसो मंडन, ३२ चंद्रदूसण दर्पण, ३३ वैसाख वार्ता सग्रह, ३४ श्री दरबार री कविता, ३५ रसालंकार ग्रन्थ, ३६ अमररत्नाकर भाषा व्याख्या, ३७ महाभारत छंदोऽनुवाद, ३८ अमर-लापिका, ३९ धलवट पच्चीसी, ४० गीत ने छंद संग्रह और, ४१ बांकीदास री ख्यात।

१३४ २। बांकीदास का देहान्त जोधपुर में वि० स० १८९० श्रावण शुक्ला ३ को हुआ। इनके देहान्त पर महाराजा मानसिंह बहुत दुखी हुए और अपने शोकोद्गार इन छंदो मे प्रकट किये –

---

1. – यह मोहर बांकीदासजी के वंशजों के पास अभी तक सुरक्षित है।

सद् विद्या वहु साज, वाकी थो वाका वमु।
कर सुधी कवराज, आज कठी गो आसिया ॥
विद्या - कुल विख्यात, राज काज हर रहस री।
वाका तो बिण वात, किण आगल मनरी कहा ॥

बाकीदास जी की काव्यात्मक रचनाओं के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं –

सुर न पूछे टीपणो, सुकन न देखे सूर।
मरणा नू मगळ गिणें, समर चढे मुख नूर ॥ १ ॥
दामोदर दीजे मती, कायर काठे वास।
सरणे राखें सूर रैं, तेथ न व्यापे त्रास ॥ २ ॥
के सूरा पर कज्ज है, कै सूरां पर कज्ज।
सुर-पुर दोहू सचरे रूका व्है रज - रज्ज ॥ ३ ॥
सूर भरोसे आपरे, आप भरोसे सीह।
भिड दोहू भाजै नही, नही मरण री बीह ॥ ४ ॥
सखी अमोणा कथ री, पूरो एह प्रतीत।
कैं जासी सुर द्रगडे, कै आसी रणजीत ॥ ५ ॥
फबै सवा मण मुकत फळ, मैंगळ कुम्भ मभार।
पिण हाथळ बळ सू हुवी, सीह वडो सिरदार ॥ ६ ॥
सीहा देस विदेस सम, सीहा किसा उतन।
सींह जिके बन सचरे, सो सीहा री वतन ॥ ७ ॥
चमर ढुले नहँ सीह सिर, छत्र न धारे सीह।
हाथळ रा बळ सू हुवौ श्री मृगराज अबीह ॥ ८ ॥
तू बयू गणपत नाम लै जोतै धवळो भार।
गणपत हुदा बाप री, धवळ उठावैं भार ॥ ९ ॥
धवळा सू राजे धणी, धणी दीसे ग्वाड।
नारायण मत नाखजै, धवळा उपर घाड ॥ १० ॥

ग राजस्थान के संत–सम्प्रदाय

(अ) सामान्य परिचय

१३५ २। ससार में ऐसे व्यक्तियो का अभाव नही होता जो सन्त ही दूसरा की सुख सुविधाओ का ध्यान रखते हुए परोपकार मे सलग्न रहते हैं। ऐसे व्यक्ति परोपकार के लिए किसी भी प्रकार का कष्ट सहर्ष सहन कर सकते हैं। इनका हृदय उदार होता है

और इनकी भावना "वसुधैव कुटुम्बकं"[१] की होती है। उदारता, कष्ट-सहिष्णुता और परोपकार से परिवार-विशेष में ही नहीं, समस्त समाज और देश में सुख-शांति की स्थापना होती है। परिवार और बाहर यदि सभी लोग अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए एक दूसरे के सहयोगी बनकर रहें और उदार दृष्टिकोण से कार्य करते रहें तो सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ और शान्ति उपलब्ध हो सकती है। अपनी आवश्यकताएँ न्यूनतम रखते हुए जो दूसरों को अधिकाधिक लाभ पहुँचाते हैं वही वास्तव में सन्त कहे जा सकते हैं। सन्त ही समाज के मार्ग द्रष्टा होते हैं। यद्यपि सन्तों को अपनी प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा और मानापमान का ध्यान नहीं रहता, किन्तु समाज में सन्तों की प्रतिष्ठा सर्वोच्च होती है।

१३६ २। वास्तव में सन्तों के कारण ही हमारी संस्कृति का विकास होता है। "सम्यक करणं संस्कृति" अर्थात् संस्कृति द्वारा ही प्राकृतिक देन को सुधार कर उपयोगी बनाया जाता है। मुख्यतः सन्तों ने ही मानव समाज को पशु कोटि से सुधार कर उन्नति की ओर अग्रसर किया है। सन्तों ने पारस्परिक व्यवहारों को सात्विक रूप दिया है।

१३७ २। भारतीय साहित्य में सन्त शब्द की व्याख्या कई रूपों में की गई है। ऋग्वेद में "सत्" का वर्णन करने वाले क्रान्तदर्शी 'विप्रा' का उल्लेख हुआ है।[२] छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि प्रारम्भ में ब्रह्म अथवा परमात्मा के रूप में सत ही वर्तमान था।[३] महाकवि भवभूति ने बुद्धिमान व्यक्ति को ही सन्त माना है।[४] श्रीमद्भागवत में पवित्रात्मा को सन्त माना है।[५] भर्तृहरि ने परोपकारी को ही सन्त के रूप में स्वीकार किया है।[६] गोस्वामी तुलसीदास ने सन्त शब्द की व्याख्या सज्जन के रूप में की है।[७] महाभारतकार ने सदाचारी को ही सन्त माना है।[८]

अंग्रेजी के 'सेन्ट' शब्द को भी सन्त का पर्यायवाची कहा जा सकता है, क्योंकि अंग्रेजी सेन्ट शब्द की उत्पत्ति 'सेन्तुसिग्रा' नामक लेटिन शब्द से हुई है, जिसका अर्थ पवित्र करना होता है। इसीलिए कई ईसाई सन्तों को पवित्रात्मा के रूप में भी सम्बोधित किया

---

१ – पंचतंत्र अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

२ – सुपर्ण विप्रा कवियो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। १० ११४।

३ – छान्दोग्य उपनिषद खण्ड १।

४ – सन्तः परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते मूढः पर प्रत्यय नेय बुद्धिः ते सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सद्-सद् व्यक्ति हेतवः —उत्तर रामचरित्।

५ – भागवत, प्रथम स्कंध। अ०१ श्लोक ८।

६ – सन्तः स्वयं परहिते विहिताभि योगा। —शतकत्रयम्।

७ – रामचरित मानस, बालकाण्ड २४।

८ – आचार सम्भवं धर्म सन्तस्याचार लक्षणं।

गया है। सन्त शब्द वास्तव मे "सन्" नामक संस्कृत शब्द का बहुवचन है। "सत्" शब्द "अस" अर्थात् होना धातु से सम्बंधित है। इस प्रकार सन्त शब्द के मूल में — होने वाला, रहने वाला, जन्म मरण से परे, अजर अमर, सत्य ब्रह्म अर्थात परमात्मा का स्वरूप है। भारतीय शास्त्रों मे "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" कहा गया है। सन्त शब्द के मूल मे सत्य ही मानना चाहिये। श्रीमद्भागवत गीता के "ऊं तत्सत्" मे निहित "सत्" शब्द भी ब्रह्म अर्थात् सत्य के लिये व्यवहृत हुआ है।

१३८ २। भारत के प्रत्येक भू भाग मे सन्तो की अवतारणा होती रही है और भारत को प्राचीनकाल से ही सन्तो की भूमि कहा जाता है। सन्तो के कारण ही भारतीय सामाजिक जीवन मे धर्म को उच्च स्थान प्राप्त हो सका है और भारतीय संस्कृति एक धर्म-प्रधान संस्कृति बन गई है। वास्तव मे भारतीय संस्कृति के मूल मे धर्म के निम्नलिखित लक्षण ही हैं —

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम् ॥

१३९ २। नगरी, चित्तौड़, भनुदावन, भिनमाल, आहड़, नागद्रहा, वैराट, अजयमेरु चन्द्रावती आदि ऐतिहासिक स्थानो मे प्राप्त धार्मिक अवशेषो से सिद्ध होता है कि राजस्थान मे प्राचीनकाल के समस्त भारतीय धर्मो जैसे वैष्णव शैव, शाक्त बौद्ध, जैन आदि का विशेष प्रचार रहा है।[1] राजस्थान में अनेक प्रकार के धार्मिक स्थानो, जैसे — देव मन्दिरो, स्तूपो और बिहारो का निर्माण हुआ है। विभिन्न मत - मतान्तरो और देवी-देवताओ से सम्बन्धित मूर्तिया भी राजस्थान में प्रचुर मात्रा मे निर्मित एव प्रतिष्ठित हुई है।

१४० २। राजस्थान निवासियों ने धार्मिक कार्यों में भी मन से रुचि प्रकट की है। राजस्थानी शूरवीरो तथा वीरागनाओ ने मुख्यत अपनी धार्मिक वृत्तियो के कारण ही अनूठा त्याग कर भारतीय इतिहास में अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

१४१ २। इस प्रकार राजस्थान सन्तो के लिए प्रचार - प्रसार का उत्तम क्षेत्र बन गया और प्रमुख भारतीय सन्त सम्प्रदायों को राजस्थान में विशेष आश्रय प्राप्त हुआ। ऐसे सम्प्रदायो मे — गोरखनाथ, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, कबीर आदि के सम्प्रदायो को लिया जा सकता है। राजस्थान में अनेक सन्त सम्प्रदायो का जन्म भी हुआ। दादू राम स्नेही, चरणदासी, विश्नोई और जैन धर्म के अन्तर्गत कई मत राजस्थान मे आविर्भूत हुए और उनका राजस्थान के बाहर भी प्रचार हुआ।

---

१ — मध्यकालीन भारतीय संस्कृति डा० गौरीशंकर ओझा कृत, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

१४२ २। राजस्थान में सन्त साहित्य पर इस्लाम का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों का आगमन भारत में आठवीं सदी से ही प्रारम्भ हो गया था। मुसलमानों के भारत आगमन का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार, व्यापार व शासन सत्ता स्थापित करना था। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुसलमानों को भारतवासियों से संघर्ष करना पड़ा। मुसलमानों की विजय के साथ ही भारत में बड़ी संख्या में सूफी संत व फकीर भी आए। इन्होंने अपने विचारों को प्रचारित करने के लिए प्रेम का मार्ग अपनाया। ऐसे मुस्लिम सन्तों का एकेश्वरवाद (वहदानियत) भारतीय धर्म के भी अनुकूल हुआ। भारतीय परम्परानुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन को मोक्ष की संज्ञा दी गई है। आत्मा अजर अमर है व नाना शरीरों में प्रवेश करती हुई परमात्मा में लीन होना चाहती है। मोक्ष प्राप्ति में गुरु की सहायता परम आवश्यक होती है। आत्मा और परमात्मा के बीच माया का आवरण रहता है। इस्लाम मत में आत्मा के स्थान पर बन्दा है जो शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत नामक अवस्थाओं को पार करता हुआ खुदा के नजदीक बका होकर फना के लिए पहुँचता है। माया का स्थान इस्लाम में शैतान ने ग्रहण किया है जो बन्दे को मार्ग भ्रष्ट कर खुदा के नजदीक नहीं पहुँचने देता है। बौद्ध और जैन धर्म में भी मोक्ष को ही प्रधानता दी गई है। इस प्रकार सन्त मत के उद्भव से सर्व मतैक्य का अनूठा प्रतिपादन होता है।

आ सन्त कवि

(१) सन्त दादूदयालजी

१४३ २। स्वामी दादू दयाल जी दादू पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। दादू पंथ का प्रभाव राजस्थान में विशेष रूप से है जिसके फलस्वरूप राजस्थान के सैकड़ों ही स्थानों में दादूजी के स्थानक मिलते हैं। दादूपंथी निराकार परब्रह्म की उपासना करते हैं। राजस्थान में जयपुर के निकट 'नारायणा' नामक स्थान दादूपंथियों का मुख्य केन्द्र है।

१४४ २। दादूजी का जन्म अहमदाबाद में वि० १६०१ में माना जाता है। दादूजी की जाति के विषय में मतभेद है। "दादू जन्म लीला परची" में दादूजी के शिष्य जन गोपाल ने दादूजी के जीवन वृत्त पर लिखा है। कहते हैं कि साबरमती में सन्दूक में बहते हुए अहमदाबाद के एक ब्राह्मण को एक बालक मिला जो बाद में दादूजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दादूजी ने राजस्थान में अपने धर्म का विशेष प्रचार किया और 'आमेर' 'साभर', 'नारायणा' आदि स्थानों में अपने धर्मप्रचार के केन्द्र स्थापित किये। दादूजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। दादूजी का देहान्त १६६० वि० में नारायणा नामक स्थान में हुआ जहां इनके वस्त्रों और पुस्तकों की पूजा आज भी की जाती है।

१४५ २। दादूजी की रचनाओं का संग्रह 'वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। दादूजी

की रचनाओं में नाम, गुरुभक्ति सत्संग वैराग्य, माया, जीव, और ब्रह्म आदि विषयों के बारे में चर्चा है।

१४६ २। अपनी रचनाओं में दादूजी ने दुरूहता को सदा ही दूर रखा है। धर्म सम्बन्धी दुरूह विचारों को सरलता से व्यक्त किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से भी स्वामी दादूदयाल जी की रचनाएं उत्कृष्ट कही जा सकती हैं। दादू सम्प्रदाय का जयपुर क्षेत्र में विशेष प्रचार है। क्योंकि सन्त दादूजी का निवास मुख्यत इसी क्षेत्र में रहा है। दादूजी ने सगुण भाव को छोड़कर निर्गुणोपासना पर अधिक बल दिया है। दादू सम्प्रदाय में इस समय चार दल हैं जिनके नाम हैं— खालसा, विरक्त उतराधा और नागा।

खालसा — दादूजी के देहावसान के बाद उनके बडे पुत्र गरीबदास गद्दी के अधिकारी बने और उन्होंने अपनी आचार्य-परम्परा चलाई। इसी आचार्य परम्परा वाले खालसा कहे जाते हैं। खालसा शाखा का मुख्य केन्द्र जयपुर के पश्चिम की ओर नाराणा नामक स्थान है। नाराणा में ही दादूजी का देहान्त हुआ और यही इनकी मुख्य गद्दी स्थापित हुई।

उतराधा — राजस्थान से हरियाना, हिसार रोहतक दिल्ली, भटिंडा, नाभा, पटियाला आदि उत्तरदिशा के स्थानों में चले जाने के कारण दादूजी के शिष्य उतराधा कहे गये। उक्त क्षेत्रों में भी कई दादू द्वारों की स्थापनाएं हुईं, जिनसे दादू पंथ के प्रचार में सहायता मिली।

विरक्त — दादू पंथी विरक्त साधु स्थान स्थान पर घूमते रहते हैं और लोगों को दादूवाणी का उपदेश देते हैं। विरक्त साधु अपना निर्वाह गृहस्थों द्वारा दी गई भिक्षा से करते हैं। वर्षा ऋतु में किसी उपयुक्त स्थान पर ठहरकर ऐसे साधु चातुर्मास करते हैं और वहीं नित्य प्रति अपने सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं।

नागा — दादूपंथी नागा साधुओं की जयपुर में सात जमातें प्रसिद्ध हैं। नागा-साधु शस्त्र-सचालन और मल्लविद्या में बडे प्रवीण रहे हैं। जयपुर सेना के अन्तर्गत नागा साधुओं की भी एक टुकड़ी रही, जिसने कई युद्धों में भाग लिया।

१४७ २। दादू सम्प्रदाय में सन्त— दादू के अतिरिक्त गरीबदास (स०१६३२–१६९३), बखनाजी (रचनाकाल स० १६४०–१६७०), जगजीवन (स० १६४०), जनगोपाल (स०१६५०), रज्जब जी पठान (ज० स० १६२४ लगभग), जगन्नाथदास (स० १६५०) भीखजन (स० १६८५) माधोदास (स० १६६१), सन्तदास (स० १६६६), वाजिद (स० १६६० लगभग) सुन्दरदास (स० १६५३–१७४६), खेमदास (स० १७००), राघवदास (स० १७१७) चारण कवि **स्वरूपदास**

(रचनाकाल सं० १८८०–१६२०) और मगलदास (सं०१६१०) आदि प्रमुख संत कवि हो गए हैं।

(२) सन्त रज्जब जी

१४८ २। रज्जब जी का वास्तविक नाम रज्जब अली खां था। रज्जब अली खां का जन्म स्थान जयपुर के निकट सांगानेर और जन्म सं० १६२४ वि० माना जाता है। रज्जब अली खां २० वर्ष की आयु में अपना विवाह करने आमेर आए तो दादूजी से इनका साक्षात्कार हुआ और तत्काल ही विवाह का विचार छोड़कर दादू सम्प्रदाय में दाखिल हो गये। रज्जब जी अपने गुरु को विनय श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और दादूजी के देहान्त पर उन्होंने अपनी आखें तक न खोली। रज्जब जी का देहान्त उनके जन्म स्थान पर सांगानेर में सं० १७४६ वि० में हुआ।

१४६ २। रज्जब जी के दो संग्रह-ग्रन्थ 'वाणी' और सरवंगी हैं। दोनों ही ग्रन्थों से रज्जब जी के अगाध ज्ञान, गुरु भक्ति और काव्य शक्ति का परिचय मिलता है।

१५० २। सन्त रज्जब अली खां पठान की 'वाणी' और "सरवंगी" में अन्तर्गत अनेक रचनाएं मिलती हैं जिनके कतिपय नाम निम्नलिखित हैं —

प्रथम बावनी, दूसरी बावनी, पन्द्रह तिथि, गुरु उपदेश, अविगतिलीला, अरस्लीला, परमपारिख, उत्पत्ति निर्णय का अंग, ग्रह वैराग्य बोध, दोष दरीबे और जैन जजाल (वाणी)। स्तुति, भेंट, गुरुदेव, विरह आदि के अंग (सर्वंगी)।

मुसलमान होते हुए भी इनकी रचनाओं पर मुस्लिम प्रभाव ज्ञात नहीं होता। इनकी भाषा — सरल, सरस राजस्थानी व दोहों से युक्त है।

(३) स्वामी लालदास जी

१५१ २। स्वामी लालदास जी का जन्म सं० १५६० में अलवर राज्य के धोलीदूब नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम चांदमल और माता का नाम श्रीमती श्रीसमुदा था। इनकी आयु १०८ वर्ष बताई गई है। इनका देहावसान वि०सं० १७०५ में हुआ।

स्वामी लालदास जी दादू महाराज से प्रभावित थे। उन्हें जीवन का आडम्बर और मनकी मक्करी से तीव्र विरोध था।

(४) सन्त मावजी

१५२ २। [illegible]गरपुर में सन्त मावजी की विशेष मान्यता है। सन्त मावजी का जन्म

डूगरपुर के समीप सावला नामक गाव में औदीच्य ब्राह्मण कुल म हुआ था। मावजी का जन्म स० १७७१ और देहावसान स० १८०१ माना जाता है।

१५३ २। मावजी के पिता एक भक्त ब्राह्मण थे जिनका बालक पर विशेष प्रभाव हुआ। मावजी ने १२ वर्ष की अवस्था मे ही घर का त्याग कर सोम और माही नदी की गुफा म तपस्या की। तदुपरान्त मावजी लोक सेवा और भक्ति का उपदेश देने लगे और इनके अनुयायी बढन लगे। मावजो की वाणी वागड क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध है और इनकी भविष्यवाणियों पर जनता पूरा विश्वास रखती है।

(५) स्वामी चरणदास जी

१५४ २। स्वामी चरणदास जी महाराज चरणदासी पथ क प्रवर्तक माने जाते हैं। चरणदास जी ने मूर्ति पूजा का खण्डन और निराकार ब्रह्म की उपासना का समथन किया है। चरणदासी सम्प्रदाय के साधु नीले रग क वस्त्र पहनते हैं और सिर पर गोपी चदन लगाते हैं।

१५५ २। चरणदास जी का जन्म मेवात के डहरा (जिला अलवर) नामक स्थान में स० १७६० के लगभग माना जाता है। इनकी जाति के विषय मे मतभेद है। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ लोग महाजन बतलाते हैं। चरणदास जी ने १६ वर्ष की अवस्था में शुकदेव मुनि से दीक्षा ली और बाद में लोगो को उपदेश देना प्रारम्भ किया। चरणदास जी के शिष्यों की सख्या ५२ कही जाती है। चरणदास जी की शिष्याओ म दयाबाई और सहजोबाई राजस्थानी भाषा की प्रसिद्ध कवियित्रिया हो गई हैं। चरणदास जी का देहान्त स० १८३८ वि० में हुआ। चरणदास जी रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं —

(१) अष्टागयोग, (२) नासकेत, (३) सन्देह सागर, (४) भक्ति सागर, (५) हरी प्रकाश टीका। (६) अमरलोक खण्ड धाम, (७) भक्ति पदारथ, (८) शब्द, (९) मन व्यर्थ गुटिका (१०) राम - माला, (११) ज्ञान स्वरोदय, (१२) दानलीला (१३) ब्रह्मज्ञान सागर और (१४) कुरुक्षेत्र लीला।

१५६ २। चरणदास जी ने अपनी रचनाओ मे काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि बुराईया का निरूपण करत हुए नाम महिमा, साधन, भगवद्प्रेम, आदि का समथन किया है।

१५७ २। चरणदासी सम्प्रदाय क अनुयायी मुख्यत राजस्थान के उत्तर - पूर्वी भाग मेवात मे मिलते हैं। इस सम्प्रदाय में गुरु भक्ति, योगसाधना और सदाचरण पर बल दिया गया है। चरणदासी सम्प्रदाय म निर्गुण व सगुण दोनों ही मतो का समन्वय हुआ है क्योंकि सत चरणदासजी निर्गुण सगुण दोनो में विश्वास रखत थे।

(६) श्री जसनाथ जी

१५८ २। हडप्पा और मोहनजोदडो घाटी की खुदाई में प्राप्त योगी की मूर्ति से सिद्ध होता है कि योग की परम्परा भारत में प्राचीन है। यौगिक क्रियाओं का महत्त्व वेदों में भी प्रतिपादित किया गया है।[१] उपनिषद् काल में तो योग का विशेष प्रचार हो गया था जिसके परिणामस्वरूप योगोपनिषद् जैसी रचनाओं का निर्माण हुआ।[२] तदुपरान्त महर्षि पातञ्जलि ने विक्रमी पूर्व दूसरी सदी में योग सूत्रों की रचना कर योगविद्या का महत्व प्रतिपादित किया। सिकन्दर, बुद्ध और महावीर के काल में भी भारत में योग का प्रचार पाया जाता है। नाथ सम्प्रदाय भी मुख्यतः योगियों का सम्प्रदाय है और इसके प्रवर्तक योगीश्वर आदिनाथ[३] शिव माने जाते हैं। कहते हैं कि एक समय शिवजी क्षीर समुद्र के किनारे पार्वती को योग विद्या बता रहे थे। उसी समय पानी में मत्स्य रूप में निवास करने वाले मत्स्येन्द्रनाथ ने शिवजी से योग विद्या सुन ली। तदुपरान्त योग विद्या मत्स्येन्द्रनाथ से गोरखनाथ को प्राप्त हुई और आगे क्रमशः शिष्य परम्परानुसार गैनीनाथ और निवृत्तिनाथ को यह विद्या प्राप्त हुई।

१५९ २। नाथ पंथ के प्रधान नेता गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं, जिनका प्रभाव सारे भारत में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से सिंहलद्वीप तक है। गोरखनाथ की २२ शिष्य परम्पराएँ स्थापित हुई। इनमें से माननाथी पंथ अथवा पावनाथी पंथ जोधपुर में विद्यमान है। कई नाथ योगी राजस्थान के राठोड, सिसोदिया व कछवाहा राजपूतों के गुरु रहे हैं। आज भी राजस्थान में नाथ पंथी साधुओं के कई केन्द्र हैं। नाथ पंथी साधुओं को कनफड़ा योगी भी कहा जाता है क्योंकि ऐसे योगी कानों में बडी बडी बालियां पहनते हैं। राजस्थान में योगी भर्तृहरी और गोपीचन्द से सम्बन्धित कई गाथाएं भी प्रचलित हैं जिनमें नाथ पंथ के व्यापक प्रचार का पता चलता है। मेवाड राज्य के संस्थापक बापा रावल के गुरु भी नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित ज्ञात होते हैं और मेवाड राजकुल के उपास्य भगवान एकलिंग की पूजा का काम भी सैंकडों वर्षों तक नाथ योगियों के अधीनता में रहा।[४]

१६० २। संत श्री जसनाथ जी का जन्म वि० सं० १५३६ में बीकानेर के कतरियासर ग्राम में हुआ। आपका देहावसान वि० सं० १५६३ में हुआ।

---

१ — तम आसीत्तमसा गूढ़ मग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥
— ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त १२९।

२ - सम्पादक पं० महादेव शास्त्री, अडयार लाईब्रेरी, अडयार, मद्रास।

३ — आदिनाथ को जलधर नाथ भी माना जाता है। — गंगा का पुरातत्वांक, पृ० २२०।

४ — उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

१६१ २। जसनाथ का इस क्षण भंगुर भौतिकता के प्रति अपना एक दृष्टिकोण था जो उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है। यद्यपि आप की रचनाएँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होती फिर भी जो कुछ प्राप्त होती है उनमें उनके दृष्टिकोण, जीवन - दर्शन, कवित्वशक्ति और वैराग्य के दर्शन होते हैं —

> अठे ऊंचा पोल चिणाया, आगे पोल उसारे।
> ऊंचा अजब झरोखा राख्या, वे पूगा नेवारे॥
> पाछे घिरने जोइयो, सब जुग रहियो लारे।
> गुरु परसादे गोरख वचने, सिध जसनाथ विचारे॥
> इन जिवडे के कारणे, हर हर नाव चितार।
> ओ धन तो है ढलती छाया, ज्यूं धुंवे री धारे॥
> लाइ हुए सायब री दरगा, खरचो वस्तु पियारे।
> गुरु परसादे गोरख वचने, सिध जसनाथ उचारे॥
> बैठे जिवडो, घर घर काप्यो, उबरे किसी उधारे।
> का उबरे कोइ सुकृत कीया का करणी इदकारे॥

(७) रामस्नेही सम्प्रदाय के कवि

१६२ २। रामस्नेही सम्प्रदाय वाले श्री रामानुज को अपना प्रथम आचार्य मानते हैं और रामानुजाचार्य से ही अपनी गुरु - परम्परा को स्थिर करते है। रामस्नेही सम्प्रदाय में नामध्यान पर विशेष बल दिया गया है। निराकारोपासना, आप्तवाक्य में विश्वास और सदाचार रामस्नेही मत के मुख्य सिद्धान्त माने गए हैं।

१६३ २। राजस्थान में शाहपुरा, खेडापा और रेण नामक स्थानों में रामस्नेहियों की तीन शाखायें हैं। रामस्नेही संत रामद्वारे में रहते हुए भिक्षान्न से अपना निर्वाह करते हैं। शास्त्रों से रहना व शास्त्र चर्चा करना इनका प्रधान कार्य माना गया है। रामस्नेही संतों का मुख्य केन्द्र शाहपुरा है, जहां फाल्गुन शुक्ला ६ से चैत्र कृष्णा ६ तक मेला लगता है।

१६४ २। रामस्नेही मतों में शाहपुरा शाखा के प्रवर्त्तक रामचरणजी (स० १७७६–१८५५) के अतिरिक्त रामजन (स० १८३९), जगन्नाथ (१८५५), हरिराम दास (स० १८००–१८३५), रामदास (स० १७८३–१८५५) दयालदास (स० १८१६-१८८५), दरियावजी (स० १७३३–१८०५) आदि कवि हुए हैं। जोधपुर, बीकानेर, अजमेर, उदयपुर, जयपुर आदि क्षेत्रों में कई रामद्वारे स्थापित हुए हैं। इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थ भी सुरक्षित हैं।

(८) जाम्भोजी

१६५ २। विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जाम्भोजी माने जाते हैं जिनका जन्म जोधपुर के अन्तर्गत पीपासर गांव में भाद्रपद कृष्णाष्टमी सं० १५०८ में हुआ था। जाम्भोजी के पिता का नाम लाहित व माता का नाम हांसाबाई था। ये जाति के पवार राजपूत थे। बचपन में जाम्भोजी गायें चराया करते थे। एक समय इन्होंने जोधपुर के राव दूदाजी को भी आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद सफल हुआ तबसे इनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी व कई लोग इनके अनुयायी हो गये।

१६६ २। जाम्भोजी का सम्प्रदाय विश्नोई सम्प्रदाय कहा जाता है क्योंकि इसके २० और ६ सिद्धान्त हैं। जाम्भोजी ने निर्गुणोपासना, योगाभ्यास, अहिंसा और सिद्धि पर विशेष बल दिया है। सन्त जाम्भोजी ने तालवा बीकानेर में समाधि ली। इस कारण से यहां विश्नोईयों का मेला लगता है।

(९) जैन सन्त कवि

१६७ २। जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव माने जाते हैं। ऋषभदेव के पश्चात २३ अन्य तीर्थंकर हुए जिनमें से अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। भगवान महावीर का समय ५२१–४६६ वि० पूर्व का माना जाता है। भगवान महावीर ने १२ वर्ष तक घोर तपस्या की तदुपरान्त अपने उपदेशों से वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध किया।

१६८ २। जैन सिद्धान्त के अनुसार जीव का स्वभाव— शुद्ध, बुद्ध एवं सच्चिदानन्द माना गया है किन्तु कर्मों के कारण कलुषता का आवरण छा जाता है। उसको हटाये बिना मोक्ष की उच्च स्थिति प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए मन, वचन, और कर्म से किसी प्राणी को दुख न देना, संयम से रहना, सदाचार पालन बिना अधिकार कोई वस्तु ग्रहण न करना मनको विषय वासना से अलग करने के लिए व्रत उपवास करना आदि सिद्धान्त माने गए हैं। इसके लिए सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र की आवश्यकता होती है।

१६९ २। जैन मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण पौराणिक युग से ही भारत में होने लगा था। जैन मूर्तियों को वस्त्रादि से सज्जित करने के विषय को लेकर जैन मतानुयायियों में मतभेद हो गया तब श्वेताम्बर और दिगम्बर दो दल हो गये। श्वेताम्बर जैन अपनी मूर्तियों को वस्त्र पहिनाने लगे और दिगम्बर जैन नग्न मूर्तियों की उपासना करने लगे। श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र पहिनते हैं व दिगम्बर साधु वस्त्र हीन रहते हैं।

१७० २। राजस्थान में जैन सम्प्रदाय का अन्य किसी भू भाग से अधिक प्रचार हुआ। राजस्थान के हिन्दू नरेशों के व्यवस्थापक मुख्यतः जैन धर्मानुयायी हुए, जिन्होंने राजस्थान में सुविशाल और कलापूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया। राजस्थान जैन

सन्तों और साधुओं का मुख्य केन्द्र बन गया और राजस्थान में कई पुस्तक भण्डारों की स्थापनाएँ हुई जिसमें से जैसलमेर के जैन ग्रंथ भण्डार अपनी गौरव गरिमा को आज भी सुरक्षित किये हुए हैं। जैन साधु साध्वियों, यतियों और गृहस्थों ने राजस्थानी में हजारों विविध विषयक रचनाएं कीं।

१७१ २। राजस्थान में आबू, माधोपुर, ओसियां, नागदा, चितौड़, सांगानेर आदि जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र हैं। यहीं विशाल जैन मन्दिर भी मिलते हैं।

१७२ २। राजस्थान से सलग्न प्रदेश दिल्ली, मालवा, पंजाब, सिंध और गुजरात में भी जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ जिसके परिणाम स्वरूप इन क्षेत्रों में राजस्थान का सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित हुआ। जैन साधु-साध्वियां और श्रावक श्राविकायें उक्त क्षेत्रों में यात्रा करते रहे। राजस्थान की ही भांति उपरोक्त क्षेत्रों में भी धार्मिक भवनों का निर्माण हुआ और बहुत से ग्रन्थ भण्डार स्थापित किये गये।

१७३ २। कालान्तर में श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्दर भी कई मत-मतान्तर हो गये जिन्हें स्थानकवासी, तेरापंथी आदि कहा जाता है। मतमतान्तरों के कारण ही जैन धर्म के अन्तर्गत विभिन्न गच्छों की स्थापना हुई।

१७४ २। भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का विशेष महत्व है क्योंकि इसके प्रणेता परम तपस्वी और अनुभवी व्यक्ति रहे हैं और यह गद्य पद्यात्मक अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। मध्यकालीन कतिपय जैन साहित्यकार निम्न लिखित हैं —

विनय समुद्र बीकानेर के उपकेशगच्छीय वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। जिनका समय वि०सं० १५८३ से १६१४ तक है। इनकी रचनाओं के नाम — (१) विक्रम पचदड चौपाई, (२) अम्बड चौपाई (वि०सं० १५९९) (३) आराम शोभा चौपाई (१५८३), (४) मृगावती चौपाई (१६०२), (५) चित्रसेन पद्मावती रास (१६०४) (६) पद्म चरित्र (१६०४), (७) शीलरास (१६०४), (८) रोहिणेय रास (१६०५), (९) सिंहासन बतीसी चौपाई (१६११), (१०) नल दमयंती रास (१६१४), (११) सग्राम सूरि चौपाई, (१२) चन्दनबाला रास, (१३) नमि राजर्षि सन्धि (१४) साधु वंदना, (१५) ब्रह्मचरि (१६) सीमंधर स्वामी स्तवन, १७) शत्रुञ्जय गिरि मडण श्री आदीश्वर स्तवन, (१८) स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन (१९) पार्श्वनाथ स्तवन और (२०) इलापुत्र रास हैं।

इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है —

ताहरइ दरसण दुरित पुलाई, नव निधि सवि मंदिर थाई आई रोग सवि दूरो।
समरण सकट सगला नासइ, वाच सग गुण नावइ पासइ, आपइ आणद पूरो। *

पामेय वमुहारंद दाया, तम तिहुयण नायरो।
धरणेन्द्र सेवत चरण प्रनुन्न, मयल वंछिय न्यायरो।
थमणाधीश जिणेश प्रभु तू, पाम जिणवर सामिया।
चीनती विना पयाय जपइ, सयन पूरवि कामिया।

१७८ २। हीरकलस खरतरगच्छीय मानरचन्द्र सूरि न्गा के कवि हो गये हैं अनका जन्म सं० १५९५ माना जाता है। हीरकलन ज्योतिष के विगत ज्ञाता थे। इनका साहित्य २८ रचनाओं में उपलब्ध हो चुका है। इनके मोती कपासिया संवाद का उदाहरण इस प्रकार है —

मोती — देव पूजउ गुरत गति जिहा, मगल काजि विवाह।
आदर दीजइ धम्हा तणी सविज करइ उछाह।

कपासिया — सभलि तवइ कपामीउ, मोती म हुय गमार।
गरव न कीजइ बापडा, भला भनी संमार।

मोती — कहि मोती सुन कापडा, मइ तइ केहो साय?
हुँ साठुँ कचण सरिस, तइ खल तू के स वाय।
मइ सुर नरवर भेटिया, कीधा जीहा सिंगार।
तइ भेटीया गोधण वलद, जिहा कीधा आहार।

कपासिया — उत्तर दीयइ कपासियउ अम्ह आहार जोइ।
गाया गोरस नीपजइ, वलदे करसण होइ।
गोधण जदि वाटउ न हुइ वदि वरतइ करतार।
धान वडइ तव वेचीयइ, सोवन मोती हार।

१७६ २। हेमरत्न सूरि का समय अनुमानतः सं० १६१६ से १६७३ है। इनकी सं० १६४५ में रचित "गोराबादल पद्मिणी चऊपई" विशेष प्रसिद्ध है। इस रचना में अलाउद्दीन के चितौड़ आक्रमण और गोराबादल की वीरता का वर्णन है। इस कृति में कवि ने विभिन्न रसों का समावेश किया है —

वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज।
सामधरम रस साभलउ, जिम होवइ तन तेज॥

इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है —

पान पदारथ सुघड नर अणतोलीया विकाई।
जिम जिम पर भुइ संचरइ मोली मुहगा थाइ।
हंसा नइ सरवर घणा, कुसुम केली भवराह।
सपुरिसा नइ सज्जन घणा, दूरि विदेस गयाह॥

१७७ २। सत्रहवी शती के जैन-साहित्यकारो में समयसुन्दर (स० १६२० से १७०२) का स्थान महत्वपूर्ण है। इनकी रचनाएं अनेक हैं, जिनका प्रकाशन समयसुन्दर कृत कुसुमाजलि' में श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा सपादित रूप में हो चुका है।

१७८ २। 'समयसुन्दर के गीतो के विषय में प्रसिद्ध है —

"समयसुन्दर रा गीतडा, कुम्भे राणे रा भीतडा" अर्थात् जिस प्रकार महाराणा कुम्भा द्वारा बनवाये हुए चितौड कीर्तिस्तम्भ, कुम्भश्याम का मंदिर व कुम्भलगढ प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार समयसुन्दर के गीत प्रसिद्ध हैं।

कवि उग्रराज जोधपुर-नरेश उदयसिंह के समकालीन थे व इनका जन्म सवत् १६३१ माना जाता है। इनकी रचनाओ मे "भजन छत्तीसी" और "गुणबावनी" महत्वपूर्ण हैं।

१७९ २। जिन हर्ष का अपर नाम जसराज था। इनकी रचनाओ में "जसराज बावनी' (स० १७३८ वि० में रचित) और "नन्दबहोत्तरी" (स० १७१४ में रचित) प्रसिद्ध हैं।

१८० २। १८वी शताब्दी में आनन्दघन नामक कवि ने "चौबीसी" नामक रचना में तीर्थंकरों के स्तवन लिखे। इनका देहान्त मारवाड मे स० १७३० वि० में हुआ। इनका आध्यात्मिक चिन्तन उच्चकोटि का था —

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसें खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री।
निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रेहमान री।
कर्षे करम कान से कहिए, महादेव निर्वाण री॥
परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चीन्हें सो ब्रह्म री।
इस विधि साधो आप आनन्दघन चेतन मय निःकर्म री॥

१८१ २। उत्तमचन्द और उदयचन्द भंडारी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के मन्त्री थे। इनका रचनाकाल स० १८३३ से १८८६ तक है। दोनो ही भंडारी-बन्धुओ ने अनेक रचनाएं की, जिनसे इनके काव्यशास्त्रीय और आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

जैन साहित्यकारो की सख्या सैकडों ही नही हजारों तक पहुँचती है। प्रत्येक काल में जैन साहित्यकारो की रचनाएं विकसित अवस्था में और विविध रूपो में प्राप्त होती हैं।

राजस्थानी जैन साहित्य मुख्यत राजस्थान और गुजरात मे रचा गया क्योंकि प्राचीन काल मे जैन धर्म का प्रचार भी मुख्यत इन्ही प्रदेशों म हुआ।

१८२ २। मध्यकाल के कतिपय फुटकर कवि —

(१) बीठू सूजो, वि०स १५९१ १५९८, राउ जैतसीरो छन्द।

(२) कायस्थ केशवदास, वि०स० १५९२, बसन्तविलास फाग।

(३) कुशल लाभ —

(१) माधवानल चौपाई, (२) तेजसार रास (३) अगडदत्त रास,
(४) दुर्गा सप्तसती, (५) जिनपालित जिनरक्षित सधि,
(६) भवानी छन्द, और (७) ढोला मारू रा दूहा चउपई।

(४) मालदेव —

(१) मन भमरा गीत (२) महावीर पारणा (३) माल शिक्षा चौपाई,
(४) शील बावनी।

(५) बीठू सूरो, वि०स० १५१५ १५२५।

(६) मुनि मतिशेखर, वि०स० १५१४ ३७।

(७) लालूजी महडू वि०स० १५६१ ८३।

(८) सहज समुद्र वि०स० १५७० १६०० ।

(९) राजशील, वि०स० १५६३ १५६४।

(१०) हरिराम केसरिया।

(११) पुण्यरत्न, वि०म० १५९६, नेमिनाथ रास।

(१२) बीठू मेहा —

(१) पाबूजी रा छन्द और (२) गोगाजी रा रसावला।

(१३) केशवदास गाडण, वि०स० १६१० ६७,

(१) गुण रूपक, (२) राव अमरसिंह रा दूहा,
(३) विवेक वार्ता और (४) गजगुण चरित्र।

(१४) नारायण ब्राह्मण, वि०स० १६१५ ४०, हितोपदेश।

(१५) जयवतसूरि, वि०स० १६१५, स्थूलिभद्रकोश प्रेमविलास फाग,

(१६) रतनो खाती वि०स० १६१६, नरसी मेहता रा मायरो।

(१७) दयाल सागर, वि०स० १६१७, मदन नरिंद चरित्।

(१८) अल्लूजी वि०स० १६२०, फुटकर।

(१९) जल्ह, वि०स० १६२५, बुद्धिरासा।

(२०) रामा साहू वि०स० १६२८, वेलि राणा उदयसिंघ री।

(२१) पीथा आसिया, १६२८ ५३ ।

(२२) अखो भाणावत, वेलि देईदास जैतावत री।

(२३) देवो, वि०स० १६३२ फुटकर।

(२४) अग्रदास, वि०स० १६३२—

(१) श्रीराम भजन मजरी, (२) कुडलिया, (३) हितोपदेश भाषा, (४) उपासना बावनी, (५) ध्यान मजरी, (६) पद (७) विश्व ब्रह्म ज्ञान, (८) रागावली, (६) रामचरित, (१०) अस्टयाम, (११) अग्रसार (१२) रहस्यत्रय।

(२५) गरीबदास, वि०स० १६३२ ६३ —

(१) अनभे प्रबोध, (२) साखी, (३) चौबोली, (४) पद।

(२६) गोरधन बोगसो, स्फुट छद।

(२७) सूरा टापरिया, स्फुट छन्द।

(२८) कनक सोम, वि०स० १६२५ ५५, आषाढ भूति चौपाई।

(२६) रगरेलो बीठू, राठौड महाराजा रायसिंह कल्याणमलोत री गीत।

(३०) दूदा आसिया, १६३३ १६४४।

(३१) माला सादू।

(३२) बारहठ शकर दातार सूर री सवाद।

(३३) देवीदास, वि०स० १६३३, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश।

(३४) पचा सादु वि०स० १६४०।

(३५) चतुर्भुज दास, वि०स० १६४०, भागवत एकादश स्कन्ध।

(३६) चतुर्भुज दास निगम, वि०स० १६४०, मधुमालती चउपई।

(३७) हेमरतन, वि० स० १६४५ —

१ महिपाल चउपई, २ अभयकुमार चउपई, ३ गौराबादल पद्मिणी चउपई, ४, शीलवती कथा, ५ लीलावती, ६ सीताचरित्र, ७ राम रासो, ८ जगदबा बावनी, ६ शनिश्चर छन्द।

(३८) लवखोजी, पाबू रासो।

(३६) माधोदास दधवाडिया, १ राम रासो, २ भासा दसम स्कन्ध ६ गजमोख।

(४०) नरहरिदास, वि० स० १६४८ —

१ अवतार चरित, २ दशमस्कध, ३ रामचरित, ४ अहल्या प्रसग, ५ अमरसिंह रा दूहा।

(४१) मसकीनदास, वि० स० १६५०, वाणी।

(४२) टीलाजी, वि० स० १६५०, वाणी।

(४३) प्रयागदास वि० स० १६५० वाणी

(४४) मोहनदास, १६५०, १ आदिग्राध, २ साधमहिमा और ३ नाममाला ।

(४५) जैमल जोगी, वि० स० १६५०, वाणी ।

(४६) जैमल चौहाण, वि० स० १६५० —
१ वाणी, २ गुणगजनामा, ३ गीतसार और योगवाशिष्ठ सार ।

(४७) परशुराम देव, वि० स० १६७७ —
१ विप्रबतासी, २ परशुराम सागर ३ साखी का जोडा, ४ छंद का जोडा,
५ सवैया रास अवतार, ६ रघुनाथ चरित, ७ सिंगार सुदामा चरित
८ द्रोपदी का जोडा, ६ छप्पय गज ग्राह का, १० श्रीकृष्ण चरित
११, प्रहलाद चरित, १२ अमरबोध लीला, १३ नामनिधि लीला,
१४ शोच निषेध लीला, १५ नाथ लीला १६ निजरूप लीला
१७ श्री हरी लीला, १८ नद लीला, १६ नक्षत्र लीला, २० निर्वाण लीला,
२१ तिथि लीला, २२ श्री बावनी लीला ।

(४८) दयाल दास वि० स १६८० राणा रासो ।

(४६) नारायण बैरागी, वि० स० १६८२ ।

(५०) केहरी वि० स० १६८८ १७१०, रसिक विलास ।

(५१) हेम सामार, वि० स० १६८५ गुण भाषा चरित्र ।

(५२) कल्याण दास महडू, वि० स० १६८५, राव रतन री वेलि ।

(५३) सुमतिहस, वि० स० १६६१, विनोदास ।

(५४) हरिदास भाट, वि० स० १७००, १ अजीतसिंह चरित, २ अमर बत्तीसी ।

(५५) दीनदयाल वि० स० १७०० छद प्रकाश ।

(५६) लब्धोदय वि० स० १७०६ ७, पद्मिनी चरित्र ।

(५७) किसन कवि, वि० स० १७०८, उपदेश बावनी ।

(५८) रामकवि वि० स० १७१०, जयसिंह चरित्र ।

(५६) साईदास चारण, वि० स० १७०६, समतसार ।

(६०) श्रीधर वि० स० १६१०, भवानी छद ।

(६१) जग्गो, वि० स० १७१५, वचनिका राठौर रतनसिंह जी महेसदासात री ।

(६२) किशोरदास, वि० स० १७१८, राजप्रकाश ।

(६३) गिरधर आसिया वि० स० १७२०, सगतरासो ।

(६४) नरहरिदास १ अवतारचरित्र, और २ अमरसिंह जी रा दूहा ।

---

(६५) जय सोम, बारह भावना वलि।

(६६) धर्मवर्द्धन, श्रेणिक चौपाई।

(६७) लघराज, १ देवविलास, २ कालिका जी रा दूहा, ३ पाबूजी रा दूहा, ४ प्रबोध माला, ५ देव विलास, ६ लघमल सतक दूहा, ७ रुक्मागद चरित ८ सीख बत्तीसी, ९ भजन पच्चीसी, १० महादेवजी री नीसाणी और ११ गणेशजी री नीसाणी।

(६८) जगादास, वि० सं० १७२१, हरिपिंगल प्रबन्ध।

(६९) उपाध्याय लाभवधन, वि० सं० १७२३ १ विक्रम ९०० कन्या चौपाई, वि० सं० १७२८ २ लीलावती रास, वि० सं० १७३१, ३ विक्रम पंचदंड चौपाई वि० सं० १७४२, ४ धमबुद्धि पापबुद्धि रास, वि० सं० १७६३, ५ नीसाणी महाराज अजीतसींघरी वि० सं० १७६७, ६ पांडव चरित चौपाई, वि० सं० १७७०, ७ शकुन दीपिका चौपाई।

(७०) मतिसुन्दर, वि० सं० १७२४, विक्रम वेलि।

(७१) शतदास वि० सं० १७२५ १८०८, अणभैवाणी।

(७२) दौलतविजय, वि० सं० १७२५ ९० खुमाणरासो।

(७३) सूरविजय, वि० सं० १७२३, रत्नपाल रत्नावती रास।

(७४) कुम्भकरण, वि० सं० १७२३, १ रतन रासो २ जयचन्द रासो।

(७५) मान जती, राजविलास।

(७६) वृन्द वचनिका आदि।

(७७) रूपजी, वि० सं० १७३७, रसरूप।

(७८) अजीतसिंह, वि० सं० १७३५, १ गुणसागर, और २ भावविरही।

(७९) कीर्तिसुन्दर, १ वाग्विलास, २ माकडराम, ३ अभयकुमारादि, ४ ज्ञान छत्तीसी ५ कौतुक पच्चीसी ६ साधुरास, ७ चौबोली चौपाई, ८ अवंति सकुमार चौढलिया।

(८०) हरिनाम, वि० सं० १७४०–१७५०, केसरीसिंह समर।

(८१) वीरभाण चारण, वि० सं० १७४५–९२, राजरूपक।

(८२) वल्लभ, वि० सं० १७५०, १ वल्लभ विलास और २ वल्लभ मुक्तावली।

(८३) शिवराम वि० सं० १७५०, दसकुमार प्रबन्ध।

(८४) मुरली, वि० सं० १७५५–६३, १ अश्वमेघ कथा, और २ त्रिया विनोद।

(८५) हमीरदान रतनू वि० सं० १७७४ १ हमीर नाम माला २ लखपत पिंगल, ३ पिंगल प्रकास ४ जदुवंस वसावली, ५ देसलजी री वचनिका, ६ जोतिस

जडाव, ७ ब्रह्माण्ड पुराण, ८ भागवत दपरण, ९ भरतरी सतक, १० चाणक्य नीति और ११ महाभारत रा अनुवाद छोटो व बडो।

(८६) द्वारकादास, स० १७७२ अजीत सिंहरो दवावैत।

(८७) करणीदान, वि०स० १७८७ १ सूरजप्रकास और २ विडद सिणगार।

(८८) खेतसी सादू, भापा भारत।

(८९) पीरदान लालस, अनेक रचनाएं।

(९०) पहाड़खान आढा, गोगादे रूपक।

(९१) अमरसिंह, वि० स० १८१७ रसिक चमन।

(९२) बहादुरसिंह, महाराजा किशनगढ रावत प्रतापसिंघ म्हाकमसिंघ हरीसिंघोत री वात, ख्याल।

(९३) ब्रह्मदास, भगतमाल।

(९४) मछाराम, १८३०-९२ —
 १ रघुनाथ रूपक गीता रा और २ फलजी फलमती री वार्ता।

(९५) मोती चन्द, वि० स० १८३६-४५ —
 १ बुढलारी ढाला और २ बुढया रासो।

(९६) गणेश चतुर्वेदी वि स० १८४० —
 १ रस चन्द्रोदय, २ कृष्ण भक्ति चन्द्रिका नाटक ३ सभापव, ४ शतक, और ५ फागुन माहात्म्य।

(९७) ओपाजी आढा, वि० स० १८४०-७५।

(९८) हुकमीचद खिडिया, जयपुर महाराजा प्रतापसिंह जी री झमाल।

(९९) कृपाराम बालकनेची माता नाटक, राजिया रा दूहा।

(१००) दयालदास करुणा सागर।

(१०१) चण्डीदास, वि०स० १८४९-९२ —
 १ सार सागर, २ वलि विग्रह ३ वशाभरण, ४ तीज तरग और ५ बिरुद प्रकास।

(१०२) रामदान लालस,
 १ भीम प्रकास २ करणी रूपक और ३ खीचिया रो इतिहास।

(१०३) हरि, वि०स० १८५४, कवाट सरवहिया री वात।

(१०४) साईदानजी, साईदान के रखते।

(१०५) नवलदान लालस आबू वर्णन।

(१०६) उदयराम, कविकुल वाघ।

(१०७) किसनाजी आढा, १ रघुवर जस प्रकास और २ भीम विलास।

(१०८) मनराखन वि० स० १८६१ छदोनिधि पिंगल।

(१०९) मुनि गुणचद, वि० स० १९७०, वैराग्य शतक।

(११०) रायसिंह सादू, मोतिया के दूहे।

(१११) राव बख्तावर वि० स० १८७० - १९०६ १ मेहर प्रकाश, २ रमापति, ३ स्वरूपयश प्रकाश, ४ शम्भूयश प्रकाश, ५ सज्जनयश प्रकाश, ६ फतह यश प्रकाश, ७ सज्जनचित्र चंद्रिका, ८ मचार्णव ९ श्रयोक्तिप्रकाश, १० सामन्तयश प्रकाश, ११ राग रागनियो की पुस्तक और १२ वेल महाराणा शम्भूसिंहजी री।

(११२) स्वामी गणेशपुरी, वि स० १८६३, वीर विनोद।

(११३) प्रतापकुवरी बाई, वि० स० १९००, १, ज्ञानसागर, २ ज्ञान प्रकाश, ३ प्रताप पच्चीसी, ४ प्रेम सागर ५ रामचन्द्रनाम महिमा ■ रामगुण सागर ७ रघुवर स्नेह लीला ८ रामप्रेमसुख सागर ९ राममुजस पच्चीसी, १० रघुनाथ के कवित ११ भजन पद हरजस, १२ प्रताप विनय, १३ श्री रामचन्द्र विनय, १४ हरिजस।

(११४) गुलाबजी, वि० स० १९००, १ रुद्राष्टक, २ रामाष्टक, ३ गंगाष्टक, ४ बालाष्टक, ५ पावन पच्चीसी, ६ प्रण पच्चीसी ७ रस पचीसी, ८ समस्या पचीसी ९ गुलाब कोष १० नामचन्द्रिका, ११ नामसिंधुकोष, १२ व्यग्यार्थ चन्द्रिका १३ ललित कौमुदि, १४ नीति सिंधु, १५ नीति मजरी, १६ नीति चन्द्र, १७ काव्य नियम, १८ कविता भूषण १९ चिन्ता तत्र, २० मूर्खशतक, २१ ध्यानरूपसर्वात का कृष्ण चरित्र, २२ आदित्य हृदय, २३ कृष्ण लीला, २४ रामलीला २५ सुलोचना लीला, २६ विभीषण लीला, २७ दुर्गास्तुति, २८ लक्षण कौमुदी, २९ कृष्णचरित्र, ३०, शारदाष्टक, और ३१ रसपचीसी।

७ आधुनिक काल

क. प्रारंभिक परिचय

१८३२। भारतवर्ष म मुगल शासन की सत्ता क्षीण होने लगी तो भारतीय आधिपत्य क लिये इगलैण्ड की ईस्ट इडिया कम्पनी,' फ्रेंच व्यापारियो, पुर्तगालियो और मराठो मे प्रवल प्रतिस्पर्धा हुई। भारत म अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई और मराठा पिंडारियो तथा पठानो ने देश मे लूट-मार करना प्रारम्भ किया। मराठा शासक देश से विदेशियो का प्रभुत्व समाप्त करने क लिये अन्त तक प्रयत्नशील रहे किन्तु इनका बलात् चौथ वसूल करने की नीति के कारण देश के सभी राजाओ और जनता का सहयोग इन्हें नही मिल सका। देशी शासको मे व्याप्त पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और फूट का विदेशी

अंग्रेजों ने पूरा पूरा लाभ उठाया और धीरे धीरे व्यापार वृद्धि के साथ ही शासन सत्ता हथियाना प्रारम्भ किया।

१८४२। राजस्थान में उदयपुर, जोधपुर और जयपुर के राजाओं ने शांति सुरक्षा के लिये संधि की, किन्तु पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के कारण यह संधि स्थायी नहीं हो सकी। मराठा शासकों ने राजस्थानी राज्यों को पीड़ित कर धनहीन बना दिया और अधिक धन के लिये अनेक भागों से मालगुजारी को स्वयं वसूलना प्रारम्भ किया। ऐसे अवसर पर अंग्रेज शासकों ने राजस्थान के राजाओं से संधि प्रस्ताव किये। राजस्थानी राजाओं ने विवश होकर क्रमशः अंग्रेजी शासन के जुए में अपने मस्तक दे दिये। अंग्रेज शासक राजस्थानी जनता के स्वाधीनता प्रेम से परिचित हो चुके थे इसलिये जनता को दबाए रखने के लिये राजस्थान में राजाओं का अस्तित्व आवश्यक समझा गया। राजस्थानी राजाओं को पारस्परिक एकता स्थापित करने अथवा शक्ति सम्पन्न होने का अवसर न मिले इसकी पूरी सावधानी बरती गयी। अंग्रेज रेजीडेंट राज्य की आंतरिक गतिविधियों पर निरंतर ध्यान रखते और अधिकाधिक बाहरी अफसरों को नियुक्त कर मनमानी करते। राजस्थान के राजा धीरे धीरे अंग्रेज शासकों के हाथों की कठपुतलियां बनने लगे।

१८५२। स्वाधीनता प्रेमी राजस्थानी व्यक्ति ब्रिटिश शासन का निरंतर विरोध करते रहे। अंग्रेजों ने राजाओं की सहायता से इन विरोधों को तत्परता पूर्वक दबाए रखा। राजस्थानी जनता और कवियों का अंग्रेज विरोधी भावनाएं और क्रियाएं निरंतर व्यक्त होती रही।[1] संवत् १९१४ अर्थात सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान के राजा निष्क्रिय बने रहे किन्तु राजस्थान के अनेक जागीरदार और जनप्रतिनिधि इस अवसर पर प्रबल संघर्ष के लिये प्रस्तुत हुए। आउवा के ठाकुर कुशालसिंह, किशनसिंह मेड़तिया, कोठारिया रावतजी और कोटा के जागीरदारों तथा राजकर्मचारियों ने अंग्रेजी शासन समाप्त कर देने के लिए सशस्त्र क्रांति की और अंग्रेज शासक जन, धन की अपार हानि सहन कर बड़ी कठिनाई से स्थिति को नियंत्रित कर सके।

१८६२। ब्रिटिश शासन काल में युरोपीय महायुद्धों में राजस्थानी सैनिकों ने संसार के अन्य सैनिकों की समानता में लड़ते हुए अपूर्व वीरता प्रकट की। इन विश्वयुद्धों के परिणाम स्वरूप जन समाज की विचार धारा भी परिवर्तित होने लगी। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन और स्वाधीनता संघर्ष के फलस्वरूप देश की स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण से राजस्थान की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति पूर्णरूपेण परिवर्तित हो गई।

---

1 — क — गोरा हट जा नामक साहित्य संग्रह, सं० श्री नारायणसिंह भाटी रा०शो०सं०, चौपासनी, जोधपुर।

ख — कांट्रीब्यूशन आफ राजस्थान इन दी स्ट्रगल फार फ्रीडम मूवमेंट, श्री नाथूराम खड़गावत, केन्द्रीय राज्य पुरालय, जयपुर।

१८७ २। इस प्रकार राजस्थानी साहित्य पर आधुनिकता का प्रभाव मुख्यत इन राजनतिक और ऐतिहासिक घटनाओ द्वारा होता है —

(१) वि०स० १६१४ (१८५७ई०) का स्वाधीनता सग्राम
(२) भारत म ब्रिटिश शासन का सुदृढ होना,
(३) युरोपीय महायुद्ध,
(४) महात्मा गाधी के निर्देशन म असहयोग आदोलन,
(५) सन् १६४७ ई० म भारतीय स्वाधीनता का उदय,
(६) राजस्थान का एकीकरण और जनप्रतिनिधियो द्वारा नव निर्माण एव विकास कार्यो का प्रारम्भ होना, और
(७) भारत पर विदेशियो के आक्रमण।

१८८ २। राजस्थान अनेक रूपो मे प्राचीन परम्पराओ का प्रेमी आधुनिक काल म भी बना रहा है अतएव आधुनिकता म प्रभावित होते हुए भी अनेक प्राचीन साहित्यिक परम्पराए राजस्थान मे प्रचलित रही हैं। राजस्थान म पश्चिमी शैली से प्रभावित रचनाओ क साथ ही प्राचीन शैली के दूहे और गीत आज तक रचे जाते है। साहित्यिक क्षेत्र म नवीन उपासना के साथ ही महाराणा प्रताप, पदमनी और हाडी रानी जसे चरित्र प्रिय रहे हैं। स्वाधीनता सघर्ष सम्बन्धी घटनाओ म युक्त राजस्थान का इतिहास स्वाधीनता प्राप्ति म ही नही, स्वाधीनता की सुरक्षा मे भी हमारे लिए प्रेरक बना हुआ है।

१८६ २। आधुनिक काल म राजस्थानी साहित्य मुख्यत तीन रूपो म प्राप्त होता है —

(१) पद्य साहित्य,
(२) गद्य साहित्य और
(३) लोक साहित्य।

पद्य और गद्य दोनो रूपो म प्राचीन और नवीन शैलिया वर्तमान हैं। विषय और रचना शैली की दृष्टि से आधुनिक राजस्थानी साहित्य मे प्राचीनता और नवीनता का समन्वय एक विशेषता है। जनता मे मौखिक रूप मे प्राप्त होने वाला लोक साहित्य आधुनिकता से प्रभावित है और नवीन राजस्थानी पद्य एव गद्य के लिए एक आधार बना हुआ है।

अनेक राजस्थानी कवि लोक गीतो की शैली में अपने गीत लिखते हैं और ऐसे गीत जनता में विशेष प्रिय होते है। सव श्री गजानन वर्मा [1] मेघराज मुकुल [2] रेवतदान चारण [3] और कल्याणसिंह राजावत [4] आदि क राजस्थानी गीत जनता में विशेष रुचि स सुने जाते हैं।

१ — "सोनो निपजै रेत मे" और "बारहमासा" आदि गीत सग्रह।
२ — "उमग" (गीत सग्रह)।
३ — "चेत मानखा" (गीत सग्रह)।
४ — "रामतिया मत तोड" (गीत सग्रह)।

१६० २। राजस्थाना लोक कथाग्रा की शला मे प्रस्तुत नवीन कथाए भा निरन्तर लिखी जा रही है। श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत विजयदान देथा ग्रार परपालम लाल मनारिया की कथाए उक्त शला की कथाग्रा म प्रमुख है। लाक साहित्य जनता का अपना साहित्य है, जिसका निर्माण, विकास और परिमाजन जनता द्वारा मौखिक परम्परा मे होता है। हमारी ग्रनक प्राचीन साहित्यिक रचनाए भी लाक साहित्य क ग्राधार पर रचित होकर जन जन क कण्ठा म विराजमान रही हैं। लोक-साहित्य हमारा विभिन्न साहित्यिक विधाग्रो क लिये मु यत भाषा शला की दृष्टि म ग्राधार भूमि प्रस्तुत करता है ग्रौर हमारा अधिकाश जनता लोक साहित्य से हा प्ररित हाता है इसलिये लाक साहित्य को ग्राधुनिक काल म उपेक्षित नहा किया जा सकता।

ग्राधुनिक राजस्थानी साहित्य म पश्चिमी शैली का रचनाए भी निरन्तर सामने ग्रा रहा हैं। पश्चिम मे शली का ग्रौर शली की मौलिकता का विशेष महत्व दिया गया है। ऐसा ग्रवस्था म लोक प्रचलित प्राचीन परम्पराग्रा की सर्वथा उपक्षा कर पश्चिमी शलिया का ग्रन्धानुकरण साहित्य जगत क लिये हितकर नहा कहा जा सकता। राजस्थानी साहित्य रूपा की मौलिक विशषताए है ग्रौर इनका जडें जन मानस मे गहराई तक पहुची हुई हैं इसलिये साहित्यिक रचना विधान म इनकी उपक्षा नही की जा सकती।

ख आधुनिक काल के कतिपय प्रधान कवि —

(१) महाकवि सूर्यमल

१६१ २। सन् १८५७ क स्वाधीनता सघर्ष म प्रभावित होकर जिन राजस्थानी कविया ने ग्रपना रचनाग्रा से स्वाधीनता प्रमी वीरो को प्ररित किया उनमे महाकवि सूयमल मिश्रण प्रमुख हैं। सूर्यमल ने चारणोचित स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य प्रेम, बहुमुखी प्रतिभा ग्रौर ग्रोजमयी वाणी से निष्क्रिय राजपूत राजाग्रा का प्रताडित कर राजस्थानी जन शक्ति का स्वाधीनता-सग्राम के लिए प्ररित करन का सुप्रयत्न किया। सूयमल का जन्म कार्तिक कृष्णा १ सवत् १८७२ मे हुग्रा। सूर्यमल बून्दी क राज्य-कवि थे किन्तु बाहर के ग्रनेक राजा ग्रौर जागीरदार भी इनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर इनके स्वागत-सम्मान का ग्रपना महाभाग्य मानते थे। सूयमल ने सन् १८५७ के स्वाधीनता सग्राम मे रुचि लेत हुए वीर-सतसई का निमाण प्रारम्भ किया। स्वाधीनता सग्राम के प्रति राजस्थानी राजाग्रो का उदासीनता दखकर इन्होन पीपली क ठाकुर फूलसिंह जी का पौष शुक्ला प्रतिपदा सवत् १६१४ क पत्र म लिखा —

'ग्रर ये राजा लोग ता दसरानि जमी का ठाकर छै जे म रा हिमालय का गल्या ही नीसरया मो चालीस सा लर साठ मत्तर बरस ताई पाछै पटक्या छै तो भी गुलामी करे छै परन्तु या म्हारो वचन राख्य याद राखोगा कि जे ग्रवकै (ग्रग्रेज) रह्या तो इणा गायो ही पूरो करसी। जमी को ठाकर कोई भी न

रहमो। मब ईसाइ हो जामो। तोसा दूरदसी विचारे तो फायदो कोई के भी नहीं परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारे और राज्य जसो सुहृत म्हारे होय तो बडाई तरीके लिखी जाय तीमू थोडा म बहुत जाण लसी। विशेषु अलमिति पौष शुक्ला प्रतिपदा १ उयजुर्वेदाङ्क भू १६१४ मित नरेन्द्र विक्रमार्क शक मवलया लिपिरियम्।''[1]

१८४२। स्वाधीनता सग्राम म महाकवि सूयमल अपने साथियो सहित स्वय भाग लेने क लिए तैयार हुए और इस विषय म उ होने नाथनी ठाकुर बख्तावरसिंह जी को अपने चैत्र शुक्ला नवमी वि०स० १९१५ के पत्र मे लिखा —

'म्लच्छा का इरादो ग्रस्यो दीसे छ कि ग्रबके रह्या तो इ आर्यावत हैं परत म करि हा दसो ग्रर ठिकाणो काई भी हिदू के न रहसी परन्तु परमेस्वर की इच्छा आर्य न राखवा की दीसे छे क्योकि अवार क्षत्रिया ने प्रतिकूल बाता छे ज सब अनुकूल दीम रही छै तीसा भावी विपरीत ही जाण्यो पडे छे और अठी का तरफ को वतमान जाणसी कि इ गरेज की फौज अजमेर सू कोट लडाई पर आई छे। गोरा तो सौनामे छ ग्रर काला हजार च्यार क अनुमान छे परन्तु मन म बदल्या हुवा दीसे छे और ऊट आठ हजार के अनुमान छे और छकडा, किराच्या पेट्या बगैरे हजार आठ से के अनुमान छ बडी तोपा च्यारि छै छोटी तोपा तथा शुबारा असी के अनुमान छ सो चैत सुदी छठ क दिन चामल सो दोई कोस ग्रोली तरफ जाय पडी छे ग्रब होसी सो जाणी जावसी।''[2]

१६१२। महाकवि सूयमल रा का य कृतिया इस प्रकार हैं —

१ वश भास्कर, २ वीर सतसई (अपूण) ३ बलव त विलास, ४ छदो मयूख, ५ बलवद्विलास, ६ रामरजाट ७ सती रासो, ८ धातु रूपावली और ९ फुटकर छद।

इन कृतिया मे वश भास्कर और वीर-सतसइ मुख्य हैं। वश भास्कर में राजस्थान का और मुख्यत बूदी का इतिहास का यबद्ध किया गया है। कवि ने चारणोचित स्वाभिमान के साथ निष्पक्ष रहते हुए वश भास्कर की रचना की इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है।

---

१ – वीर सतसई, स० डा० क हैयालाल सहल पतराम गौड और ठा० ईश्वरदान आशिया, बगाल हिदी मण्डल ८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता। भूमिका पृ० ७६।

२ – वही, पृ० ७६।

१६४ २। वीर सतसई अपने युग की प्रतिनिधि रचना है। ब्रिटिश शासन काल में वीर सतसई का पुस्तक रूप में प्रकाशन नहीं हो सका किन्तु इसके दोहे राजस्थानी जनता में चाव-पूर्वक कहे और सुने जाने लगे। सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम के वातावरण में वीर सतसई की रचना हुई। इस स्वाधीनता संग्राम के शीघ्र ही स्थगित हो जाने से ही सम्भवतः सूर्यमल की वीर सतसई पूर्ण नहीं हो सकी। वीर सतसई के व्यंग्य आलंकारिक चमत्कारों के साथ ही कवि-कल्पना की अनूठी उड़ान और सरल सरस राजस्थानी भाषा की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है।

१६५ २। राजस्थान के गौरवमयी इतिहास में सतियों का विशेष स्थान है और हमारे कवि ने भी सतियों के गुणगान में किसी प्रकार कमी नहीं की है। सती होने के लिये उत्सुक वीरांगना के लिए महाकवि ने अनेक दूहों में अपने हृदयोद्गार प्रकट किये हैं। वीर सतसई के उदाहरण इस प्रकार हैं —

नायण आज न माड पग, काल सुणीजे जग।
धारा लागीजे धणी, तो दीजे धण रग ॥
हूँ पाछे आगई हुवे, आणी नाह घरेह।
ज वाली धण जीवऊ, आगे सूझ करेह ॥
काळी चूड़ो की तजे, मगळ वेळा रोय।
रावत जाई डीकरी, सती सुहागण होय ॥
आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय।
बहू बळेवा हुळसे, पूत मरेवा जाय ॥
बाला चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरता ढील की ऊठ थियो घमसाण ॥
और जहर मुख आविया भट भेज परधाम।
अतरो अतर सूझ म, मार पडिया काम ॥
भोळा की डर भागियो, अत न पोढे एण।
बीजो दीठा कुळ बहू, नाचा करसी नेण ॥
पूत महा दुख पावियो, वय खावण थण पाय।
एम न आण्या आरही, जामण दूध लजाय ॥
हूँ बलिहारी राणिया भ्रूण सिखावण भाव।
नाळो बाढण रो छुरी झपटे जणियो साव ॥
मन सोचे जाणे मनी, माने बाळक माय।
वेर पराया बाहुडे जठे न घर रा जाय ॥[1]

---

[1] — वीर सतसई, स० डा० कन्हैयालाल सहल प्रो० पतराम गौड और डा० ईश्वरीदान आसिया, बगाल हिन्दी मण्डल, ८ रायल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता।

सूर्यमल ने अनेक गीतों की रचना की। इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

दगो विचारै फेरियो अगरेजां लोगां चौगड्हो,
तासा ववी फडदा लडियो नाग ताय।
भाळ धाचो फेरिया ऊेह री हूत छायो भाण
बाघलो केहरो चैन घरिया बनाय ॥१॥

मावै खाग भाटा राचै तवाई छ खडा माय
रत्रा आट पाटा नदी वहाई रोमाग।
पाय थाटा जग रूपो कुवाणा नवाई पाणा,
सनाटा बेढियो थाटा सवाई सौभाग ॥२॥

सुणे घार तासा आममाण लागियो सीस,
सना घू चैन रो खाग बागियो समूल।
कोपै 'हूण' आसुरा विभाडवा आगियो किना
सिन्दुर पाटेबा मूतो जागियो सादूळ ॥३॥

देवता एट्वो जग घडक्के आगरो दिल्ली,
ववी जैत माग रा रडक्कै वारवार।
भन्वकै त्याग रा बाढ भडक्के कायरा झुण्ड,
हुमल्ला नाग रा माथा रडक्के हजार ॥४॥[1]

१६६ २। स्वाधीनता सग्राम के असफल हो जाने स और उसके प्रति क्षत्रिय नरेशो की उदासीनता से सूर्यमल जी उदास रहने लगे। इनका देहान्त वि०स० १९२० में हुआ।

(२) चारण कवि केसरीसिंहजी

१६७ २। चारण कवि केसरीसिंह जी बारहठ (स १९२६ १९९८) राजस्थान मे क्रान्तिकारी दल के नेता थे जिन्होने मातृभूमि की सेवा म अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। इनके पुत्र प्रतापसिंह को भी ब्रिटिश शासन की कोपाग्नि का शिकार होना पडा। केसरीसिंह जी ने उदयपुर के महाराणा फतहसिंह को "चेतावणी रा चूगट्या" के रूप में राजस्थानी दोहे लिख कर सन् १९१२ के प्रसिद्ध दिल्ली - दरबार में जाने से रोक दिया था —

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, स० श्री सीताराम लालस, रा० शो० स०, जोधपुर, पृ० १०७।

कणो सोम पै गाम रूसावै भणो नीम कमठाणो।
ई तो पवन पूरप रा मेळा 'चातुर' मेल पिछाणो ॥ ४ ॥[1]

(४) नाथदानजी महियारिया (जन्म सं० १९४८, वर्तमान)

२०१२। कविवर नाथूदान जी महियारिया का जन्म चारणों की महियारिया शाखा में हुआ। इनकी रचित अनेक काव्यमय रचनाएँ हैं जिनमें वीर सतसई मुख्य है। वीर सतसई में राजस्थान वीरांगनाओं के मनोभाव सजीव रूप में चित्रित किये गये हैं।[2] वर्तमान में वीर रस निरूपण करने वाले कवियों में नाथूदान जी अग्रणी हैं। इनके दोहों के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

रण कर कर रज रज रगे रवि ढकै रज हूत।
रज जेता धर नह दियै रज रज व्है रजपूत ॥ १ ॥

भड बाका वाको खगा, बाको हाथ कबाण।
निहुँ आरा आगळ रहै, जग सूबा सब जाण ॥ २ ॥

देख सखी मोटा गरब गाळा री भडियाह।
काय न बावै कायरी भट री भू पडियाह ॥ ३ ॥

सुत मरिया हित देस रै, हरख्या बन्धु समाज।
मा नह हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ॥ ४ ॥

सुत आया घावा सहित, अजस घायो माय।
पय पाया घोळै वरण, रातो वरण दिखाय ॥ ५ ॥

धव आयो घावा वहै, घावा रकत अतोल।
मग बळिया ही चूकसी पग मडणा रो मोल ॥ ६ ॥

चन्द उजाळै एक पख बीजै पख अंधियार।
बळ दुहूँ पक्ख उजाळिया चन्दमुखी बळिहार ॥ ७ ॥

पिव कमरिया पट किया हू केसरिया चीर।
नाहक लाया चूनडी बळतो वेळा वीर ॥ ८ ॥

पडिया आडे बाप रे पाग कसूमल सेस।
बेटो घर आयो नहीं घोळी बाभण हत ॥ ९ ॥

सग ता अरिया सोम ता पिव घर आया आज।
जिण खूटी सग टागता उण पर टागो लाज ॥ १० ॥

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया पृ० २५६।

२ कविवर नाथूदानजी महियारिया, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थानी साहित्य, राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका १९४२ ई० वर्ष १, अंक २।

ग कतिपय अन्य उल्लेखनीय कवि

२०२२। आधुनिक राजस्थानी काव्य को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है— (१) परम्परागत शैली का आधुनिक राजस्थानी काव्य और (२) नवीन शैली का राजस्थानी काव्य। परम्परागत शैली के राजस्थानी काव्य में वीरता भक्ति और शृंगार आदि विषयों में दोहे और गीत आदि लिखे जाते हैं। परम्परागत शैली में लिखने वाले कवि मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रेमी राजपूत चारणादि हैं। ऐसे कवियों की संख्या बड़ी है जो गावों में निवास करते हुए स्वांतः सुखाय अथवा मनरंजन हेतु परम्परागत शैली में राजस्थानी काव्यात्मक रचनाएं प्रस्तुत करते हैं। ऐसे कवियों में परम्परागत काव्य शास्त्रीय ज्ञान की कमी नहीं है। इन कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक नाना प्रकार के काव्य लिखे हैं। मुक्तक लेखकों में चारण गीत लिखने वाले कवि भी हैं, जिन्होंने अनेक प्रकार के गीतों की रचनाएं काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार सफलतापूर्वक की हैं। प्राचीन परम्परा के कवियों में— हिंगलाजदान कविया उदयराज उज्जवल[1], रावल नरेन्द्रसिंह[2] चण्डीदान पादूदान, जागोदान, रामनाथसिंह 'राही' रामसिंह सोलंकी, बलवंत सिंह, कान्हीदान, ठाकुर नाहरसिंह, (आऊवा) रविकरणसिंह राठौड़, अजयदान बारहठ, रामसिंह तंवर लक्ष्मणसिंह चापावत[3], जुहारदान (पाचोटिया) रणधीरसिंह बद्रीदान, बलदेवदान, हनुमन्तसिंह[4], राजा फतेहसिंह (आसोप) मुरारीदान, मावलदान आसिया, केसरीसिंह, नाथूदान (मालाणी), नारायणसिंह भाटी[5], मनोहर शर्मा[6], केसरीसिंह[7] नाथूराम[8], रेवतसिंह भाटी[9], सौभाग्यसिंह शेखावत[10], देवकरण बारहठ, मुकुन्दसिंह बीदावत[11], कविराव मोहनसिंह[12] श्रीमती मानकुंवरी राव, रिडमलसिंह (जान्हवी), कविया मानदान, कविया कल्याणदान, मुकुन्ददान (विरमी), शक्तिदान कविया, स्वरूपसिंह चूण्डावत आदि अनेक नाम उल्लेखनीय है।

१ – धूड़सार, मानिया रा दूहा, ऊजल सन्देश, राजस्थानी शतक।

२ – वीरपूजा सतसई।

३ – रसाल।

४ – बिरदियोड़ा गीत, सुरसत शतक।

५ – साफ मेघदूत, ओलु।

६ – अरावली की आत्मा, उमर खयाम, गीत कथा, मेघदूत।

७ – दुर्गादास।

८ – कलायण दसदेव, समय बावरी, बटोही ग्योहो।

९ – क्षत्रिय भजनावली, राम रहस्य, गोहिल गौरवप्रकाश, ओका चरित्र जयमल चरित्र, छत्रसाल दशक, चन्द्रसेन सतसई।

१० – रणरोल, मूंधा मोती, खाटू रा वेटा, वह चकवा बात।

११ – वेलि भाटी संतानसिंघ री।

१२ – मृगया बावनी, रामशतक, भूपाल पच्चीसी, जयमलोतां री नीसाणी, दुर्गा पाठ, दुर्गाबावनी आदि।

२०३२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों ने छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शैलियों में भी अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है। ऐसे कवियों ने अपनी रचनाओं में राजस्थानी प्रकृति का बहुविध रूप भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। अनेक कवियों ने संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी कविताओं के सफल राजस्थानी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किये हैं। इतिहास प्रेम और राष्ट्र प्रेम भी अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। नवीन शैली में अनेक राजस्थानी गीत भी इन कवियों ने लिखे, जिन्हें रुचिपूर्वक गाया और सुना जाता है।

२०४२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों में निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं —

मनोहर शर्मा[1], नारायणसिंह भाटी[2], भरत व्यास[3], श्रीमंत कुमार व्यास, नानुराम संस्कर्ता[4], चन्द्रसिंह[5], मदनराज मृकुल[6], कन्हैयालाल सेठिया[7], विश्वनाथ शर्मा विमलेश[8], मनोहर प्रभाकर[9], रेवतदान चारण[10], गणेशीलाल व्यास[11], गजानन वर्मा[12], गणपतिचन्द्र भण्डारी[13], रावत सारस्वत[14], गिरधार कल्पनाकांत[15], सीताराम महर्षि, ओम पण्ड्या[16], रामनिवास हारीत,

---

१ – गीत कथा, अनुवादित काव्य मेघदूत, अमर खय्याम, अन्योक्तिसतक, गीता और धम्मपद।

२ – दुर्गादास, परमवीर और मेघदूत (अनुवाद)।

३ – रजपूत, दिवाली, कट सुजान चवदस।

४ – बिवले री जोत, बादल, दसदेव, कलायण, सम बायरो, बटोही।

५ – गीत लू बादली, कहमुकरणी।

६ – माटी मुलकी बीज पसीज्या छिया तावडो चवरी, सेनाणी।

७ – रमणिय रा सोरठा मींझर।

८ – सत पकवानी देडलामी गीता।

९ – मेघदूत भरतरी सतक।

१० – चेत मानखा।

११ – मरुपवचत।

१२ – धरती रा गीत, सोनो नीपजे रेत मे, धरती री धुन और बारामासा।

१३ – रतदीप।

१४ – स्फुट गीत

१५ – अनुवादित— कुमार सम्भव ऋतुसहार धरती रा गीत।

१६ – हाम मु क्तर सोनो बोरलो।

कृष्णगोपाल कल्ला[१], मदनगोपाल शर्मा[२] मधुर मृदुल, मागीलाल व्यास[३], शान्तिलाल भारद्वाज[४], रामनाथ व्यास[५] रतनलाल दाधीच, सत्यप्रकाश जोशी[६], कल्याणसिंह राजावत[७], रामदेव आचार्य, भगवान सहाय त्रिवेदी, कमलाकर, नन्दकिशोर पारीक, श्रीमती राजलक्ष्मी, जगमोहनदास मूंदड़ा, गंगाप्रसाद शास्त्री, शम्भु शर्मा, इंदुबाला पुरी, गणपति स्वामी, केप्टिन मोतीसिंह, धोकलसिंह, सुमेरसिंह शेखावत[८] गंगाराम पथिक आज्ञाचंद भण्डारी, लक्ष्मणसिंह रसवंत, रघुनाथसिंह, भिक्षुदान, वृद्धिशंकर त्रिवेदी, अश्विनीकुमार चित्तौड़ा, बुद्धिप्रकाश गणपतलाल डांगी भगवतीलाल व्यास, ब्रजमोहन शर्मा आदि।

घ आधुनिक काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां

२०५ २। आधुनिक राजस्थानी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं —

(१) स्वाधीनता प्रेमी और अपनी मान मर्यादा की रक्षा हेतु मर मिटने वाले वीरों और वीरांगनाओं की गाथाएं युग के अनुसार नवीन रूप में प्रस्तुत करना आधुनिक काल की प्रधान प्रवृत्ति रही है। वीरों में महाराणा प्रताप, राजसिंह, अमरसिंह राठौड़, दुर्गादास राठौड़, सुजानसिंह शेखावत, पाबूजी राठौड़, बल्लूजी चांपावत, जगदेव पंवार, सांगो गौड़, ऊडणो पिरथीराज, सगमराय, मानसिंह झाला चूंडाजी भारत चीन युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले परमवीर शैतानसिंह और परम वीर पीरूसिंह महात्मा गांधी जवाहरलाल नेहरू, और सुभाषचन्द्र बोस आदि के उदात्त चरित्र आधुनिक कवियों के लिये विशेष आकर्षण रहे हैं। वीरांगनाओं में पद्मिनी, करुणावती, पन्ना धाय, हाडी रानी, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई आदि के चरित्र रुचिपूर्वक चित्रित किये गये हैं।

(२) पौराणिक देवी देवताओं में राम, कृष्ण, सीता, राधा, रुक्मिणी, हनुमान, दुर्गा शिव पार्वती और गणेश आदि के चरित्र लिखे गये हैं। राजस्थानी कवियों ने अनेक प्रसंगों में नवीन भावों का आरोपण भी पौराणिक चरित्रों में किया है।

---

१ – झाझरको।

२ – कुमारसंभव का अनुवाद।

३ – भरौं बावनी।

४ – स्फुट गीत

५ – हिवड़ै रा बोल, अनुवाद गीतांजलि।

६ – राधा, दीवा कांपे क्यूं।

७ – रामलिया मत तोड़।

८ – चांवली, बिरखा, देवल बकालो।

(३) वीर रस की सर्वागपूर्ण अभिव्यक्ति अनेक कविया मे लक्षित होती है। महाकवि सूयमल की परम्परा मे रचित नाथूदान महियारिया की वीर सतसई उक्त कथन का उत्तम उदाहरण है।

(४) मूमल और ढाला मरवण जैसे राजस्थानी प्रेमाख्यान भी हमारे कविया को आकर्षित करते रहे हैं।

(५) प्रकृति वर्णन सम्बन्धी रचनाओ में आधुनिक राजस्थानी कवियो ने वर्षा, बादल बिजली, तारो छाई रात श्रावण की साझ आदि के साथ ही सूखि स्तृत मरुस्थलीय टीबा, कडकती गर्मी लू, ठडी हवाओ आदि का भी सजीव वर्णन किया गया है। वनस्पतियो म खेजडा, बम्बूल, नाम आदि के वर्णन विशेष मनोरम हुए हैं। प्रकृति वर्णन करत समय कविया ने राजस्थान के पहाडो जलाशयो और खाना का भी नहीं भुलाया है।

(६) गीत लेखको ने अपनी नवीनतम भावनाओ को अभिव्यक्ति लोकप्रचलित गीत शैलियो म सफलता पूवक की है। अनेक गीत शास्त्रीय राग रागनियो मे भी गेय हैं।

(७) साम्यवाद मे प्रभावित काव्यात्मक रचनाओ को न्यूनता नहीं है। इन रचनाओ म कृषको, मजदूरो और अन्य शोषित वर्गों का पक्ष समथन सशक्त वाणी में किया गया है।

(८) पद्यानुवादो म सस्कृत अग्रेजी, और हिन्दी रचनाओ के साथ ही बगला रचनाओ के अनुवाद हुए हैं। उमर खैय्याम की रुबाईयो ने भी राजस्थानी कविया को पद्यानुवाद की ओर प्रेरित किया है।

(९) प्रबन्ध काव्यो की अपेक्षा मुक्तक रचनाओ की ओर आधुनिक कविया का विशेष ध्यान रहा है।

८ राजस्थानी गद्य साहित्य

२०६ २। राजस्थानी गद्य १३वी शताब्दी मे आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप म उपलब्ध होता है। अनेक भारतीय भाषाओ म प्राचीन गद्य का अभाव है किन्तु राजस्थानी म प्राचीन गद्य के विविध रूप प्रचुर मात्रा म मिलते हैं।

२०७ २। प्राचीन राजस्थानी गद्य के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं —

(क) धार्मिक गद्य,

(ख) ऐतिहासिक गद्य

(ग) मनोरंजनात्मक गद्य,

(घ) अभिलेखों का गद्य,

(ङ) व्याकरण, वैद्यक ज्योतिष आदि विषयक गद्य।

क धार्मिक गद्य

२०८२। प्राचीन राजस्थानी धार्मिक गद्य मुख्यत (अ) जैनियों और (आ) ब्राह्मणों द्वारा रचित है।

(अ) जैन गद्य के रूप

२०९२। (१) टीका। जैन टीकायें टब्बा और बालावबोध के रूप में लिखी गई हैं। टब्बा के अन्तर्गत मूल पाठ पत्र के मध्य में लिखा गया है और उसकी विविध टीकाओं के रूप में टब्बा हाशिये पर लिखा जाता है। टब्बा का रूप बहुत संक्षिप्त होता है। टब्बा का उदाहरण इस प्रकार है —

"जेहे परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामिउ। दुर्लभ मुक्ति रूप लाभ छई जेहनई। जेहे सरभ पदाथ नु आरोप मु कयउ। त्रिभुवन रूप घर धरिवा स्तंभ समान। ते सिद्ध शरणि हूजे ह आरम्भ छांडिया। इम सिद्धनइ शरणि करो। याय सहित ज्ञान नू कारण।"[1]

२१०२। (२) बालावबोध प्रकार की टीका विस्तृत और सुबोध होती है। मूल पाठ का विवेचन प्रसंगानुकूल विविध दृष्टान्तों सहित विस्तार से होता है। बालावबोध का एक उदाहरण इस प्रकार है —

महापुर नगर। भोज राजा। लक्ष्मण श्रेष्ठि। तेहनइ नंदा बेटी श्राविका। बाप वर चिंता करइ। तिसइ बेटी कहइ। जोनिइ दीवइ काजल नहीं, कालिकि न हुइ, जिहा दसा वाटि प्रूटइ ज सदैव स्थिर हुई जिहा चोपड प्रूटइ नहीं एहवु दीवउ जेहनइ घरि सदा रहइ ते वर टाली बीजउ न परणउ। सेठि चिंता पडिउ।"[2]

२११२। (३) औक्तिक ग्रंथ — औक्तिक ग्रंथों में मुख्यत व्याकरण का विवेचन होता है। औक्तिक ग्रंथ का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ — संवेगदेव गणि रचित 'चउसरण पयन्ना टब्बा', ह० प्र० अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ — षडावश्यक बालावबोध (१६वीं शताब्दी), ह०प्र० अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

"करिस्यइ, लेसिइ देस्यइ इत्युच्चारे भविष्यत्काने भविष्यति परस्मै पद। करीसिइ, लोजिसइ इत्युच्चारे आत्मने पद ॥७॥"[1]

२१२२। (४) कथा ग्रंथ — जन साहित्यकारा ने अनेक गद्य कथाओं का निर्माण किया जिनमे धार्मिक सिद्धान्तो को जनता के लिए सरलतापूर्वक समझाया गया है। जन कथा का उदाहरण इस प्रकार है —

'तुरूमणि नगरोइ दत्त ब्राह्मणि महुन्तइ राज्य आपणइ वसि करी आणिलु जितशत्रु राजा काढी आपण पइ राज्य अधिष्ठिउ। घर्म नी बुद्धइ घणा याग यजिया। एक बार दत्त ना माउला श्री कालिकाचाय गुरुमाराज राजा भणो तीणइ नगरि आविया। मामउ मणीदत्त गुरु क हइ गिउ। भाग नु फल पूछवा लागु। गुरे कहिउ जीवदया लगइ धम हुइ।[2]

२१३२। चरित्र ग्रंथ — जैन लेखको ने चरित्र ग्रंथो मे अनेक तीर्थंकरो, महापुरुषो और सतियो आदि के चरित्र राजस्थानी गद्य मे प्रस्तुत किये है। सीता चरित्र का उदाहरण इस प्रकार है —

'इहैव भरत क्षेत्रे मिथिला नगरम्या नगरी रद्दिप्यमीए समृद्धा चउरासी चोहटा बहुत्तरि पावटा अनेक बावडी पुष्करणी कुआर तलाब महाद्रह खण्डोखली तिका सरया काई नही। अति ही मनोहर प्रधान इत्यादि सरोवरादि फल फूल पत्र कूपल लताये करि विराजमान वनखण्ड वृक्ष करि विराजते शोभते।"[3]

२१४२। (६) पट्टावली और गुर्वावली — जन लेखको ने पट्टावली और गुर्वावली के अन्तर्गत क्रमश अपनी पट्ट परम्परा और गुरु परम्परा का राजस्थानी गद्य में वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी रचनाओ का विशेष महत्व है। पट्टावली का उदाहरण —

"पवनदी सायक सिधु देशि अनेक अवदात कारक श्री जिनदत्त सूरि ■ १२११ आसाढि सुदि ११ अजयमेरु नगरि स्वग प्राप्त हुउ। स० १२०५ वर्षे जिनसेखर सूरि हूँति रद्रपल्लीय गच्छ हुयउ। श्री जिनदत्त सूरि नइ पाटि स० ११६३

---

१ — जय सागरोपाध्याय कृत उक्ति समुच्चय" (१७वी शताब्दी) ह०प्र० अभय जन ग्रंथालय बीकानेर।

२ — कालिकाचाय की कथा (स० १५६७ १८११ई०) डा० एल०पी तेस्सितोरी, नोटस आन ■ ओल्ड वेस्टन राजस्थानी इंडियन एन्टीक्वेरी (१६१४ से १६१६)।

३ — सीता चरित्र भाषा, श्री अगरचद नाहटा, मरुभारती मे प्रकाशित खोये पन्ने, ह०प्र० अभय जन ग्रंथालय बीकानेर।

भाद्रवा सुदि ८ जेहनउ जन्म रामल श्रावक देल्हणदेवी नउ पुत्र सं० १२०३ फागुण सुदि ६ दिने।"[1]

गुर्वावली का उदाहरण इस प्रकार है —

"जिनहंस सूरिनइ वारइ सं० १५६६ श्री शांति सागराचार्य थकी आचार्या गच्छ जुअउ थयउ। तेहनेइ पाटि श्री जिनमाणिक्य सूरि सं० १५८२ भाद्रवा सुदि ६ बलाही देवराज कारित नदी महोत्सवइ। श्री जिनहंस सूरइ आपणइ हाथि थाप्या।"[2]

२१५ २।(७) सीख ग्रंथ — जैन लेखकों ने अनेक गद्य ग्रंथ धार्मिक शिक्षा प्रचार की दृष्टि से लिखे। ऐसे ग्रंथों में धार्मिक नियमों का विस्तृत वर्णन है। उदाहरण —

'कोइनी निंदा करवी नहिं। कोइनुं मर्म प्रकाशवुं नहिं। कोइ साथे ईर्ष्या करवी नहिं। सव साथे मित्र भाव राखवोजी। कोई साथे शत्रु भाव राखवो नहिं। सदाय लज्जावंत रहेवुं जी। कदापि निलज्जता धारण करवी नहिं।"[3]

२१६ २।(८) विज्ञप्ति पत्र, नियम पत्र और समाचारी आदि — जैन लेखकों ने साधु साध्वियों और श्रावकों आदि के लिए विभिन्न विषयक व्यवहार सम्बन्धी नियम पत्रों में लिखे हैं। नियम पत्र का उदाहरण इस प्रकार है —

"साधु साध्वीनइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भिन्न भिन्न श्रावकनइ न कहणा, यथायोग्य ते संघनइ कहणा, श्री संघइ यथा योग्य चिंता करणी।"[4]

समाचारी का उदाहरण इस प्रकार है —

"घनागरा माहि घाणा सूठ हरडइ दाख खारक ए सहु एक द्रव्य। परेद्रव्य पचखाण ना धणी जुदा २ न खाइ एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य।"

विज्ञप्ति पत्रों में विभिन्न नगरों के श्रावकों की ओर से आचार्यों की सेवा में चातुर्मास, निवास आदि के लिए निवेदन किए गये हैं। अनेक विज्ञप्तिपत्र सचित्र भी उपलब्ध होते हैं

---

१ — खरतर गच्छ पट्टावली, ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

२ — खरतर गच्छ गुर्वावली, ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

३ — हित शिक्षा विषे छुटा बोल श्रीमत्पाइवचंदप्रकरणमाला, भाग १, प्र०का० १६१३।

४ — क — युग प्रधान श्री जिनचंद्र सूरि, श्री अगरचन्द नाहटा, अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर, परिशिष्ट (क)।

ख — राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ३४१।

जिनमे सम्बन्धित नगरो के विभिन्न दृश्यो का चित्रण होता है।[1] विज्ञप्ति पत्र के गद्य का उदाहरण इस प्रकार है —

"सबो भट्टारकजी री पुज्य श्री श्री जिन भक्ति जी री छ्वे भगावत बणारसोजी श्री श्री न दलालजो पठनार्थ ॥द०॥ मथेन अरोराम जोगीदासोत श्री बीकानेर मध्ये चित्र राजुक्ते ॥श्री॥श्री॥"[2]

(आ) जनेतर धार्मिक गद्य —

२१७ २। जनेतर धार्मिक गद्य पौराणिक विषयो पर और ईसाई पादरियो द्वारा राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियो मेवाडी मारवाडी, बीकानेरी, ढू ढाडी, हाडौती तथा मालवी के अनुवादों के रूप मे उपलब्ध होता है।

गोरखपथी राजस्थानी गद्य का एक प्राचीन उदाहरण उपलब्ध होता है जिसको आचार्य रामच द्र शुक्ल ने लगभग १४वी शताब्दी का माना है —

"श्री गुरु परमान द तिनको दडवत है। हैं कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप है, सरीर जिन्हि का। जिन्ही के नित्य गाये ते सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हो गोरिख तो मछन्दरनाथ को दडवत करत हूँ। है कैसे वे मछन्दरनाथ। आत्मा ज्योति निस्चल है अन्त करण जिनको अरु मूल द्वार ते छह चक्र जिनि जाकी तरह जानै। अरु जुग काल कल्प इनकी रचना तत्व जिनि गायो। सुगध को समुद्र तिनि को मेरा दडवत। स्वामी तुमै तो सतगुरु अम्है तो सिख। शब्द एक पूछिबो दया करि कहिबो मनि न करिबो रोस।'[3]

रामायण महाभारत भागवतादि विविध पुराणो, व्रत माहात्म्य आदि के राजस्थानी गद्यानुवाद प्रचुर मात्रा मे हस्तलिखित ग्र थ सग्रहालयो मे प्राप्त होते हैं।

२१८ २। ऐतिहासिक गद्य निम्नलिखित रूपो मे मिलता है —

क ख्यातें — सीसोदिया री ख्यात राठाडा री ख्यात जाडेचा री ख्यात, कछावा री ख्यात, मुहणोत नैणसी री ख्यात, बाकीदास री ख्यात महाराजा मानसिंह री ख्यात जोधपुर री ख्यात,

---

१ — क — राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्र थ सग्रहालय, जोधपुर।
ख — अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ — बीकानेर का एक सचित्र विज्ञप्ति लेख भवरलालजी नाहटा, राजस्थान भारती, भाग २ अक ३ ४ जुलाई १९५३ पृ० ६८।

३ — हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी गद्य पृ० ४०३।

उमरावा री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलिये रा धणिया री ख्यात, चहुवाण सोनगरा री ख्यात।

ख वात — राणा उदैसिंघ री वात, हाडा सुरजमल री वात, राव बीकेजीरी वात, जैसलमेर री वात, पाबूजी री वात, राणा कुम्भा चितभरमिया री वात, राव लूणकरण री वात सोढा री वात, आदि।

ग विगत — मेहलोना री चोबीस साखा री विगत, मेवाड रा भाखरा री विगत, सीसोदिया चुडावता री साख री विगत, जोधपुर बीकानेर टीकायता री विगत, जोधपुर रा निवाणा री विगत, गढ कोटा री विगत कछवाहा सेखावता री विगत, बिदावता री विगत आदि।

घ पीढ़ी — ईडर रा धणी राठौडा री पीढिया, राठोडा रे खापा री पीढिया, हमीरोत भाटिया री पीढिया आहाडा री पीढिया, भायला री पीढिया, चन्द्रावता री पीढिया इत्यादि।

ङ वसावली — राठोडा री वसावली राजपूता री वसावली, जैसलमेर रा भाटी महारावल री वसावली, झाला री वसावली, बीकानेर रे राठौड राजावा री वसावली, उदेपुर रा राजावा री वसावली, आदि।

च दवावत, वत — नरसिंह दास गौड री दवावेत, जिन सुख सूरिजीरी दवावेत जिनलाभ सूरि दवावेत, वेन महाराणा जी श्री शभूसिंघ जी री राव वखतावर री कही, आदि।

छ वचनिका — अचलदास खीची री वचनिका (शिवदास चारण कृत) वचनिका राठौड रतनसिंह जी री महेस दासोत री (जग्गा खिडिया रचित), आदि।

क ख्यात —

२१९२। ख्यात शब्द इतिहास का सूचक है। मुसलमान इतिहासकारो के अनुकरण में राजस्थानी इतिहासकारो ने राजस्थानी गद्य मे विभिन्न राजवशो से सम्बन्धित अनेक ख्यातें लिखी हैं। ख्यात के गद्य का एक उदाहरण इस प्रकार है —

'माछला रा मगरा सू उतर न सहर छै। दीवाण रा मोहल पीछोला री पाल ऊपर छै। मोहला थी आथरण नू तलाव लगतो सहर छै। कास दारै फेरै

छै। महर री एक बानी माण्ड्या रो मगरो छै। दकाए रानो पाल्ल दिस सिमरवा रो मगरो छै। तलाव घणा भरीज तर पाणी मगरै ताई जाय छै।"[1]

ख वात —

२२० २। वात अथवा वार्ता० ख्यात ॥ छोटी होती है। ख्यात के अंतर्गत अनेक वातों अथवा वार्ताओं का समावेश रहता है। वात और वार्ता ऐतिहासिक भी होती हैं। कथानक, विषय, भाषा रचना प्रकार, शैली और उद्देश्य की दृष्टि से वात अथवा वार्ताए अनेक प्रकार की मिलती हैं।[2] वात का एक उदाहरण इस प्रकार मिलता है —

"पिगल राजा सावतसी दवडा नू आदमी मेल कहायो – थारे थे माणो करो। तद सावतसी घणा ही विचारियो पण वात काई बने नही। कुवरी ने ऊभणा दे मेलीजे। तद उठ, घोडा रथ सजवान लागा। पासवान, माथे हुवा सा उदैचद खम नही। [3]

ग विगत —

२२१ २। विगत में किसी विषय का विस्तृत वर्णन होता है। विगत का उदाहरण इस प्रकार है —

मोहिल अजीत ने राणो वछो इयारा राजथान लाडनु ने छापर हुती ने द्रुणपुर मोहिल का ही वसतो। पछे महाराई श्री जोधजी सगलाणु मारि ने मोहिले रे री धरती ने ने राजि श्री बीदेजी नु रायीयो।'[4]

घ पीढी ह वंशावली —

२२२ २। पीढी और वंशावलियों मे प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति की वंश परम्परा अथवा सम्पूर्ण वंश का गद्यात्मक वर्णन होता है। ऐसी रचनाओं मे सामान्य व्यक्तियो के नामोल्लेख मात्र होते है किन्तु प्रमुख व्यक्तियो का वर्णन विशेष होता है। पीढी का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ – मुहता नणसीरी ख्यात राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

२ – राजस्थानी शब्द कोष, सम्पादकीय प्रस्तावना १८९ १९०।

३ – ढाला मारू री वात लि० का स० १८७२, राजस्थानी शब्द कोष संपादकीय प्रस्तावना पृ० १९८।

४ – क – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग खड एक, भाग २ डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, पृ० १६ २०।

ख – ह० प्र० स० २३३१।७ अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

तीजो की त्यारी हर सन सन पै होनो थी।
सो भी हम देषो ग्रन उपमा तै म्होनो थो॥
बारी महलू मे ठिग ग्रव के ग्रवलारी थी।
परदे चग चदवा झन झनरा की झावी था॥
पानुस की पकत लग बत्या बनवाई थी।
नीके ग्रव उरज कै झारन म्मनाई थी॥[1]

■ वचनिका —

२२४ २। वचनिका के पद्यब ध और गद्यब ध नामक दो भेद दवावैत की तरह ही बताये गये हैं —

बैन दवा जिम वचनका पद गद बध प्रमाण।
दुय दुय विध तिणरो दखू मुणजे जका सुजाण॥[2]

प्राप्त वचनिका सज्ञक रचनाग्रो मे गद्यब ध और पद्यबन्ध दोनो ही प्रकार की वचनिकाग्रो का मिश्रण हुग्रा है —

'पग पग पउलि पउलि हस्ती की गजघटा। तो उपरि सात सात सै जोध धनक धर सावठा। सात सात ग्रौनि पाइक को बैठो। सात सात ग्रालि पाइक ऊठा। खेडा उदण मुद फरऊरी। चुहचका ठाइ ठाइ ठठरी।'[3]

(२) मनोरजनात्मक गद्य

२२५ २। मनोरजनात्मक गद्य मे मनोरजनात्मक कथा वार्ताग्रो तथा वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य का समावेश होता है। मनोरजनात्मक कथाग्रो मे प्रेम वीरता भक्ति ग्रौर हास्य की ग्रद्भुत योजना होती है। वार्ताकारो ने काल्पनिक प्रयोगो द्वारा ऐसी कथाग्रो मे रहस्यरोमाच की सृष्टि भी की है। हस्तलिखित ग्र थ भण्डारो म मनोरजनात्मक राजस्थानी कथाग्रो के ग्रनेक सग्रह ग्र थ उपल ध होते हैं। इन कथाग्रो मे गद्य क साथ कही कही पद्य का प्रयोग भी प्रभावशालीनो होता है। ऐसी वार्ताग्रो मे ब्रज गुजराती ग्रौर उर्दू क प्रभाव भी कही कही मिलते हैं। उदाहरण —

"पछे बामण सीदो ले नै तलाव ऊपर रोटी करवा बेठो। जठे तलाव री तीर

१ – बेत म ्राणा जी श्री शमूसिंघ जी री, राव बखतावर री कही, राजस्थान विद्या पीठ, साहित्य सस्थान, उदयपुर।

२ – रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि मछ कृत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ ।

– ग्रचलदास खीची री वचनिका हु० प्र० न० ६६, ग्र० स० ला०, बीकानेर।

एक मोडव आयो। आवे न ाम ण थी कही। देवता तीहे तो मैं अठे वदी नही देरयो। तू वठे जाग्र है। जदी बामण वहे। हूं उजीण रहो छू ने गया जी जाऊ छू।"[१]

वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य रचनाओं में अनेक विषयों का मनोरम और सर्वांगपूर्ण वर्णन होता है। पदेव विंशति, पृथ्वीराज चरित्र अपरनाम वागविलास, माणिक्य सुन्दर सूरि कुतूहलम् सभाश्रृंगार, मुत्कलानुप्रास, राजा[राउत रो वात वणाव, खीची गगेव नीबावत रो दोपहरो आदि वर्णनात्मक रचनायें विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसी रचनाओं के कतिपय वर्णन इस प्रकार हैं —

वर्षाकाल वर्णन —

"विस्तरिउ वर्षाकाल जे पथी तणउ काल, नाठउ दुकाल।
जिणिइ वर्षाकालि मधुर ध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ।।
जाणे सुभिक्ष भूपति आवता जय ढक्का वाजइ।[२]

ऊमटी घटा बादल होइ एकठा, पडइ छटा, भाजइ भटा भीजइ लटा।
मेह गाजइ, जाणे नाल गोला वाजइ दुकाल लाजइ सुकाल वाजइ
इन्द्र राजइ, ताप पराजइ।।"[३]

वसन्त ऋतु वर्णन —

"निसिहू आविउ वसंत, हुइ शीत तणउ अंत।
दक्षिण दिशि तणउ शीतल वाउ वइ विहसइ वणराइ।।

दोहा— सव्वे भला मासडा, पण वइसाइ न तुल्ल।
जे दवि दाधा रूखडा तीह मायइ फुल।।"[४]

वर्षाकाल वर्णन —

"वर्षाकाल हुउ, वहिलौ गहिउ भुयउ, वादि पाणी भरतारया, बादल उनया।
मेघ तणा पाणी वह पथी गामइ जाता रहै।

---

१ – प्राचीन वार्ता, र० का० स० १८००, राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले० प० मोतीलाल जी मेनारिया। पृ० ३६३

२ – कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रन्थ, अगरचन्द नाहटा, राजस्थान भारती भाग ३, अंक ३–४ जुलाई १९५३।

३ – वाग्विलास, वही, पृ० ४१।

४ – वही, पृ० ४१।

की ग्रेवज बावन हजार बीघा जमी उजेण वे प्रगने दीधी जवण रो तावापत्र श्री पातसाहजी का नाव को कराय दीधो ग्रण सवाय आगा सु चारण वरण सासत पचा कुलगुरू गगारामजो का बाप दादा ने व्याह हुग्रे जवण में कुल दापा रा रुपाया १७।।। ग्रोर त्याग परट हुवे जीण मा मोतीसरा को नावो यथे जीण सु दुणो नावो कुल गुरू गगारामजी का बेटा पोता पाया जासी समत १६४२ रा मती माहा सूद ५ दसक्त पचोली पनालाल हुकम बारहठजो का सु लीखी तखत ग्रागरा समसत पचा की सलाह सू आपाणी या गुरा सू अधिकता दूजो नही छै।''[1]

(५) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका आदि विषयक गद्य

२२९ २। राजस्थानी भाषा मे व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका, स्वप्न आदि विषयक गद्य भी विभिन्न लेखकों द्वारा प्रचुर परिमाण में लिखा गया है। अनेक राजस्थानी महाकाव्यों में भी गद्य लेखन उपलब्ध होते हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

ज्ञानचारी पुस्तक पुस्तिका सपुट सपुटिका टीपणा कवली उतरी ठवडी पाठा दोरी प्रभूति ज्ञानोपकरण अवज्ञा अकालि पठन अतिचार विपरीत कपनु उत्सूत्र प्ररूपणु अश्रद्धधाण-प्रमुतिकु आलोयहु।''[2]

''स्वर केता १४ समान नेता १० सवर्ण १० ह्रस्व ५ दीर्घ ५ लिगु ३ पुल्लिगु, स्त्रीलिंगु, नपुसक लिंगु मलउ, पुल्लिगु मलो स्त्रीलिगु, मलु नपुसक लिंगु।

— बालशिक्षा व्याकरण, ठक्कुर सग्रामसिंह कृत स० मुनि श्री जिनविजयजी।

२३० २। पछइ सुम दिहाडइ जिणि कतरा सवण जोईं जइ सु वात कागलि लिपि नइ आप तीरे राखीजइ। चक्रो रइ गर्भि बेसीजइ पछइ कृष्ण स्मरण कीजइ दिन घडी।। आधी थकइ सवण लइ बेसीजइ तारा निरमला हुवे अर ध्रु रउ तारउ रुडा दीसइ ता लग बेसीजइ द्वारा तारा परगट हुवा पछइ ऊठीजइ तठा विजी कोई सवण बोलइ सु विचारी जइ।''[3]

२३१ २। ''आसोज आवताही नभ वहता आकास थे बादल दूरि हुग्रा। पृथी तैं पक कहता कादो दूरि हुग्रो। जल की गुडलता दूरि हुई। निर्म्मल हुग्रो। ताको दृष्टात जिम सतगुरु मिल्या थो। जातीजे छै मनुष्य को सत गुरु

---

१ — राजस्थानी शब्द कोष, स० सीतारामजो लालस सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० १९३।

२ — आराधना (स० १३३०) प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ, मुनि जिनविजय, पृ० २१८ २१९।

— शकुन ग्रन्थ, लि० का० लि०स० १६२६ १६३३, अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, ह० लि० ग्रथ स० ९९।

मिल्या – ग्यान की दीपति हुई। इहां आसोज मिल्या थ आगनि माहे जोति अधिक हुई छै। इह मानो ग्यान को दीपति हुई छै।"[1]

२३२ २। "राजा काह्डदे तणइ कटकि पाछिलइ पुहरी कडाहि चडइ। बाज पडइ। सिंह थी दीडा प्रवाहि घोडा पढपता न महइ। थानांतरि वहिला सु पाचण चाल्या। कठलीया किस्या। भडार भरीया। आलोचि आत्मानइ आव्या। मंत्र मुहाडि हुई।"[2]

ख नवीन राजस्थानी गद्य

२३३ २। राजस्थानी साहित्य में नवीन युग के जन्मदाता महाकवि सूर्यमल हैं। इन्होंने अपने वंश भास्कर मे पद्य के साथ ही गद्य भी अनेक प्रसंगो में लिखा है। इनकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का भी व्यवहार हुआ है —

"सो राजा नैं आपरा प्राण रो औषध अनगसेन जाणि अवरोध लाय राणी रै अरथ निवेदन कीधो। राणी तो कलिजुग रो रूप एहा अभिरूप अवनीस री तिरस्कार करि सुद्धात रै आश्रित अनेक जन रहे जिका मे कोई दो ही लोक रो खोवणहार ठालियो जिण री संगति रै प्रभाव स्वर्गलोक रा माग मुद्रित कराय कुंभीपाक री निवास भालियो सो आपरा स्वामी री दीधो अपूर्व चमत्कारिक फल राणी अनगसेना नैं जार रै भेट कीधो।"[3]

२३४ २। सूर्यमल जी हाडोती प्रदेश में बूंदी के निवासी थे। इन्होंने अपने व्यक्तिगत पत्र हाडौती बोली में लिखे हैं।[4] किन्तु उक्त उदाहरण से प्रमाणित होता है कि इन्होंने साहित्यिक गद्य राजस्थानी के टकसाली रूप में ही लिखा है।

२३५ २। आधुनिक काल के प्रारम्भ मे राजस्थानी गद्य के अनेक ग्रंथ लिखे गये जिनमें दयालदास सिंढायच कृत राठोड़ा री ख्यात प्रमुख है। गोपाल दान कविया रचित शिखर वंशोत्पत्ति (र० का० १९२६), महाराजा मानसिंह कृत रतना हमीर री वात और कविराव बख्तावर कृत केहरप्रकाश (र० का० वि०सं० १९३६) में भी राजस्थानी गद्य के प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे हुए हैं —

---

१ – लाला चारण कृत वि०स० १६७३ मे लिखित वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद पृ० ७६५।

२ – काह्डदे प्रबंध (र०का० स० १५१२), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ० ४०।

३ – वंशभास्कर, जोधपुर, राजस्थानी शब्द कोष, सपादकीय प्रस्तावना पृ० १६६।

४ – वीर सतसई, स० डा० कन्हैयालालजी सहल, पतराम जी गौड और ईश्वर दानजी आसिया सपादकीय भूमिका।

"पाछे आलमगीरजी हाथी सू उतरिया अरु फोज माय फिरे। आपरा काम आया तथा घायला नू देखे है। आपरी तरफ रा नू उठावे है, पाटा बाध जाबतो करावे है, तथा डोलियो म घाले है, वा साह सूजे री तरफ रा नू मारे है। अरु बू दी रा राव राजा सत्रसालजी घावापूर हुवा पडिया है। जिसे आलमगीरजी गया। सू मूहढे उपर हाथ फेरियो, अर पाणी पायो सावचेत कर अमल दियो। तद चेता हुवो। पछे आलमगीरजी फुरमाया जो रावजी अरज करो।'[1]

२३६ २। स्याम ताज बफनी व मडल म नीर। डाटी सुपेत सेत सुवरण शरीर। मोकल राव आतो दखि माथा मो नवायो। साई इया भुरानी सेख नामो पथ पायो। जगल म चरे छी सो अन्या, मोटी आइ। मोकल का कना सू सेख चीपी म दुहाई।"[2]

२३७ २। 'सुघड जठे बोलो या नवेली सहज सारे ही सिधावज्यो पण वन सरोवर कदे भी मत जाज्यो। जावेला बाग तो पिक सुक अली उड जावसी ने बिपफल श्रीफल अनाड सेवा जो सु खावसी, जावेला जो बन तो रुजन कपात चोंच चूरेला।'[3]

२३८ २। आधुनिक काल म अनक लखक राजस्थानी गद्य म उपन्यास, कहानी, नाटक निबन्ध, आलोचना और अनुवाद आदि लिखत रह ह। क ब ग्रथ प्रकाशित भी हुए हैं और जनता म लोकप्रिय बन है। ब्रिटिश काल म प्रकाशन सम्बधी कार्यों पर राजस्थान म कडे प्रतिबन्ध रहे, जिनस पत्र पत्रिकाओ और नवीन शैली की रचनाओ का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन नही हो सका। भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् राजस्थान मे नवीन राजस्थानी गद्य लखन को बल मिला है। परिणामस्वरूप प्रति वष अनक राजस्थानी गद्यात्मक रचनाए प्रकाशित होती आ रही हैं।

आधुनिक काल क कतिपय गद्य लखक इस प्रकार हैं —

उपन्यास लेखक —

२३९ २। शिवचन्द्र भरतिया (कनक सुदर आदि), श्री लाल जोशी (आभै पटकी) विजयदान देथा (टीडो राव सात राजकुमार आदि)।

कहानी लेखक —

२४० २। मुरलीधर व्यास, रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत, नरसिंग राजपुरोहित श्री चन्द्रा माथुर भवरलाल नाहटा दीनदयाल ओझा, सौभाग्यसिह शेखावत पुरुषोत्तमलाल मनारिया नेमीनारायण जोशी मदनमोहन जावलिया, आदि।

---

1 — दयालदास री ख्यात अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।
2 — शिवर यनोत्पत्ति राजस्थानी शब्द कोष सपादकीय प्रस्तावना पृ० २००।
3 — ऊपर प्रसग वही।

नाटककार —

२४१ २। शिवचन्द्र भरतिया, सूयकरण पारीक, श्रीनाथ मोदी, पूरणमल गायनका, मनमोहन शर्मा, भगवती प्रसाद दारुका, गोविन्द माथुर (सतरंगिणी) पुरुषोत्तमलाल मेनारिया) जुग पलटो) निरंजन नाथ आचार्य (नेहरी भगडा), भरत व्यास (ढोला मरवण), प० गिरधारीलाल जी शास्त्री, चन्द्रशेखर भट्ट, आज्ञाचन्द भंडारी, गणेशीलाल व्यास, गणपतलाल डागी, आदि।

निबन्ध लेखक —

२४२ २। गुलाबचन्द नागोरी और मारवाडी हितकारक पत्र का लेखक मंडल, ठाकुर रामसिंह, अगरचन्द नाहटा, जयनारायण व्यास, रावत सारस्वत और मरुवाणी का लेखक मंडल किशोर कल्पनाकांत और ओळमो पत्र रतनगढ का लेखक मंडल "राजस्थानी वीर', पूना का लेखक मंडल, सौभाग्यसिंह जी शेखावत पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, ब्रजमोहन जावलिया, आदि।

आलोचना लेखक —

२४३ २। रामकरण आसोपा (मारवाडी व्याकरण) सीताराम लालस (राजस्थानी व्याकरण), महाराज चतुरसिंह, रावत सारस्वत, अगरचंद नाहटा, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, सूयकरण पारीक, पुरोहित हरिनारायण प० नरोत्तमदास स्वामी, विजैदान देथा, कोमल कोठारी डा० मोतीलाल गुप्त, सरनामसिंह, हीरालाल माहेश्वरी, नरेन्द्र भाणावत, मदनराज महता, नारायणसिंह भाटी, रामप्रसाद दाधीच अक्षयचन्द्र शर्मा, कन्हैयालाल सहल, डा० मोतीलाल मेनारिया, मनोहर शर्मा, चन्द्रदान, बद्रीप्रसाद साकरिया, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, डा० गोवर्द्धन शर्मा, मूलचन्द प्राणेश, आदि।

अनुवाद लेखक —

२४४ २। महाराज चतुरसिंह,[१] नरसिंह राजपुरोहित पुष्कर मुनि, रामनाथ *व्यास परिकर*,[२] *श्रीमतकुमार व्यास* चंडीदान, शक्तिदान कविया, ब्रजमोहन जावलिया, रावत सारस्वत कुंवर चन्द्रसिंह आदि।[३]



---

१ — महिम्नस्तोत्र श्रीमद्भगवद गीता और रामायण।

२ — गीतांजली बंगला, रविन्द्रनाथ ठाकुर।

३ — मोपस्यां यादरूड की कहानियों का राजस्थानी अनुवाद।

(ग) पिंगल काव्य—

१ "पिंगल" शब्द विचार

२ पिंगल साहित्य का वर्गीकरण —

(क) चरित्र काव्य—१ रासो काव्य, २ अन्य काव्य

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य

(ग) भक्ति काव्य—१ कृष्ण भक्ति काव्य, २ राम भक्ति-काव्य, ३ निर्गुण और अन्य काव्य।

(घ) रीति काव्य—१ रस-अलंकार, २ छन्द, ३ नायिका भेद, षट्-ऋतु-वर्णन नख शिख वर्णन।

(ङ) नीति काव्य

(च) फुटकर काव्य

(घ) भक्ति एवं सन्त काव्य—

(अ) साखी, (आ) शब्द, (इ) परिचयी, (ई) भक्तमाल, (उ) मंगल विवाहलो, (ऊ) ककहरा, बारहखडी, (ए) श्लोको आदि।

(ङ) लोक काव्य—

(अ) प्रबन्ध, मुक्तक, (आ) प्रबन्ध-खण्ड काव्य महाकाव्य।

(च) आधुनिक काव्य

२. विवाह और विवाह-संज्ञक रचनाएं

(क) विवाह-संस्कार

(ख) विवाह—

(अ) ब्राह्म विवाह, (आ) देव विवाह, (इ) आर्ष विवाह, (ई) प्राजापत्य विवाह, (उ) आसुर विवाह, (ऊ) गान्धर्व विवाह, (ए) राक्षस विवाह, (ए) पिशाच विवाह।

(ग) विवाह संज्ञक रचनाएं —

१– (अ) मंगल काव्य, (आ) विवाहलऊ, विवाहलो, विवाह (इ) वेलि, (ई) हरण (उ) परिणय।

२– (क) मराठी मंगल काव्य (ख) कन्नड मंगल काव्य,
(ग) तेलुगु मंगल काव्य, (घ) उड़िया मंगल काव्य,
(ङ) गुजराती मंगल काव्य, (च) हिन्दी मंगल काव्य
(छ) राजस्थानी मंगल काव्य।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप
और
विवाह संज्ञक रचनाएं

१ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

(क) जैन काव्य, (ख) डिंगल काव्य, (ग) पिंगल काव्य, (घ) भक्ति काव्य एवं संत काव्य, (ङ) लोक काव्य, (च) आधुनिक काव्य।

(क) जैन काव्य—

(अ) कथा काव्य अथवा चरित् काव्य—

१ रास रासो, २ चउपई, ३ संधि, ४ चर्चरी, ५ प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा

(आ) ऋतु काव्य—फागु धमाल और बारहमासा
(इ) उत्सव काव्य
(ई) नीति काव्य—कक्का-बारहखड़ी
(उ) स्तवन
(ऊ) ढाल
(ए) टब्बा और बालावबोध
(ऐ) ज्योतिष, वास्तु शास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय रचनाएं।

(ख) डिंगल काव्य—

१ 'डिंगल' का नामकरण
२ डिंगल काव्यों का वर्गीकरण—

(१) चरित नायकों के आधार पर—(अ) रासो (आ) प्रकाश, (इ) विलास, (ई) रूपक, (उ) वचनिका

(२) छन्दों के आधार पर—(अ) नीसाणी, (आ) झूलणा, (इ) धमाल, (ई) गीत (उ) कुण्डलिया, (ऊ) कवित्त (ए) दूहा (ऐ) वेल।

(३) प्रकीर्ण और शास्त्रीय

तृतीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप

१ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

१ ३। साहित्य का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है। प्राचीन काल से साहित्य मौखिक और लिखित दो रूपों में प्राप्त होता रहा है। प्राचीन काल में टंकण और मुद्रण के साधन सुलभ नहीं थे इसलिए विद्या को कण्ठस्थ करने पर बल दिया जाता था। तदनुसार "विद्या कण्ठ री" उक्ति प्रचलित हुई है। मौखिक और लिखित साहित्य को क्रमशः श्रुतिनिष्ठ और लिपिनिष्ठ भी कहा जा सकता है।

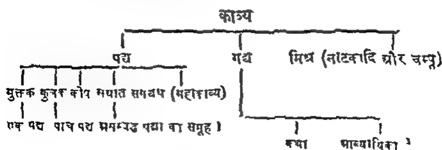
२ ३। आचार्य व्यास ने काव्य को तीन रूपों में वर्गीकृत किया है —

(१) श्रव्य, (२) अभिनय, और (३) प्रकीर्ण—

"श्रव्यञ्चैवाभिनेयं च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः" [1]

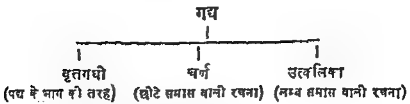
३ ३ आचार्य भामह ने काव्य एवं साहित्य के पद्य और गद्य नामक दो भेद बताए हैं। भाषा-भेद की दृष्टि से भामह ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश नामक तीन विभाग बताए हैं। भामह ने वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से— (१) वृत्तदेवादिचरितशंसि (२) उत्पाद्य वस्तु, (३) कलाश्रय, (४) शास्त्राश्रय नामक भेद बताए तथा काव्य का स्वरूप-भेद की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण किया — (१) सर्गबन्ध (महाकाव्य) (२) अभिनेयार्थ (नाटय), (३) आख्यायिका, (४) कथा, और (५) अनिबद्ध। [2]

४ ३ आचार्य दण्डी ने साहित्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र भाषाओं के अन्तर्गत रखते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया —

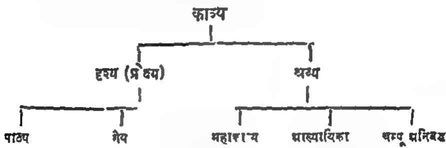


१ – अग्निपुराण ३३७। ३९।
२ – काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद।
३ – काव्यादर्श १। ११। १४, २३ ३१।

५ ३। आचार्य वामन ने 'काव्यालङ्कारसूत्र' में काव्य के पद्य और गद्य दो रूप मानते हुए गद्य के तीन रूप बताए हैं —



६ ३। आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश भाषाओं को काव्य भाषा मानते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया —



७ ३। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में प्रसंगत काव्य के दृश्य और श्रव्य नामक दो भेद मानते हुए काव्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है—

काव्य

दृश्य — श्रव्य

रूपक — उपरूपक — पद्य — गद्य

नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टक नाट्य रासक — मुक्तक युग्मक सदानितक

प्रस्थानक उल्लाप्य काव्य प्रेंख — कलापक कुलक महाकाव्य

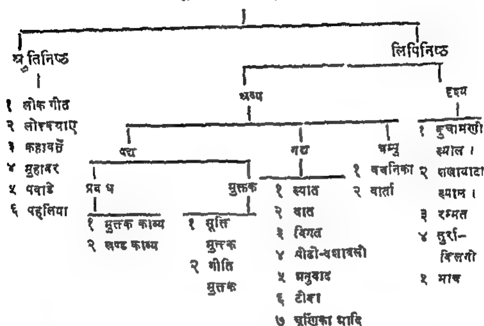
रासक श्रीगदित शिल्पक विलासिका — काव्य खण्डकाव्य कोष व्रज्या

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीश भणिका — मुक्तक वृत्तगंध उत्कलिका-चूर्णक प्राय

संलापक

नाटक प्रकरण भाण व्यायोग समवकार डिम ईहामृग अंक वीथी प्रहसन

८ ३। लिपिनिष्ठ और श्रुतिनिष्ठ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप मे करना उचित होगा—



९ ३। प० नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी साहित्य की तीन शैलियां मानी हैं—(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली और (३) लौकिक शैली।[1]

उक्त शैलियों के अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य की पिंगल, भक्ति एवं सन्त काव्य और आधुनिक साहित्यिक शैलियां भी हैं जिनका समावेश उक्त वर्गीकरण में नहीं हुआ है। चारणी शैली से चारणों द्वारा अपनाई गई शैली का ही बोध होता है। रावां, राजपूतों मोतीसरों ढाढ़ियों और ब्राह्मणों आदि ने भी चारण कवियों की भांति अनेक डिंगल रचनाएं प्रस्तुत की हैं। अतएव "चारणी" शब्द उक्त अर्थ को प्रकट नहीं करता। साथ ही "चारणी' शब्द 'चारण' पुलिंग शब्द के स्त्री-लिंग रूप का भी बोधक है।

१० ३। श्री अगरचन्द नाहटा ने ११५ प्रकार के काव्य रूप बताए हैं—

१ रास २ संधि, ३ चौपाई ४ फागु, ५ धमाल ६ विवाहलो ७ धवल ८ मंगल, ९ वेलि, १० सलोक ११ संवाद १२ वाद, १३ झगड़ो १४ मातृका १५ बावनी, १६ कक्का, १७ बारहमासा १८ चौमासा

१–राजस्थानी साहित्य, एक परिचय नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर, पृ० २३।

१६ पवाडा, २० चर्चरी, (चाचरि) २१ जन्माभिषेक, २२ कलश, २३ तीर्थमाला २४ चैत्य परिपाटी, २५ संघ-वर्णन, २६ ढाल २७ ढालिया २८ चाढालिया, २९ छढालिया ३० प्रबंध, ३१ चरित्र, ३२ सम्बन्ध, ३३ आख्यान, ३४ कथा, ३५ सतक, ३६ बहोतरी, ३७ छत्तीसो, ३८ सत्तरी ३९ बत्तीसी ४० इक्कीसो, ४१ इक्तीसो, ४२ चौबीसी, ४३ बीसी, ४४ अष्टक, ४५ स्तुति, ४६ स्तवन ४७ स्तोत्र, ४८ गीत, ४९ सज्झाय ५० चैत्यवंदन, ५१ देववन्दन, ५२ वीनती, ५३ नमस्कार, ५४ प्रभाती, ५५ मंगल ५६ सांझ ५७ बधावा, ५८ गहूँली, ५९ हीयाली, ६० गूढा, ६१ गजल, ६२ लावणी ६३ छंद ६४ नीसाणी, ६५ नवरसो, ६६ प्रवहण ६७ पारणो ६८ बाहण, ६९ पटटावली, ७० गुर्वावली, ७१ हमचडी ७२ हीच, ७३ माला-मालिका, ७४ नाममाला, ७५ रागमाला ७६ कुलक, ७७ पूजा, ७८ गीता, ७९ पट्टाभिषेक, ८० निर्वाण ८१ संयम श्री विवाह वर्णन, ८२ भास ८३ पद ८४ मंजरी ८५ रसावलो ८६ रसायन ८७ रसलहरी, ८८ चन्द्रावला, ८९ दीपक, ९० प्रदीपिका, ९१ फुलडा, ९२ जोड ९३ परिक्रम ९४ कल्पलता, ९५ लेख, ९६ विरह, ९७ मूंदडी ९८ सत, ९९ प्रकाश, १०० होरी, १०१ तरंग, १०२ तरंगिणी, १०३ चोक, १०४ हुंडी १०५ हरण, १०६ विलास १०७ गरबा, १०८ बोली, १०९ अमृतध्वनी, ११० हालरियो १११ रसोई ११२ कडा, ११३ भूलणा, ११४ जमडी ११५ दोहा, ११६ कुंडलिया, ११७ छप्पय आदि।[1]

श्री नाहटाजी ने काव्य रूपों की संख्या ११७ दी है। किन्तु मंगल रूप संख्या ८ और ५५ दो बार आ गया है और संख्या ८१ पर "संयम श्री विवाह वर्णन" विवाह परक रचना है। ऐसी रचनाओं का समावेश विवाह विवाहला संज्ञा में हो जाता है।

११ ३। श्री नाहटा जी की उक्त ११५ काव्य रूपों की सूची में डिंगल और पिंगल काव्य रूप नही हैं तथा साखी, शब्द, परिचयी और भक्तमाल जैसे काव्य रूप भी छूट गये हैं। आधुनिक राजस्थानी काव्य रूपों का भी उक्त सूची में समावेश नही है। अतएव श्री नाहटा जी द्वारा प्रस्तुत काव्य रूपों की उक्त सूची एकांगी और मुख्यतः जैन रूपों पर आधारित ही प्रतीत होती है।

१२ ३। भाषा शैली की दृष्टि से राजस्थानी काव्य के निम्नलिखित भेद किये जाने चाहिए —(क) जैन काव्य, (ख) डिंगल काव्य, (ग) पिंगल काव्य, (घ) भक्ति काव्य एवं संत काव्य (ङ) लोक काव्य और (च) आधुनिक काव्य।

---

१ – प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, पृ०-२-३।

क. जैन काव्य—

१३ ३। जैन काव्यों का वर्गीकरण (अ) कथा काव्य अथवा चरित् काव्य, (आ) ऋतु काव्य, (इ) उत्सव काव्य, (ई) नीति काव्य, (उ) स्तवन (ऊ) ढाल, (ए) टब्बा एवं बालावबोध, और (ऐ) ज्योतिष, वास्तु, आयुर्वेद रीति ग्रन्थ आदि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य के रूप में किया जा सकता है।

ख. कथा - काव्य अथवा चरित् - काव्य

१४ ३। जैन काव्य के अन्तर्गत आदर्श व्यक्तियों के चरित्र – सम्बन्धी अनेक कथा काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के माध्यम से दान, शील, तप और भावना नामक ग्राह्य गुणों तथा क्रोध, मान, माया और लोभ नामक त्याज्य प्रवृत्तियों पर विशेष बल दिया गया है। इस विषय में कहा गया है —

दान शील तप भावना, चार चरित लहेस।
क्रोध मान मायावली, लोभादिक परहरेस॥ [१]

१५ ३। कथा अथवा चरित काव्यों के रूप निम्नलिखित हैं —(१) रास, रासो, (२) चौपाई, (३) संधि, (४) चर्चरी, (५) प्रबन्ध चरित, आख्यानक, कथा।

(१) रास रासो—

१६ ३। रासपरक काव्यों की परम्परा हमारे साहित्य में बहुत प्राचीन है। रास अथवा रासो काव्यों को रासक, रासो, राइसो, राइसा, रायसउ, रासु, रायसा और रासा आदि भी लिखा गया है। रास शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं —

१ बीसलदेव रास में प्रयुक्त 'रसायन' शब्द से 'रासा' की उत्पत्ति हुई है।
— आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल।[२]

२ रासो शब्द की उत्पत्ति 'राजसूय' से है। —गार्सिद तासी।[३]

३ रासो शब्द की उत्पत्ति "रहस्य" से है। —श्यामसुन्दर दास।[४]

४ रासो शब्द की उत्पत्ति "राजयश" से है।[५]

---

१ – हेमरतन कृत अमर कुमार चौरा, हस्त लि० प्रति, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२ – हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, (स०२००३) पृ०३२।
३ – हिन्दुई साहित्य का इतिहास।
४ – हिन्दी शब्द सागर।
५ – भारतीय विद्या, वर्ष ३, अंक १, पृ० ६६।

५ "रासो के माधने कथा के हैं, यह रूढ़ि शब्द है, एकवचन रासो, बहुवचन रासा।'
—मुंशी देवी प्रसाद।[1]

६ "राजादेश" से रासो की उत्पत्ति हुई है।" —डा० जार्ज ग्रियर्सन।[2]

७ 'रासा" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द "रास' से है।
—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।[3]

८ 'रासो शब्द की उत्पत्ति 'रास अथवा रासक से है।"
—पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या।[4]

९ "रास शब्द वस्तुतः संस्कृत भाषा का नहीं है प्रत्युत देशी भाषा का है जो संस्कृत बन गया है।'
—डा० दशरथ ओझा।[5]

१० चरित्र काव्यों में रासो-ग्रन्थ मुख्य हैं। जिस काव्य ग्रन्थ में किसी राजा की कीर्ति विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो उसे रासो कहते हैं।'
—पं० मोतीलाल जी मेनारिया।[6]

११ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मतानुसार 'रासक' शब्द को रासो की उत्पत्ति के लिए ग्रहण किया जा सकता है।[7]

१२ 'रास या रासक मूलतः नृत्य के साथ गाई जाने वाली रचना विशेष है।'
—के० का० शास्त्री।[8]

१३ उद्यम या पचड़े आदि से भी रासो के अर्थ लिए गये हैं।[9]

१४ रास मुख्यतः गेय छन्दों में लिखा जाता था, गरबो" को रास का उत्तराधिकारी भी बताया गया है।[10]

---

१ – सरस्वती, भाग ३ पृ०६८।
२ – वही, पृ० ६७।
३ – सम्मेलन पत्रिका, भाग ३३, संख्या १२, पृ० १७।
४ – रासो की प्रथम संरक्षा, उदयपुर।
५ – हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० ७० (द्वितीय संस्करण)।
६ – राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० २४, सन् १९५२।
७ – सम्मेलन पत्रिका, भाग, ३३, संख्या १२, आश्विन, २००३।
८ – आपणा कविओ, भाग एक, पृ० १४३–१५२ और ४१६–४३२।
९ – साहित्य संदेश, मई १९५१।
१० – दी कैटलाग आफ दी गुजराती एण्ड राजस्थानी मेनुसक्रिप्टस इन दी इण्डिया आफिस लायब्ररी, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड १९५४।

१५ प० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने इसको मिश्र गेय रूपक मानते हुए रासो और रासक को पर्याय माना है। उनके मत में हेमचन्द्र के काव्य के आधार पर यह मिश्र गेय है।

१६ 'विविध प्रकार के रास, रासावलय, रासा और रासक छन्द, रासक और नाट्य रासक उपनाटकों, रासक, रास तथा रासा नृत्या और नृत्ता से भी रासो प्रबन्ध परम्परा का निकट का सम्बन्ध रहा है यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। कदाचित् नहीं रहा है।' —डा० माताप्रसाद गुप्त।[१]

१७ पहले "रासायों" का धर्मोपदेश मुख्य हेतु था। फिर उपदेश में कथा-तत्व और चरित्र-संकीर्तन आदि तत्वों का समावेश हुआ। साहित्य स्वरूप की दृष्टि से रासक एक नृत्य काव्य तथा गेय रूपक है।[२]

१८ डा० ओम प्रकाश के अनुसार तीन विशेषताएं रासा में पाई जाती हैं— (अ) वस्तु वर्णन, (आ) शैली, (इ) सक्रिय चित्र।[३]

१९ रास शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत् में गीत नृत्य के लिए हुआ है—

"रासोत्सव सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डित"[४]

इसमें ध्रुपद आदि रागों का भी प्रयोग मिलता है—

'तदेव ध्रुव मुन्निन्ये तस्मै मानं च बहुदात्।'[५]

२० विजयराय कल्याणराय वैद्य के मतानुसार रास छन्द धार्मिक कथाओं के तत्वों से युक्त है।[६]

२१ रास के नृत्य, अभिनय और गेय वस्तु — ये ही तीनों अंगों से समय पा कर परस्पर मिलते जुलते किन्तु साहित्य की दृष्टि से विभिन्न तीन प्रकार के रासो की उत्पत्ति हुई। कुछ नृत्य विशेष रास कहलाए, इसी प्रकार श्रव्य रास और रासक उपरूपक बने।[७]

१– हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५६, सन् १९५२।
२– हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ४।
३– डा० मंजुलाल र० मजुमदार, गुजराती साहित्यना स्वरूपो पृ० ६६ तथा ७१।
४– हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ० १८–२०।
५– स्कन्ध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३।
६– गुजराती साहित्य नी रूपरेखा, पृ० १९–२०, आवृत्ति पहली।
७– डा दशरथ शर्मा, साहित्य-सन्देश, जुलाई १९५१।

२२ विरहांक ने वृत्तजातिसमुच्चय में "रासक" और स्वयम्भूछन्द में "रासा" को बताते हुए डा० हरिवल्लभ भायाणी ने संदेश रासक में प्रयुक्त "रासा" नामक छन्द की चर्चा की है।[1]

२३ पृथ्वीराज रासो में पांच स्थलों पर 'रासा' छन्द होने की सूचना डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी ने दी और बताया—'इतना तो कहा जा सकता है कि एक समय रासा या रासो काव्य में अनेक विशिष्ट छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था।'[2]

२४ रासक या रास का छन्द प्रभाकर[3] और हिन्दी छन्द प्रकाश[4] में एक छन्द विशेष बताया है।

२५ अनेक विद्वानों के मतानुसार रसपूर्ण होने से यह रचना रास कहलाई। शालिभद्र सूरि कृत पंचपांडव चरित रासु (संवत् १४१०) में लिखा है—

'रासि रसाउलु सुणीज्जई।'[5]

२६ जिनदत्तसूरि के "उपदेश रसायन रास" से लगुड रास और ताला रास का पता चलता है। ये रास खेले भी जाते थे। कवि के अनुसार दिन में लगुड रास और रात्रि में ताला रास का खेल वर्जित है—

ताला रासु विदित न रयणि हिं,
दिवसि वि लगुडा रसु सहुँ पुरिसि हिं॥

इसकी पुष्टि इन उदाहरणों से हो जाती है—

ताला रासु रयणि नहि देह लउडा रसु मूलह वारेह।[6]

और—

पीछे ताला रस पडइ बहु भाट पढता।
अनइ लकुट रास जाईइ खेला नाचता॥[7]

और रैवतगिरि रास (सं० १२८८)—

---

१ – सन्देश रासक, मुनि श्री जिनविजय जी, भारतीय विद्या भवन बम्बई, प्रस्तावना।
२ – रेवातट समय भूमिका पृ० १३४ १३५।
३ – श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत पृ० ५६।
४ – श्री रघुनन्दन शास्त्री कृत, पृ० २४५।
५ – गुजररासावली जी० ओ० एस० सी० अठारह।
६ – जगड रचित सम्यक्त्व चौपाई।
७ – सप्तक्षेत्री रास, (प्रा० गु० का० सं० पृ० ५२)।

रंगिहि ए रमई जो रासु सिरि विजयसेण सूरि निम्मविऊए ।

जिनोदय सूरि 'पट्टाभिषेक' रास (सं० १४१५)—

नाचई ए नयण विशाल, चदवयणि मन रग भर ।
नव रगि ऐ रासु रमति, खेला खेलिय सुप परिवरे ।।

कान्हड दे रास (सं० १५१२)—

फल्या मनोरथ पुगो आस, ठामि ठामि दिवराइ रास ।[1]

२७ भाव प्रकाश में शारदातनय ने तीन प्रकार के रासक का वर्णन किया है—

लता रासक नाम स्याद्वत्त्रेधा रासक भवेत् ।
दण्डरासकमेकं तु तथा मण्डलरासकम् ।।

और रासक नामक गेय नाट्य का उल्लेख उपरूपकों में किया गया है—

काव्य च प्रेंक्षणं नाट्यरासक रासकं तथा
उल्लाप्यकंच हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च ।।

हेमचन्द्र—

गेय–डोम्बिका भाण प्रस्थान शिंगक भाणिका प्रेंखण
रासक्रीड हल्लीसक रासकगोष्ठी श्रीगदित राग काव्यादि ।।[2]

वाग्भट्ट[3] (द्वितीय) और कवि विश्वनाथ—

नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टक नाट्यरासकम्
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखन रासक तथा ।[4]

रासक में अनेक प्रकार के ताल और लय, ६४ तक के युगल और कामन उद्धत-गेय रूपक तथा अनेक नर्तकियाँ भी होती हैं—

अनेक नर्तकी योज्य चित्र ताल लयान्वितम् ।
आचतु षष्टि युगलाद्रासक मसृणोद्धतम् ।।

डा० श्यामसुन्दरदास[5] श्री बाबेन्द्र[6] और श्री व्रजरत्नदास[7] आदि ने हिन्दी साहित्य में उपरूपक के १८ भेदों में से नाट्यरासक को भी एक भेद माना है ।

---

१ – पृ० ५६, खण्ड १, २३६ ।
२ – काव्यानुशासनम् ।
३ – काव्यानुशासनम् ।
४ – साहित्य दर्पण ।
५ – परि० ६ ।
५ – रूपक रहस्य ।
६ – हिन्दी नाटक साहित्य ।
७ – हिन्दी नाट्य शास्त्र ।

२८ हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार रासो नाम से अभिहित कृतियां दो प्रकार की हैं— एक तो गीत-नृत्य परक जो राजस्थान तथा गुजरात में विशेष रूप से समृद्ध हुई और दूसरी छन्द वैविध्य परक जो पूर्वी राजस्थान तथा शेष हिन्दी प्रदेश में अधिक विकसित हुई।[1]

१७ : ३। श्रीमद्भागवत के रास लीला प्रसंग से ज्ञात होता है कि रास का सम्बन्ध मूलतः शृंगारिक नृत्यगीत से है। निम्नलिखित ग्रन्थों से भी रास का सम्बन्ध शृंगारिक नृत्यगीत से प्रकट होता है—पाइयलच्छी नाममाला[2] 'रासो हल्लीसग्रो', देशी नाम माला में 'हल्लीसो रासक'[3] 'मण्डलेन स्त्रीणां नृत्तम्' तथा कुवलयमाला[4] 'पाइय सद्द महण्णवो' में रास-रासक[5] और रिपुदारण रास।[6]

१८ : १। रास मूलतः लौकिक और शृंगारिक गीत रहे हैं जिनके आधार पर जैन कवियों ने धार्मिक रास लिखे। धीरे धीरे इन रास गीतों ने परिवर्द्धित होता हुए प्रबन्ध काव्य शैली का रूप धारण कर लिया।

(२) चउपई —

१९ १। "चउपइ" अर्थात् चौपाई छन्दों में रचित होने से इन रचनाओं को चउपइ संज्ञा से अभिहित किया गया।

(३) संधि —

२० १। अनेक महाकाव्यों में सर्ग से तात्पर्य संधि लिया गया है। हेमचन्द्राचार्य ने महाकाव्य के लक्षण बताते हुए लिखा है—

"पद्य प्रायं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नवृत्तसर्गा-श्वाससन्ध्यवस्कन्धकबन्धसत्संधिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्"

कुछ संधि विषयक काव्य निम्न हैं—

(१) आनंद संधि विनयचंद, (२) गौतम संधि १४ वीं शताब्दी, ह० प्रति श्री अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर तथा जै० गु० का० भाग १, ३, (३) पुण्यपुंज संधि

१ – पृष्ठ ६५६।
२ – धनपाल कृत, ३७।
३ – हेमचन्द्र कृत, ८। ६१।
४ – वही २। ३८।
५ – प० हरगोविन्ददास त्रीकमचन्द सेठ, कलकत्ता, सं० १९८५।
६ – मरु भारती, वर्ष ४ अंक २, जुलाई, १९५६, डा० दशरथ शर्मा का निबन्ध।

(१५५०)–कल्याण तिलक (४) नन्द मणिमहार सन्धि (१५८७)–चारुचन्द्र (५) उदाहु राजर्षि सधि (१५९०) तथा गजसुकुमाल सन्धि (१५९०)–सयम मूर्ति (६) जिनपालित जिन रक्षित सन्धि (१६२१)– कुशललाभ (७) गजसुकुमाल सन्धि (१५५३) मूलप्रभ, (८) सुबाहु सन्धि (१६०४)– पुण्यसागर, (९) हरिकेशी सन्धि (१६४४) कनक साम, (१०) चउसरण प्रकीर्णक सधि (१६३१) चरित्रसिंह (११) भावना सन्धि (१६४६)– जयसोम (१२) अनाथी सन्धि (१६४७)–विमल विनय (१३) कयवन्ना सन्धि (१६५१)–गुणविनय, आदि।

(४) चर्चरी —

२१ ३। सगीतबद्ध रचना राग रागिनियो में बाध कर नृत्य के साथ गाई जाती है वह चर्चरी कहलाती है। जिनदत्त सूरि की रचना जिनवल्लभ सूरि की स्तुति अपभ्रंश काव्यत्रयी में है।[1] हिन्दी और प्राकृतपैंगलम् में इसको छन्द बताया गया है।[2] ये रचनाएं चौदहवी शताब्दी से मिलना आरम्भ हुई हैं।[3]

(५) प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा —

२२ ३। जैन कवियो ने अनेक रचनाएं प्रबन्ध चरित्र आख्यानक और कथा काव्यो के अन्तर्गत लिखी हैं। महापुरुष चरित्र अथवा मुख्य घटना का उल्लेख इन नामों से पहले करने की परम्परा रही है।

(आ) ऋतुकाव्य

२३ ३। ऋतु काव्यो के अन्तर्गत (१) फागु, (२) धमाल, और (३) बारह मासा परक रचनाओं का समावेश होता है।

(१) फागु काव्य —

२४ ३। वसत ऋतु में गेय रहे है। होली के अवसर पर फाग के साथ इन रचनाओं का सम्बन्ध होने से इन्हे फागु कहा गया। फागु शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं—

१ डा० भोगीलाल साडेसरा सस्कृत फल्गु प्रा० फग्गु फागु

२ शृगारिक विषयो के आधार पर के० का० शास्त्री ने इसे फागुकाल कहा है।[4]

---

१ – गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज में प्रकाशित।

२ – हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० १३१ तथा हिन्दी काव्यशास्त्र, पृ० २०४।

३ – जैनसत्यप्रकाश, वर्ष १२, अक ६, में श्री हीरालाल कापडिया का 'चचरी' नामक लेख।

४ – आपणा कवीओ पृ० २३३।

३ श्री कांतिलाल बलदेवराम व्यास के मतानुसार स० फाल्गुन-अ० फग्गु पु० प० रा० फागु। फागुन मे वसंत अपने पूर्ण यौवन पर होती है। इस समय के मादकता से भरे हुए गान को फागु कहते हैं।[१]

४ जिस प्रकार संस्कृत में यमकबद्ध अनुप्रासमय काव्य होते हैं, वैसी रचना को भाषा मे फागबंध कहा जा सकता है।[२]

५ श्री लाल चन्द्र गांधी के मतानुसार फागु शैली विषय के आधार पर विविध तत्वों से युक्त है।[३]

६ अक्षय चन्द्र शर्मा के अनुसार यह मधुमहोत्सव रूपी गेय रूपक है।[४]

७ फागु मूल में लोक साहित्य का गीत-स्वरूप है —डा० म० र० मजुमदार।[५]

८ देशीनाम माला मे वसंतोत्सव कहा गया है फग्गु-मधूत्सव।[६] संस्कृत फल्गु से भी इसकी उत्पत्ति इसी आधार पर दिखाई गई है।[७] स० फल्गु प्रा० फग्गु (अथवा देश्य फग्गु)-जू०गु० फागु फाग।

९ डिंगलकोष मे भी फालगुण, और फागण, फाल्गुण के पर्याय दर्शाए गये हैं।[८]

फागु काव्य गेय होने के साथ ही नृत्य के साथ अभिनेय भी होते थे। थूलिभद्द फागु (१४ वीं शताब्दी) में लिखा है—

खरतर गच्छि जिण पद्म सूरि किय फागु रमेवउ।
खेला नाचइ चैत्र मासि रंगिहि गावेवउ॥[९]

जैन कवियों द्वारा लिखित फागु काव्यों में शृंगार का अभाव मिलता है। शृंगार रस परक फागु काव्य जनता में लोकप्रिय थे। 'वसन्त विलास' नामक फागु काव्य शृंगार रस का उत्तम उदाहरण है।[१०] जैन कवियों ने लोक प्रचलित शृंगार रस परक फागु काव्य परम्परा का अनुसरण करते हुए शांत रस परक काव्यों की रचनाएं की।[११]

---

१ — वसंतविलास : भूमिका पृ० ३८।
२ — जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२ अंक ५ ६, पृ० १६५।
३ — वही, वर्ष ११, अंक ७ पृ० ११२।
४ — नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९ अंक १, संवत् २०११, पृ० २५।
५ — गुजराती साहित्य नां स्वरूपो पृ० २०१।
६ — षष्ट वर्ग ॥८२॥ पृ० २४३ (कलकत्ता),
७ — गुजराती साहित्य नां स्वरूपो, पृ०, १६६, टिप्पणी।
८ — परम्परा डिंगलकोष कविराज मुरारीदान, पद १७२, पृ० १८४।
९ — श्री सी० डी० दलाल प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह, पृ० ४१।
१० — प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
११ — राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता, सम्मेलन पत्रिका में श्री अगर चन्द नाहटा का निबंध।

(२) धमाल —

२५ ३। राजस्थान मे होली के अवसर पर गेय गीतो को धमाल कहा जाता है। होली के अवसर पर गाई जाने वाली एक राग का नाम भी धमाल है। जैन कवियो ने धमाल परम्परा मे अनेक आध्यात्मिक धमाले लिखी हैं। यथा–आषाढ भूति धमाल, आर्द्र कुमार धमाल (कनक सोम), नेमिनाथ धमाल (मालदेव) आदि।

(३) बारहमासा —

२६ ३। बारहमासा काव्यो में मुख्यत विप्रलम्भ शृगार का समावेश होता है। कवि वर्ष के प्रत्येक मास की परिस्थितियो का चित्रण करते हुए नायिका का विरह वर्णन करते हैं। बारहमासा का वर्णन प्राय आषाढ से प्रारम्भ होता है। जैन कवियो ने बारहमासा परम्परा के अन्तर्गत अनेक कृतियाँ लिखी है। जैसे—नेमिनाथ बारमास चतुष्पदिका (१३५३), विनयचन्द्र सूरि।[१] नेमिनाथ राजिमति बारमास चारित्रकलश,[२] नेमिनाथ बारमास बेल प्रबध (१६५०)—गुणसौभाग्य[३] श्री अगरचन्द जी नाहटा ने अपने एक निबन्ध में "बारहमासा की प्राचीन परम्परा" पर विस्तृत प्रकाश डाला है।[४]

(इ) उत्सव-काव्य

२७ ३। उत्सव-काव्यो के अन्तर्गत विवाह, दीक्षा आदि उत्सवो का वर्णन रहता है। जिस काव्य में विवाह का वर्णन रहता है उसको विवाहलउ, विवाहलो, विवाहला आदि तथा विवाह के अन्तर्गत गाए जाने वाले गीतो को धवल और मगल कहा गया है। विवाहला परक रचनाओ में जिनेश्वर सूरि कृत "सयम श्री विवाह वर्णन रास" और "जिनोदय सूरि विवाहला "अब तक प्राप्त हुई रचनाओ में प्राचीनतम हैं। तरहवीं सदी में रचित जिनपति सूरि 'धवल गीत' धवल परक रचनाओ मे प्राचीनतम मानी गई है।[५] विवाहोत्सव सम्बन्धी कतिपय रचनाए इस प्रकार हैं—

(क) आर्द्र कुमार विवाहलउ (१४९३)
(ख) महावीर विवाहलउ (१५ वी शताब्दी)—कीर्तिरत्न सूरि
(ग) नेमि विवाहलउ (१५०५)—जयसागर
(घ) शान्ति विवाहलउ (१६ वीं शताब्दी)
(ङ) शालिभद्र विवाहलउ (१५६८)-लक्ष्मण
(च) जम्बू अन्तरग रास विवाहलो (१५७२)-सहजसुन्दर
(छ) पार्श्वनाथ विवाहलु (१५८१ मे पहले)-पेथो

---

१ – प्राचीन गु० का० स०।
२ – गुजराती साहित्यना स्वरूपो पृ० २७९।
३ – वही, पृ० २८२ २८३।
४ – हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अक ४, स० २०१०।
५ – जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ११, अक १० ११।

(ज) शान्तिनाथ विवाहलो घवल प्रबन्ध (१५६१)–आणन्द प्रमोद
(झ) सुपार्श्वजिन विवाहलो (१६३२)–ब्रह्मविनयदेव ।

(ई) नीति-काव्य

२८ ३। जैन कवियों ने प्राय प्रत्येक कृति में उपदेश ज्ञान एव नीति का किसी न किसी रूप में समावेश किया है। जैन कवियों का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक प्रचार करना रहा है। नीति काव्य के अन्तर्गत अनेक सवाद, कक्का मातृका, बावनी कुलक और हियाली परक रचनाओं का समावेश होता है। सम्वादपरक रचनाओं में दो विरोधी पक्षों के सम्वाद लिख कर जैन कवियों ने अपने पक्ष की अन्त में विजय बताई है। सम्वादपरक रचनाओं के द्वारा जैन कवियों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार को दृष्टि से सरल रूप में प्रस्तुत किया है। सम्वाद सम्बन्धी कतिपय रचनाएं इस प्रकार हैं—

(क) सहजसुन्दर आंख–कान सम्वाद, यौवन जरा सवाद,
(ख) लावण्यसमय, कर–सवाद (१५७५) रावण–मन्दोदरी सवाद
गोरी–सावली गीत।
(ग) हीरकलश, जीभ–दात–सवाद (१६४३),
मोती–कपासिया सवाद (१६२६)
(घ) नरपति जिह्वा–दात सवाद, सुखड़–पचक सवाद (१६ वी शताब्दी)
(ङ) श्रीधर रावण–मदोदरी–सवाद (१५६५)।

(उ) कक्का

२६ ३। कक्का उन रचनाओं को कहते हैं जिनमें वर्णमाला के बावन वर्णों में से प्रत्येक वर्ण से रचना का प्रारम्भ किया जाता है। कक्का बारहखडी परक रचनायें तेरहवीं सदी से उपलब्ध होती हैं।[1]

(ऊ) स्तवन

३० ३। स्तुतिपरक काव्यों को स्तवन कहा जाता है। ऐसे काव्यों को स्तुति, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती और नमस्कार भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध तीर्थंकरों महापुरुषों, तीर्थों, साधुओं और महासतियों आदि से होता है।[2]

(ए) टब्बा और बालावबोध

३१ ३। मूल रचना के स्पष्टीकरण हेतु पत्र के किनारों पर टिप्पणियां लिखी जाती है उन्हें टब्बा कहते हैं और विस्तृत स्पष्टीकरण को बालावबोध कहा जाता है।

---

१ – प्राचीन गुर्जर काव्य–सग्रह।
२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० माहेश्वरी पृ० २४५।

(ऐ) ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य

३२ ३। जैन कवियों ने धार्मिक विषयों के साथ ही ज्योतिष वास्तुशास्त्र आयुर्वेद आदि शास्त्रीय विषयों पर भी काव्य रचना की है। हीरकलश कृत जोइस हीर[1] शकुन सोलही[2] आदि अनेक ग्रन्थ शास्त्रीय विषयों पर लिखित उपलब्ध होते हैं।

१ "डिंगल" का नामकरण—

३३ ३। डिंगल राजस्थानी काव्य की एक विशेष शैली है। डिंगल का विकास प्राचीन मरु-भाषा के आधार पर हुआ और कालान्तर में इस शैली को राजस्थान के प्राय समस्त भागों के कवियों ने अपनाया। डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं—

१ डा० हरप्रसाद शास्त्री ने डिंगल शब्द का सम्बन्ध डगल' से जोड़ा है और डगल का अर्थ मिट्टी का ढेला माना है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

दीसे जगल डगल, जेथ जल बगल चाटे।
अनहुता गल दिये, गला हुता गल काटे॥

शास्त्री जी ने इन पंक्तियों का लेखक चौन्हवी शताब्दी का बाल्हा चारण लिखा है।[3] वास्तव में यह छन्द १७ वी सदी में हुए कवि अल्लू जी का है और उनके छप्पय का एक अंश ही है। पूरा छप्पय शुद्ध रूप में इस प्रकार है—

दीसे जगळ-डगळ, जेथ जळ वगळा चाटै।
अणहूता गळ दिये, गळा हूता गळ काटै॥
मरुडगळागळ माहि, ग्वाळ ह्वै गळो दिखाळै॥
गळी डाळ फळ गजी गजी डाळा फळ गाळै॥
नगळै असुर सुर नाग नर, आपण चे कुळ उघरे।
अनंत रे हाथ मगळ-अमगळ, कई भगळ विद्या करे॥

इस छप्पय का अर्थ निम्नलिखित है।

---

१ — भास्कर किरण, दो भाग, ४।

२ — अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३ — प्रिलिमिनेरी रिपोर्ट आन दी आपरेशन इन सर्च आफ मेन्युस्क्रिप्ट्स आफ बार्डिक क्रोनिकल्स, १९१३, पृ० १५।

जहा जगल और मिट्टी के ढेले दिखाई देते हैं वहा ईश्वर वगलो तक पानी चढा देता है। वह भूखो को भोजन देता है और किसी के गले से भोजन निकाल लेता है। कठिनाई के समय ईश्वर ग्वालरूप धारण कर मार्ग-दर्शन करता है। वह गली (सूखी) डालियो पर फल लगाता है और फलयुक्त डालियो को सुखा देता है। वह सुर असुर नाग और नर को निगल जाता है तथा अपने भक्तो का उद्धार कर लेता है। मगल-अमगल सब ईश्वर के हाथ मे है, वह अनेक इद्रजाल की क्रियाए करता है अथवा इद्रजाल की क्रियाए करने मे कोई लाभ नही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने ईश्वर की शक्तिमत्ता का ही इस छद में चित्रण किया है। इसमे कहीं भाषा का नाम अथवा प्रसंग नही है। इस छद मे शास्त्री जी के यह लिखने का कोई आधार ही नही है— इससे स्पष्ट है कि जगल देश अर्थात् मरु-देश अथवा मारवाड जा कि प्राचीन कुरु जगल है की भाषा डगल कही गई।[1]

(२) डा० श्यामसुदर दास ने लिखा है कि जो लोग ब्रज भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और इससे भेद करने के लिए मारवाडी भाषा का उसी ध्वनि मे घडा हुआ डिंगल नाम पडा।[1] वास्तव मे डिंगल का साहित्य ब्रजभाषा साहित्य से अधिक प्राचीन है इसलिए केवल अनुमान से पिंगल के आधार पर डिंगल शब्द का प्रचलन मानना युक्तिसंगत नहीं है।

३ डा० तसीतोरी ने लिखा है कि डिंगल एक विशेषण मात्र है जिसका अर्थ "अनियमित" होता है। पिंगल अर्थात् ब्रज भाषा परिष्कृत भाषा मानी गई और इसके सामने डिंगल अपरिष्कृत अथवा गवारू भाषा रही।[2]

डा० तेसीतोरी ने अपने मत के आगे स्वय ही "सभवत" लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मत उनका अनुमान मात्र है। डिंगल वास्तव मे शिक्षित चारणो द्वारा अपनाई गई होती है। चारणो का सम्मान राजदरबारो में भी रहा है। ब्रज भाषा की भांति डिंगल में भी अलंकार, छन्द और रसादि के नियमों का पालन होता रहा है। डिंगल का व्यवहार शिष्ट समाज में होता रहा है। इस प्रकार डा० तसीतोरी का अनुमान आधारहीन है।

४ श्री गजराज ओझा के मतानुसार "ड वर्ग की प्रधानता होने से इसका नाम डिंगल हुआ।[3]

---

१ – हिन्दी शब्द-सागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ०, २८।

२ – जनल एण्ड प्रोसीडिंग्स आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल वोल्यूम १० पृ० २६३।

– डिंगल भाषा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन सस्करण, भाग १४, बनास संवत् १९९०, पृ० १२७-१४८।

!

किसी वर्ण की प्रधानता होने के आधार पर भाषा का नामकरण नहीं होता। साथ ही यह मान लेना भी अनुचित है कि डिंगल में 'ड' वर्ण की प्रधानता है। उदाहरणस्वरूप महाराज पृथ्वीराज के सुप्रसिद्ध डिंगल काव्य 'वेलि' का नि न पंक्तियां देखी जा सकती हैं—

> सकुडित समसमा स था समयै ,
> रति वाञ्छिति रुक्मणि रमणि ।
> पथिक वधू द्रिठि पत्व पंखिया ,
> कमल पत्र सूरिज किरणि ॥ [१]

वास्तव में श्री गजराज ओझा का मत उनकी कल्पना मात्र है।

५ श्री जुगलसिंह खीची ने डिंगल का 'ट'कार बहुला मानते हुए डिंगल की व्युत्पत्ति कल्पित की है।[२] श्री ओझा के मत के विषय में प्रकट की गई उक्त समीक्षा के अनुसार श्री खीची का मत भी मान्य नहीं हो सकता।

६ श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल "ड° डिम + गल से बना है। 'डिम' का अर्थ डमरू की ध्वनि और 'गल' का गले से तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रणचंडी का आह्वान करती है तथा वीरों को उत्साहित करने वाली है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम डिम की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई।' [३]

वीर रस के देवता महादेव न होकर इन्द्र माने गये हैं। श्री मोतीलाल जी के मतानुसार— 'महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भांति उत्साहवर्द्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबन्धन तो बिल्कुल युक्तिशून्य और हास्यास्पद है।' [४]

७ श्री जगदीश सिंह गहलोत के मतानुसार "वह डिंगल शब्द डिंग और गल शब्द से मिलकर बना है। इसका अर्थ ऊँची बोली है। क्योंकि इस भाषा के कवि उच्च स्वर से अपनी कविता का पाठ करते हैं। ब्रज भाषा की कविता में ध्वनि उच्च नहीं होता।' [५]

[१] सम्पूर्ण डिंगल काव्य ऊँचे स्वर में नहीं पढ़ा जाता, साथ ही उच्च स्वर और निम्न स्वर के आधार पर किसी भाषा शैली का नामकरण करना खींचतान करना है।

---

१ – छंद सं० १६२ सं० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर पृ० ३४।
२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य की झांकी साहित्य-सदन, जुलाई १९५४।
३ – ना० प्र० प० भाग १४, पृ० २५६।
४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, पृ० २५।
५ – राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ११–१२।

८ मुंशी देवीप्रसाद ने भी डिगी अथवा डिगा का अर्थ ऊंचा मानते हुए इन्हीं शब्दों के आधार पर डिंगल की व्युत्पत्ति निश्चित करने का प्रयत्न किया है।[1] श्री गहलोत के उक्त मत की भांति मुंशी जी का मत भी निरी कल्पना पर आधारित है।

९ श्री मोतीलाल जी के मतानुसार 'डिंगल शब्द डींगल का परिवर्तित रूप है इसकी उत्पत्ति डींग शब्द के साथ ल प्रत्यय जोड़ने से हुई है। और इसका अर्थ है डींग से युक्त अर्थात् अतिरंजनापूर्ण।'[2]

डिंगल शब्द में 'ल' प्रत्यय नहीं किंतु 'इल' प्रत्यय है। अतिरंजना से किसी भी प्रकार का साहित्य अछूता नहीं होता। इसलिए यह मत भी कल्पना पर आधारित प्रतीत होता है।

१० गिरीशसिंह बाहरपत्य के अनुसार डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति "डीङ विहायसा गती" से हुई है। यह 'डी' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'उड़ने वाली'। बदरीदान जी कविया और सत्यदेव जी आढ़ा भी इस मत के प्रतिपादक हैं। यह कविता उड़ने वाली कहलाती है क्योंकि यह ऊँचे स्वर से पढ़ी जाती है।

(११) उक्त मत का समर्थन करते हुए उदयराज उज्जवल कहते हैं "पिंगल भाषा गंगा यमुना के निकटतम प्रदेशों की भाषा है जो साहित्य शास्त्र के नियमों की शृंखला में जकड़ी हुई है। अतः डिंगल के कवि पिंगल को "पांगली (पंगु) भाषा" कहते हैं और ठीक इसके विरुद्ध में डिंगल भाषा को उड़नेवाली भाषा कहते हैं। डिंगल में साहित्य शास्त्र के बंधन प्रायः नहीं हैं और छंदों का अधिक विस्तार न होने से कवि की इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग होता है। इस कारण उनकी घटत बढ़त सरलता से हो सकती है। डगल शब्द इन विशेषताओं का सूचक है। इसी से डिंगल बना है।[3] श्री उदयराज जी ने 'डगल' के निम्न लिखित अर्थ बताये हैं—

(अ) डग = पांखें। ल = लिए हुए। पांखें लिए हुए = पांखों वाली = उड़नवाली = स्वतंत्रता से चलने वाली।

(आ) डग = लम्बा कदम = तेज चाल। ल = लिए हुए = तेज चाल वाली।

(इ) डग्गल = ढीला जिसके अंग या जोड़ दृढ़ता से गठे हुए नहीं होते, ढीले होते हैं, उसको भी डगल या डगलो या डगला कहते हैं। डिंगल भाषा भी पिंगल के समान नियमों से सुगठित नहीं है।

---

१ — श्री मारवाड़ी मंच, भाट और चारणों का हिन्दी भाषा संबंधी काम, पृ० २०५।
२ — रा० भा० और सा० पृ० २७ २८।
३ — राजस्थान भारती भाग २, भाग १९४९, पृ० ४२ ४८।

(ई) डगल — रुई से भरा हुआ शीतकाल मे पहनने का वस्त्र विशेष। यह ढीला होने से डगल, डगलो, या डगला कहलाता है जो शरीर को चलने फिरने व मुडने की स्वतन्त्रता का नही रखता, इसी प्रकार डिंगल भाषा में कवि की गति स्वतन्त्र रहती है।

इस मत का न मानने के कई कारण हैं। डिंगल में काव्य शास्त्रीय नियम पिंगल की अपेक्षा सरल नही होते। डगल का डिंगल अर्थ यथार्थ न होकर कल्पना ही माना जा सकता है।

१२ डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इस विषय में लिखा है, 'मध्ययुग की मारवाडी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धीय साहित्यिक भाषा डिंगल भी प्रकट हुई।[1] राजपूताने के भाट और चारणों ने पिंगल की अनुकारी एक नई कवि भाषा मारवाडी के आधार पर बनाई जो डींगल या डिंगल नाम से अब परिचित है।[2]

डिंगल कविता पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और डिंगल तथा पिंगल दोनो ही नाम एक साथ प्रचलित हुए हैं। ऐसी अवस्था मे यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि डिंगल और पिंगल मे से कौन शब्द किसके आधार पर बना है।

१३ श्री गणपतिचन्द्र ने लिखा है, "राजस्थान मे बहुत पहले कोई डगल नाम का अत्यन्त छोटा सा प्रदेश था जो अब शायद इतिहास के मत के कारण लुप्त हो गया है। इसी डगल के रहने वालो का भाषा डिंगल कहलाई।" डा० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा उद्धृत दोहे के विषय में श्री गणपतिचन्द्र ने लिखा है, "दोहे के अर्थ से स्पष्ट है कि लेखक का अर्थ सिवा किसी प्रदेश विशेष के नाम से और कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता है।"[3]

श्री हरप्रसाद शास्त्री की भाँति श्री गणपतिचन्द्र ने भी सम्बन्धित पूरे छन्द को देखने और उसके तात्पर्य को समझने का प्रयत्न नही किया है। राजस्थान में किसी डगल प्रदेश का होना और उसकी भाषा डिंगल के नाम से प्रसिद्ध होना प्रमाण शून्य है।

१४ श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखा है 'डिंगल केवल अनुकरण शब्द है। काफिया न मिलेगा तो बोझो तो मरेगा" की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना दिया गया है। —डिंगल एक यदृच्छात्मक शब्द है, डित्थ आदि की तरह इसका कोई अर्थ नही है।

श्री गुलेरी जी का मत सर्वथा अनुमानाश्रित है।

१५ श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने डिंगल के विषय में लिखा है, "पिंगलानुमोदित

---

१ — राजस्थानी भाषा राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर पृ० ५८।
२ — वही पृ० ६५।
३ — साहित्य-सदेश, आगरा, मार्च १९५१।

छन्दों में लिखी गई कविता की भाषा पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के वजन पर पिंगल के छन्दों से भिन्न गीतों में लिखी कविता की भाषा का डिंगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिंगल शब्द जैसा कि गुलेरी जी कहते हैं—निरर्थक है और पिंगल के वजन पर बन गया है।"[1]

उक्त मत के विपरीत भी स्वामी जी ने यह भी लिखा है—"कुशललाभ रचित पिंगल शिरोमणी ग्रन्थ में उडिंगल नागराज का एक छन्दशास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है। —जब डिंगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक ज्ञात पड़ा और पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गई। यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है।"[2]

पिंगल के वजन पर डिंगल शब्द प्रचलित होने के विषय में पहले लिखा जा चुका है कि कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि डिंगल शास्त्रानुमोदित पिंगल से भी प्राचीन काव्य शैली है। पिंगल नागराज के अनुसार उडिंगल नागराज की स्थापना करना और उसी उडिंगल के आधार पर डिंगल की कल्पना का भी कोई ठोस कारण नहीं ज्ञात होता। साथ ही "अथ उडिंगल नाम माला लिख्यते" के स्थान पर 'अथ उडिंगल नाम माला" पाठ भी ग्रहण किया जा सकता है।[3]

१४ : ३ : किसी ठोस और अकाट्य प्रमाण के अभाव में "डिंगल" नाम के विषय में प्रकट किये गये उक्त मत स्पष्टतः कल्पना पर आधारित प्रतीत होते हैं और 'वाग्विलास' के उदाहरण मात्र हैं। 'डिंगल' शब्द के विषय में अन्य अनेक कल्पनाएं प्रस्तुत की जा सकती हैं जैसे—हमारा प्राचीन वैदिक साहित्य षडंग युक्त अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष समन्वित माना गया है—

> सिक्षा कल्पहि जानिये, अो व्याकरण निरुक्ति।
> छन्द नाम वरनत सुकवि, पुनि जोतिष स्जुक्ति॥
> वेद पढन की विधि सबै, सिक्षा देत लखाय।
> सब करमन की रीति जो, कल्पहि ते दरसाय॥
> शब्द शुद्धाशुद्धि को ज्ञान व्याकरण जानि।
> कठिन पदन के अर्थ को, कहै निरुक्ति बखानि॥
> अक्षर मात्रा वृत्ति को, ज्ञान छन्द सो होय।
> जोतिष काल ज्ञान इमि, वेद षडंग जोय॥[4]

---

१ — राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा॰ हीरालाल जी माहेश्वरी, पृ॰ १६।
२ — राजस्थानी साहित्य, एक परिचय, पृ॰ १२-१३।
३ — पिंगल सिरोमणी, श्री नारायणसिंह भाटी, परम्परा प्रकाशन राजस्थानी शोध-संस्थान जोधपुर, पृ॰ १४५।
४ — तुलसी शब्दार्थ प्रकाश, श्री कृष्णानन्द व्यास, पृ॰ ४३।

१५ ३। पडगो से युक्त साहित्य प्रारम्भ मे पडगल कहा गया और कालांतर में भाषा-विज्ञान के परिवर्तन सम्बंधी नियमानुसार प्राप्ति व्यजन "प" का लोप हो कर डिंगल रूप प्रचलित हुआ। सम्भव है, यह कल्पना कालांतर मे प्राप्य किसी प्रमाण के आधार पर साकार रूप धारण कर ले। डिंगल" शब्द के मूल मे "डिंगो" और "डींगी" अर्थात् बडा और बडी, मोटा और मोटी शब्दों की कल्पना भी हो सकती है, जिससे इसका महत्व प्रतिपादित होता है।

२ डिंगल काव्यों का वर्गीकरण

(१) चरितनायकों के आधार पर—

(अ) रासो—रायमल रासो, रतन रासो, राणा रासो, सगतसिंह रासो, महाराजा सुजानसिंह रासो, इत्यादि।

(आ) प्रकास—राज प्रकास, सूरज प्रकास भीम प्रकास, रतन जस प्रकास, कीरत प्रकास, इत्यादि।

(इ) विलास—राजविलास, जगविलास रतन विलास, विज विलास, जस विलास, भीम विलास इत्यादि।

(ई) रूपक—रघुनाथ रूपक, राज रूपक, रतन रूपक महाराज गजसिंहजी रो रूपक, गोगादे रूपक, राव रिणमल रो रूपक, इत्यादि।

(उ) वचनिका—अचलदास खीची री वचनिका, राठोड रतनसिंह महेसदासोत री वचनिका इत्यादि।

(२) छंदों के आधार पर रखे गये ग्रंथों के नाम—

(अ) नीसाणी—गोगाजी चहुवाण री नीसाणी, राठोड अजबसिंघ रणसिंघोत री नीसाणी आंबेर रा महाराजा प्रतापसिंह जी री नीसाणी, राव लखार जी री नीसाणी नीसाणी वीरभाण री, इत्यादि।

(आ) झूलणा—सोढा रा गुण झूलणा राजा राजसिंघ रा झूलणा, अमरसिंह जी रा झूलणा, राव सुरताण देवडे रा झूलणा, इत्यादि।

(इ) झमाल—वीरमवत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल झमाल जोरसिंघ चापावत री, झमाल आउवा री इत्यादि।

(ई) गीत—खीमसी रा गीत, पवारा रा गीत, जाडेचा रा गीत, राठोड रामसिंघ जी रा गीत, राजा रायसिंघ जी रा गीत, इत्यादि।

(उ) कुंडलिया—हाला झाला रा कुंडलिया, समरथदास रा कुंडलिया, आदि।

(ऊ) कवित — महाराजा प्रथीसिंह जी रा कवित, पंवार प्रसराज रा कवित्त, राठौड़ रतनसा रा कवित्त, महाराजा गजसिंह जी रा निरवाण रा कवित, चहुवाण सावलदास जी करमसिंघजी रा कवित्त, इत्यादि।

(ए) दूहा— पाबूजी रा दूहा राव अमरसिंह जी रा दूहा, मालैंदूजाणी रा दूहा सांगे राणे रा दूहा, हमीर राणे रा दूहा, समरसी चहुवाण रा दूहा, इत्यादि।

(ऐ) वेल— राजकुमार मनोपसिंह जी री वेल, राजा रायसिंघ जी री वेल, राणे उमेसिंघ जी री वेल, राठौड़ देईदास तिावत रा वेल राजा सूरजसिंघ जी री वेल, रुपादे री वेल आदि।

(ग) प्रकीर्ण और शास्त्रीय—

(अ) देश-भक्ति, देशों का नैसर्गिक वर्णन
(आ) अश्व-प्रशंसा
(इ) उष्ट्र-प्रशंसा,
(ई) शस्त्र-प्रशंसा,
(उ) शृ गार रस की प्रकीर्ण कविताएं
(ऊ) सिलोका,
(क) धर्मशास्त्र,
(ख) ज्योतिष,-शास्त्र,
(ग) शकुन शास्त्र,
(घ) शालिहोत्र,
(ङ) वृष्टि विज्ञान,
(च) तत्व ज्ञान,
(छ) नीतिशास्त्र,
(ज) आयुर्वेद शास्त्र, और
(झ) कोक शास्त्र, आदि।[1]

(ग) पिंगल

३७ १। पिंगल नाम के एक आचार्य हुए जिन्होंने 'छन्द सूत्र' ग्रन्थ की रचना की। कालांतर में छन्द शास्त्र को आदि आचार्य के नाम से पिंगल कहा गया।[2] इसी छन्द शास्त्र को कतिपय विद्वानों ने ब्रजभाषा का द्योतक मान लिया—' राजस्थान में ब्रजभाषा

१ — क राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया पृ० ५०-५१।
ख राजस्थानी शब्द कोष, सपादकीय प्रस्तावना स० श्री सीताराम जी लालस पृ० (११८-११९)।

२ — हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ४५०-५१।

के लिए पिंगल नाम प्रचलित है।'[१]

पिंगल शब्द का भाषा-शैली के रूप में प्राचीनतम व्यवहार संवत् १७२३ ६५ के समय माना जाता है[२]

३७ ३। पिंगल को भाट भाषा भी कहा गया है और इसके प्रमाण में यह दूहा उद्धृत किया गया है—

चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकास।
गुण सख्या-कल-वरण गण, यारो करो उजास॥[३]

३८ ३। पिंगल से तात्पर्य ब्रज भाषा का छन्द शास्त्र मानना किसी सीमा तक उचित कहा जा सकता है किन्तु पिंगल का अर्थ ब्रज भाषा लेना उचित नहीं क्योंकि पिंगल का सम्बन्ध मारवाड़ी से भी जोड़ा गया है—'ग्रथ पिंगल सिरोमणि मारवाड़ी भाषा लिख्यते[४]

उक्त पिंगल सिरोमणि ग्रन्थ में मारवाड़ी अर्थात् राजस्थानी काव्यशास्त्र का विवेचन है।

३९ ३। पिंगल शब्द का व्यवहार भाषा शैली विशेष के रूप में अठारहवीं सदी से ही उपलब्ध होता है—

१—डिंगलिया मिलिया करे, पिंगल तणो प्रकास।
संस्कृती व्है कपट सज, पिंगल पढ़िया पास॥ —बांकीदास[५]

२—और भी आसीयू में कवि बंक।
डिंगल पिंगल संस्कृत फारसी में निसक॥ —बुधाजी[६]

३—बदन सुकवि सुत कवि मुकुट, अमरगिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये धुरंधर चंडि दान॥ —सूरजमल[७]

४—पिंगल डिंगल पटु प्रकट, गहरो ब्रह्म सुग्यान।
बदनसिंह रे सुत विदित, दाखो चंडीदान॥ —मुरारीदान[८]

---

१ – श्री मोतीलालजी, मेनारिया राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १३।
२ – गुरु गोविन्दसिंह, विचित्र नाटक, दशम ग्रन्थ, प्रकाशक श्री गुरुमत प्रेस, अमृतसर, पृ० ११७।
३ – श्री उदयराज उज्ज्वल, डिंगल शब्दकी व्युत्पत्ति, राजस्थान भारती, भाग २, अंक २।
४ – पिंगल सिरोमणी, परम्परा प्रकाशन राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, पृ० १७।
५ – बांकीदास ग्रन्थावली, भाग दूसरा पृ० ८१।
६ – बांकीदास ग्रन्थावली, भाग तीसरा, पृ० १०, भूमिका।
७ – वंश भास्कर, प्रथम राशि, चतुर्थ मयूख, पृ० ४०।
८ – डिंगलकोष पृ० १६।

४० ३। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुख्यत चारण कवियों द्वारा ही भाषा शैली के रूप मे *पिंगल* शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्य कवियों ने ब्रज भाषा को भाखा (भाषा) अथवा ब्रज भाषा कहना ही उचित समझा है—

> १—ताही ते यह कथा यथा मति भाखा कीनी।[1]
> २—सुरभाषा ते अधिक है, ब्रजभाषा सो हेत।
> ब्रजभूषन जाको सदा, मुख भूषन करि लेत ॥[2]

केशवदास कह छ (कहे छे) जे माहरी मति सस्कृत वाणी ने विषे बुद्धि विशेष छे तो पिण हुं भाषा रस ने विषे लोलपी छु ते कहनो परे जिम देवता न देवलोक माहे अमृत थका पिण देवांगना ना अधर ना रस नी बाछा अर अधर रस नी घणी इच्छा तिम जपिण सस्कृत भाषा जाणु छु तो पिण ब्रजभाषा नी वाछा घणी है मुझने ॥"[3]

४१ ३ पिंगल का पर्याय नाग भी है। प्रसिद्ध है कि शेषनाग अपनी रक्षा के लिये गरुड को छन्दशास्त्र सुनाते हैं और अन्त में "भुजंग प्रयात" सुनाते हुए जल मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार छन्द शास्त्र के आदि आचार्य शेषनाग अथवा नागराज भी कहे जाते हैं। पिंगल की भांति नागबानी के उल्लेख भी मिलते हैं।[4] भिखारीदास ने ब्रजभाषा मेल के साथ ही नागभाषा लिखा है[5] जिससे ज्ञात होता है कि नागभाषा ब्रज से भिन्न है।

४२ १। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मुख्यत राजस्थान के चारण कवियों ने भाषा को राजस्थानी काव्य-शैली को पिंगल कहा क्योंकि पिंगल में डिंगल-गीत जैसे छन्दों के स्थान पर प्राचीन परम्परागत छन्दों की ही अधिकता रही। पिंगल साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) चरित्र काव्य—(१) रासो काव्य, (२) अन्य काव्य।
(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य।
(ग) भक्ति काव्य—(१) कृष्ण भक्ति काव्य, (२) राम भक्ति काव्य,
(३) निर्गुण और अन्य काव्य।

---

१ – नन्ददास, रासपंचाध्यायी।
२ – रसिक प्रिया की समरथ कृत टीका (सं० १७५५), दानसागर ग्रन्थ भण्डार बीकानेर पत्र सं० १७।
३ – केशव कृत निजनस की टीका (सं० १७६२ से पूर्व) अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति।
४ – (क) मिर्जाखान कृत ब्रजभाषा व्याकरण 'तुहफतुलहिन्द'।
(ख) हिन्दी साहित्य कोष भाग १ पृ० ४५१।
५ – हिन्दी साहित्य कोष, भाग १ पृ० ४५१।

(घ) रीति काव्य—(१) रस (२) अलंकार (३) छंद (४) नायिकाभेद, षट ऋतु वर्णन, नखशिख वर्णन आदि।

(ङ) नीति काव्य,

(च) फुटकर।[1]

(घ) भक्ति एवं सन्त काव्य

४३ ३। भक्त कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएं प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत कीं। राजस्थानी भक्त कवियों में चारणों और राजपूतों का आधिक्य रहा, तदनुसार इन कवियों ने विविध प्रकार की छंद शैलियां प्रयुक्त कीं। वीर रस के लिये प्रयुक्त अधिकांश छंद शैलियों को भक्त कवियों ने अपनी भक्ति भावना प्रकट करने हेतु सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया। उदाहरण स्वरूप वीर रस के लिये प्रयुक्त दूहा, गीत, छप्पय, और नीसाणी आदि छंद शैलियां राजस्थानी भक्त कवियों द्वारा भी अपनाई गईं क्योंकि इनकी काव्य शास्त्रीय शिक्षा राजस्थानी परम्परानुसार ही सम्पन्न हुई थी।

४४ ३। राजस्थानी सन्त कवियों ने अपनी रचनाएं मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत कीं—

(अ) साखी, (आ) सबद (इ) परिचयी (ई) भक्तमाल, (उ) मंगल विवाहलो
(ऊ) ककहरा बारहखड़ी (ए) श्लोको, आदि।

(अ) साखी—साखी का मूल रूप साक्षी है। साक्षी का अर्थ आंखों देखी बात का वर्णन करना अर्थात् गवाही देना होता है। साखी परक रचनाओं में सन्त कवियों ने अपने अनुभूत ज्ञान का वर्णन किया है। साखी परक रचनाएं, अधिकांश में दूहा छंद में वर्णित हैं। राजस्थानी में सोरठा दूहे का ही एक भेद है इसलिए साखियों में सोरठा छंद का भी व्यवहार हुआ है। साखियों में चौपाई चौपई, छप्पय आदि का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु बहुत कम।

साखियों का विषयवार वर्गीकरण भी किया गया है। जैसे कबीर की साखियां गुरुदेव को अंग, रस को अंग, बेलि को अंग, सुन्दरी को अंग, आदि ५९ अंगों में विभक्त हैं। साखियां सन्त साहित्य में महत्वपूर्ण मानी गई हैं, जिसके विषय में कहा गया है—

साखी आखी ज्ञान की समुझ देख मन माहिं।
बिन साखी संसार में झगरा छूटत नाहिं॥

सन्त कवियों ने शास्त्रीय नियमों का कठोरता पूर्वक पालन नहीं किया परिणाम स्वरूप साखियों में मात्राएं अनियमित रूप में मिलती हैं—

---

१ – राजस्थान का पिंगल साहित्य पं० मोतीलाल जी मेनारिया, पृ० २४।

मेरा मुझमे कुछ नही, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सोपता, क्या लागे मेरा ॥[१]

उक्त दोहे मे प्रथम पंक्ति में एक मात्रा अधिक है और द्वितीय पंक्ति में एक मात्रा कम है।

साखी के विषय में कबीर के उक्त साखी विषयक दोहे की टीका लिखते हुए महात्मा पूरण ने लिखा है 'साखी कहिये साक्षी, सो साखी बिना ज्ञान अंधा है, याके वास्ते ज्ञान की साखी साक्षी से गुरु कहते हैं कि अपने मन मे विचार करके देखता नही कि बिना साखी से ससार का झगरा टूटता नही।'

(आ) सबद— संत काव्य मे 'सबद' से तात्पर्य गेय पदों से है। सबद' मे प्रथम पंक्ति 'टेक' अथवा स्थायी होती है, जिसको गाने मे बारबार दोहराया जाता है। राजस्थान में विभिन्न संत सम्प्रदायो के अनुयायी रातीजगा आयोजित करते है जिनमे रात भर जागते हुए ढोलक मजीरा और तम्बूरा आदि वाद्यो के साथ सामूहिक रूप मे सबद गाते हैं। सबद' का शुद्ध रूप शब्द होता है किन्तु संत-काव्य मे और भजन मण्डलियो में यह गेय पदो के रूप मे रूढ हो गया है। प्राय सभी संत-कवियो ने शब्दो की रचनाएं की है जिन्हें विभिन्न लौकिक और शास्त्रीय रागो मे गाया जाता है।

(इ) परिचयी—परिचयी से मूल तात्पर्य परिचय है। अनेक संतो के विषय में सम्बन्धित शिष्यो प्रशिष्यो ने पद्यात्मक रचनायें की, जिन्हे परिचयी कहा जाता है। परिचयी परक काव्यो में सन्तो के जीवन और कार्यों के विषय में अनेक लौकिक और अलौकिक घटनाओं का समावेश होता है। परिचयी-काव्यो मे अनन्तदास कृत 'भक्त रैदास की परिचयी', 'मीरा परिचयी' और स्वामी रामस्वरूप कृत "चरणदास की परिचयी" (वि० स० १८४०-४१) आदि मुख्य हैं।

(ई) भक्तमाल—अनेक संत सम्प्रदायो की भक्तमालें उपलब्ध होती हैं। नाभादास जी ने अपनी भक्तमाल मे सगुणोपासक भक्तो का वर्णन किया है। नाभादास कृत भक्तमाल की भांति राघवदास और ब्रह्मदास की भक्त माला में दादू सम्प्रदाय के भक्तो का वर्णन है। निरंजनी और रामस्नेही आदि अन्य अनेक संत सम्प्रदाय की भक्तमालें भी उपलब्ध होती हैं।

(उ) मगल-विवाहलो—सन्त कवियो ने अनेक मगल परक काव्यो की रचनायें की। कबीरदास जी ने भी मगल शब्द लिखे। संत सम्प्रदायो में विवाह सम्बन्धी मगल रचनाएं आध्यात्मिक पक्ष में लिखी गईं और इनमें आत्मा परमात्मा के विवाहो का वर्णन है।

---

१ — कबीर की साखियां निहकर्मी पतिव्रता को अंग।

(ए) ककहरा बारहखड़ी—ककहरा बारहखड़ी में वर्णमाला के क्रम से उपदेशात्मक रचनाए लिखी गई हैं। कवि जायसी ने भी इस प्रकार की रचना 'अखरावट' के नाम से लिखी।

(ओ) सलोको—सलोका शब्द का शुद्ध रूप श्लोक है। संत कवियों ने स्फुट उपदेशात्मक छन्द लिखे जिन्हें सलोको कहा गया जैसे 'दादू जी रा सलोको'।

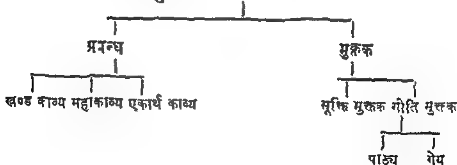
४५ ४। संत कवियों की रचनाओं के संग्रह को 'वाणी' नाम दिया गया है। यथा कबीरदास की वाणी, दादू वाणी, रज्जब वाणी आदि। इन वाणियों में साखी सबद आदि अनेक प्रकार की रचनाओं के संग्रह हैं।

(ङ) लोक काव्य

लोक काव्यों में प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य तथा मुक्तक के अन्तर्गत सूक्ति-मुक्तक और गीति मुक्तक का समावेश करना समीचीन होगा।

(च) आधुनिक काव्य

४६ ३। आधुनिक राजस्थानी काव्य में प्राचीन परम्परागत और नवीन पश्चिमी शैली से प्रभावित दोनों प्रकार की रचनायें हो रही हैं। आधुनिक राजस्थानी काव्य का वर्गीकरण निम्न प्रकारेण किया जा सकता है—



आधुनिक राजस्थानी काव्य उक्त सभी रूपों में थोड़े बहुत परिमाण के साथ लिखा जा रहा है।

(२) विवाह और विवाह सम्बन्धक रचनाएं

(क) विवाह-संस्कार

४७ ३। हमारे समाज का निर्माण अनेक मानव परिवारों से होता है और

समाज की पारिवारिक इकाई विवाह-सम्बन्ध पर ही आधारित होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह मानव-जीवन का एक विशेष संस्कार है जिसके द्वारा पति-पत्नी का पारस्परिक सामाजिक और धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होता है।

४८ ३। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि (उपसर्ग)+वह (धातु) में घञ प्रत्यय मिलकर हुई है। इसकी व्याख्या "दारपरिग्रह तज्जन्य व्यापार च" और "भार्यात्व सम्पादकज्ञान विवाह" अर्थात् स्त्री का परिग्रहण और तत्सम्बन्धी कार्य विवाह कहा गया है।[1]

विवाह के समानार्थी शब्द परिणय की व्युत्पत्ति परि (उपसर्ग) णी (धातु) के साथ ल्यप् प्रत्यय लगा कर की गई है। परिणय शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है, "परिणयन तन्नार्थे न० परिणयतेविवाहार्थत्वात् परिणीता इत्यादौ तत्र विवाहार्थविगम।" अर्थात् विवाह शब्द परिणय का समानार्थी शब्द है।[2]

४९ ३। वेस्टर मार्क के मतानुसार- विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला सम्बन्ध है जो प्रथा अथवा कानून द्वारा स्वीकृत होता है।[3] विवाह की व्याख्या करते हुए राबर्ट एच० लावी ने लिखा है- विवाह स्पष्टतः उन स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो काम सम्बन्धी संतोष के उपरान्त भी स्थिर रहते हैं तथा पारिवारिक जीवन के कारण बनते हैं।[4] गिलिन के मतानुसार 'विवाह एक प्रजननमूलक परिवार की स्थापना हेतु समाज द्वारा स्वीकृत विधि है।[5] इस प्रकार पश्चिमी विचारकों के मतानुसार मुख्यतः स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्धों को नियमित करने की दृष्टि से विवाह नामक विधि का प्रचलन हुआ। विवाह एक ऐसी विधि बन गई जिसके द्वारा स्त्री पुरुष को अपने यौन सम्बन्ध स्थापित करने की स्वीकृति समाज, राज्य और राज्य नियमों द्वारा मिल जाती है। विवाह के बिना स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्ध अपराध ही नहीं होते वरन् अधार्मिक भी होते हैं। विवाह के पश्चात् स्त्री पुरुष को पारस्परिक अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करना होता है। हिन्दू धर्म में सामाजिक के लिए ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ तथा नृयज्ञ सम्पन्न करना आवश्यक माना गया है और इसके लिये विवाह कर संतानोत्पत्ति करना अपेक्षित होता है। हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह का मूल उद्देश्य काम तृप्ति नहीं वरन् धर्मपालन है—'विवाह का एक मात्र उद्देश्य काम वासना की तृप्ति नहीं माना जाता था।'[6] श्री कापडिया के मतानुसार प्राथमिक रूप

१ – वाचस्पत्यम् चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी पृ ४८२१।
२ – वही, पृ० ४२-४७।
३ – दी हिस्ट्री आफ ह्यूमन मेरिज वो० १, पृ० २६।
४ – एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशियल साइन्सेज मेरिज, वो० १० पृ० १४६।
५ – कल्चरल सोशियालोजी पृ० ३३४।
६ – श्री के० एल० दफतरी दी सोशियल इन्स्टीट्यूशन इन एन्शियेन्ट इण्डिया १९४७, पृ १०।

म कर्तव्यों की पूर्ति के लिए ही विवाह है इसलिए विवाह का मूल उद्देश्य धर्म ही है।[1] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—

"पति का आदर्श वास्तव में पत्नी है इसलिए जब तक पुरुष पत्नी नहीं प्राप्त करता और सन्तान नहीं उत्पन्न करता तब तक वह पूर्ण नहीं होता।"[2]

भगवान रामचन्द्र को यज्ञ हेतु सीता जी के अभाव में उनकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी पड़ी थी। कालिदास के मतानुसार—

तद्दर्शनादभूच्छम्भोर्भूयान् दारार्थमादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूल कारणम्॥

अर्थात् कामदेव पर विजय पाने वाले शिव के समक्ष अरुन्धती आई तो उसको देखकर फिर की इच्छा विवाह करने की हुई क्योंकि पतिव्रता स्त्री ही धर्म सम्बन्धी क्रियाओं का मूल है।[3]

५१ ३। विवाह का धर्म के अतिरिक्त दूसरा उद्देश्य सन्तान प्राप्ति होता है। ऋग्वेद में अमृतत्व का उपभोग करने का साधन सन्तान बताया गया है—"प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्।"[4] अनेक मन्त्रों में पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा व्यक्त की गई है।[5]

५२ ३। हिन्दू जीवन में मुख्य संस्कार सोलह माने गए हैं—

(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन (४) जातकर्म, (५) नामकरण। (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन, (८) चूडाकर्म, (९) कर्णवेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ, (१२) समावर्त्तन, (१) विवाह, (१४) वानप्रस्थ, (१५) सन्यास, (१६) अन्त्येष्टि संस्कार।

(१) गर्भाधान —हिन्दू जीवन में गर्भाधान प्रथम संस्कार है। गर्भाधान के लिए स्त्री की अवस्था सोलह और पुरुष की अवस्था पच्चीस बताई गयी है—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलोऽभिषक॥[6]

---

१ – मैरिज एण्ड फेमिलि इन इण्डिया, १९५८ पृ० १६८।

२ – शतपथ ब्राह्मण, ५।२।१।१०।

३ – कुमारसम्भव ६।१३।

४ – ऋग्वेद संहिता, ५।४।१०

५ – ऋग्वेद संहिता १।९१।२० १।९१।१३ ३।१।१२३।

६ – सुश्रुत सूत्रस्थान, अ० ३५।

(२) पु सवन —पु सवन सस्कार गर्भाधान के पश्चात् द्वितीय अथवा तृतीय मास मे सम्पन्न होता है —

"अथ पु सवन पुरास्य दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ॥"[१]
यह सस्कार गर्भ का पुष्टि के लिए किया जाता है।

(३) सीम न्तो नयन — इस सस्कार के लिए चतुर्थ मास निश्चित किया गया है — चतुर्थे गर्भमास सीम तोन्नयनम्[२] एक दूसरे मत म सीमन्ता नयन सस्कार छठे अथवा आठवें मास मे सम्प न करना चाहिए—

"पु सवनवत्प्रथमग मासे षष्ठेऽष्टमे वा।"[३]

इस सस्कार मे गर्भवती को उत्तम सतान की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया जाता है — ओ वीरसूस्त्व भव, जीवसूस्त्व भव, जीव पत्नीत्व भव। [४]

(४) जातकर्म — गर्भवती की प्रसव-पीडा स लेकर-स तान जन्म तक के कार्य जातकर्म सस्कार के अ तगत सम्प न होते हैं। स तान का ज म होने पर उसको शुद्ध कर पिता अपनी गोद म लेता है और मन्त्रोच्चारण क साथ यज्ञवेदी क समीप जाकर स्वर्णशलाका स नवजात शिशु को थोडा घृत और मधु चटाता है।[५] तदुपरा त हवन कर स तान का दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है।

(५) नामकरण — शिशु ज म के पश्चात् ग्यारहवें दिन शिशु का नामकरण सस्कार होता है।[६] इस अवसर पर यज्ञ श्राद्ध और उत्सवादि होते हैं।

(६) निष्क्रमण — इस सस्कार मे बालक को अच्छे वस्त्र पहिना कर यज्ञवेदी के समीप ले जाया जाता है और यज्ञ के पश्चात् बाहर भ्रमण मे उसको सूर्य और चन्द्र के दर्शन कराए जाते हैं। यह सस्कार चतुर्थ मास में किया जाना चाहिए—

चतुर्थेमासि नि ष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।[७]

(७) अन्नप्राशन — अन्नप्राशन सस्कार शिशु ज म के छठे मास मे सम्पन्न होना चाहिए। इस समय पति पत्नी को थोडे भात म घृत दही और मधु मिलाकर बालक को देना चाहिए—

१ – पारस्कर १।१४
२ – आश्वलायन सूत्र १।१४।१।
३ – पारस्कर १।१५।१।
४ – गोभिलीय गृह्यसूत्र २।७।१३।
५ – आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१५।१।
६ – पारस्कर गृह्यसूत्र १।१७।१।
७ – पारस्कर गृह्यसूत्र १।१५।५ ६।

"षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् घृतौदन तेजस्काम"
दधिमधुघृतमिश्रितमन्न प्राशयेत ।"[1]

(८) चूडाकर्म —इस संस्कार को मुण्डन भी कहा जाता है। यह संस्कार शिशु जन्म के पश्चात् तीसरे वर्ष होना चाहिये— 'तृतीय वर्षे चौलम् ।'[2] इस संस्कार में बालक का मुण्डन किया जाता है। मुण्डन व स्नान के पश्चात् वस्त्र भूषणों से सज्जित कर पति पत्नी बालक को यज्ञवेदी के समीप लाते हैं। पति पत्नी यजमान व वृद्ध और गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

(९) कर्णवेध—यह संस्कार शिशु जन्म के तीसरे अथवा पांचवें वर्ष करने की विधि है— 'कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा ।'[3]

इस संस्कार के अवसर पर बालक को वस्त्राभूषणादि से सज्जित कर पति पत्नी यज्ञ संपादित करते हैं और किसी अच्छे वैद्य अथवा स्वर्णकार से बालक के दोनों कानों में छेद करवा कर उनमें सलाका पहनाते हैं।

(१०) उपनयन संस्कार —उपनयन संस्कार को यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का पंचमवर्ष में, क्षत्रिय का षष्ठ वर्ष में और वैश्य का अष्ठम वर्ष में उपनयन संस्कार होना चाहिये—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिन षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥[4]

यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर पति पत्नी मिलकर यज्ञ करते हैं और पुरोहित यज्ञविधि सम्पादित होने पर बालक को यज्ञोपवीत धारण कराता है।

(११) वेदारम्भ— बालक विद्याध्ययन प्रारम्भ करता है तब यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। पति पत्नी अपने बालक को गुरु के पास विद्याध्ययन हेतु भेजते हैं। गुरु गायत्री मन्त्र से आरम्भ कर वेदों की शिक्षा हेतु अनेक नियम विद्यार्थी को धारण करवाता है। विद्यार्थी इस संस्कार के पश्चात् पूर्णरूपेण गुरु के आधीन रहकर अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है।

---

१ – आश्वलायन सूत्र १।१६।१–३।
२ – आश्वलायन सूत्र १।१७।१।
३ – कात्यायन गृह्यसूत्र १।२।
४ – मनुस्मृति २–१७।

(१२) समावर्तन — यह संस्कार दीक्षान्त संस्कार भी कहा जाता है। वेदों के पूर्ण अध्ययन के उपरान्त हो यह संस्कार सम्पन्न करने का विधान है— 'विद समाप्ति वायनोत।'[1] विद्यार्थी इस संस्कार के पश्चात् विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त करता है और अपने घर लौटता है। घर पर पारिवारिक व्यक्ति उसके स्वागत में उत्सव आयोजित करते हैं।

(१३) विवाह — विद्या अध्ययन पूरा कर व्यक्ति का विवाह संस्कार किया जाता है। विवाह आठ प्रकार के होते हैं—(१) ब्राह्म (२) देव (३) आर्ष, (४) प्रजापत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राक्षस और (८) पिशाच।

(अ) ब्राह्मविवाह —ब्राह्मविवाह हेतु कन्या का पिता योग्य वर की खोज कर उसको अपने घर आमन्त्रित करता है और धार्मिक विधियों का पालन करते हुए विवाह में कन्यादान करता है। इस विवाह में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वर और वधू की माताओं और पिताओं का होता है। कन्या का बिना किसी प्रलोभन के योग्य वर का दान में दिया जाता है। दान प्राचीन काल मे केवल योग्य व अधिकारी व्यक्ति को ही दिया जाता था।

(आ) देव विवाह —देव विवाह के अन्तर्गत कन्या का विवाह यज्ञकर्ता के साथ किया जाता है। प्राचीनकाल में प्रत्येक हिन्दु परिवार मे यज्ञकर्ता यज्ञ करते थे। यज्ञकर्ता का कन्या के उपयुक्त समझा जाता था। यज्ञ के उपरान्त उसको कन्या दान दे दिया जाता। डॉ० के० एस० अल्तेकर के अनुसार— 'वैदिक यज्ञों के साथ साथ देव विवाह भी लुप्त हो गए हैं।'[2]

(इ) आर्ष विवाह — आर्ष विवाह में वर अपने ससुर को धार्मिक कार्यों की पूर्ति हेतु एक गाय और एक बैल अथवा इनके दो जोड़े देता था। प्राचीन काल में पशु मुख्यत गाय बैल विनिमय के विशेष साधन माने जाते थे। अनेक भारतीय आदिवासियों में वर का ओर से कन्या के पिता को गाय बैल देने की परिपाटी आधुनिक काल में भी प्रचलित है।

(ई) प्रजापत्य विवाह —प्रजापत्यविवाह मे वर और वधु को धार्मिक कृत्यों में पूर्ण रूपेण सम्मिलित रहने की प्रतिज्ञा करनी होती थी। अनेक अर्थों में प्रजापत्य व ब्राह्मविवाह समान हैं।

(उ) आसुर विवाह — आसुर विवाह में कन्या मूल्य के रूप मे वर अथवा वर का पिता वधु के पिता को धन देता है। कन्या के रूप और गुणों के अनुसार ही धन निश्चित किया जाता था। आधुनिक काल में भी विवाह की यह पद्धति आदिवासियों और अन्य जातियों में प्रचलित है।

(ऊ) गान्धर्व विवाह —गान्धर्व विवाह युवक और युवती की इच्छा और प्रेम पर

१ – आपस्तम्ब, १।२।१६।

२ – डा० ए० एस० अल्तेकर पोजीशन आफ वीमन इन हिन्दु सिविलाईजेशन १९५६, पृ० ८५।

आधारित है। माता पिता की स्वीकृति के बिना ही युवक और युवती प्रेम में बंध कर विवाह कर लें। यह बोधायन धर्मसूत्र में प्रशंसनीय माना गया है— 'गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषांस्नेहानुगतत्वात्।'[1]

राजा दुष्यन्त व शकुन्तला का विवाह भी गान्धर्व विवाह कहा गया है।

(ए) राक्षस विवाह :—युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्या का हरण किया जाता था और तब उसके साथ विवाह होता था। कन्या को युद्ध विजय के पुरस्काररूप में ग्रहण किया जाता था। इस प्रकार के विवाह में शक्तिशाली राजा युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्याओं का विवाह हेतु हरण करते थे। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह भी किसी सीमा तक राक्षस विवाह कहा जा सकता है।

(ऐ) पिशाच विवाह :—स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध मद्यपान अथवा अन्य किसी उपाय से सम्मोहन कर बलात् लाकर किये जाने वाले विवाह को पिशाच विवाह कहते हैं। इस प्रकार का विवाह निम्न-कोटि का माना गया है।

उक्त प्रकारों के विवाहों में ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य विवाह उत्तम कोटि के विवाह माने गये हैं। गान्धर्व विवाह मध्यम कोटि का है और आसुर, राक्षस, तथा पिशाच विवाह निम्न कोटि के माने गये हैं। ब्राह्म, प्राजापत्य और दैव विवाह कन्यादान के रूप में आर्ष और आसुर विवाह कन्या विक्रय के रूप में, गान्धर्व विवाह स्त्री पुरुष के पारस्परिक समझौते के रूप में और राक्षस तथा पिशाच विवाह शक्तिप्रदर्शन रूप में हैं।

हिन्दू विवाह का आदर्श उत्तम कोटि का है। विवाह को धार्मिक रूप में ही ग्रहण किया गया है। विवाह के धर्म-पालन, सन्तानोत्पत्ति और रति नामक तीन उद्देश्य प्रधान माने गये हैं। विवाह के अवसर पर यज्ञ आयोजित कर अनेक प्रकार की धार्मिक और सामाजिक प्रक्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं, तथा पवित्र अग्नि की साक्षी में मन्त्रों का उच्चारण धार्मिक कृत्यों के रूप में होता है। हिन्दू विवाह स्त्री-पुरुष के लिए एक पवित्र बन्धन है जिसके द्वारा वर और वधू को आजन्म अनेक कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक होता है।

(ख) विवाह-मङ्गल रचनाएं

५.२ .१. विवाह सम्बन्धी काव्य मुख्यतः निम्नलिखित नामों से लिये गये—

(अ) मंगल।

(आ) विवाहलउ विवाहलो, विवाह।

(इ) वेलि।

(ई) हरण।

(उ) परिणय।

---

१ — बोधायन धर्मसूत्र १। ११, १३। ७।

मगल काव्य —

५४ ३। मगल शब्द क अनेक अर्थ होते हैं—

१ मनोकामना पूरी होना, कल्याण और अभीष्ट सिद्धि होना,

२ सौर जगत का एक ग्रह,

३ सात वारो में से एक वार,

४ विष्णु,

५ अग्नि (हमीरनाममाला ८१, नागराज डिंगल कोष २७ अवधान नाम माला १२६)

६ डिंगल गीत छन्द का एक प्रकार,

७ मदिरो में देवी देवताओं के पट बन्द करने के लिये व्यवहृत शब्द-प्रयोग जैसे—"पाट मगल करना।"

८ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ईश प्रार्थना

९ एक प्रकार का घोडा जिसके कठ ललाट और सिर पर भवरी (चक्र) हो। यह घोडा मांगलिक कहा जाता है।

१० शुभ अवसरो पर गेय गीत,

११ रक्त वर्ण–(सूरजप्रकाश कविया करणीदान कृत भाग २ पृ० २१६)

मगल सम्बन्धी निम्न लिखित शब्द उल्लेखनीय हैं—

१ अष्टमगल— (सिंह, वृष, नाग, कलश, चामर, वैजयन्ती भेरी और दीपक अथवा ८ प्रकार के मोतियो की माला।

२ मगल कलश,

३ मगल पाठ (नान्दी पाठ),

४ मगल झळ (आग की लपट),

५ मगलणो (जलना अथवा जलाना),

६ मगल–धवल (विवाह के गीत)

७ मगलवाद (आशीर्वाद),

८ मगलवारी (मगलवार सम्बन्धी),

९ मगल वेला (शुभ वेला)।

१० मगल सूत्र (शुभ अथवा सुहाग का सूचक आभूषण अथवा सूत्र)।

११ मंगल स्नान (शुभ स्नान)।

१२ मगला (पार्वती, श्वेत दूब, पतिव्रता, देवी, अग्नि हल्दी विष्णु और प्रात कालीन प्रथम आरती)।

१३ मगलाचरण-मगलाचार-मगलारम्भ।

१४ मगलाव्रत (शिव और पार्वती सम्बन्धी व्रत)।

१५ मगला चौथ (किसी मास की मगलवार को होने वाली चतुर्थी)।

१६ मागल्य – (सुन्दर, साधु, बेल, नारियल, दही, सोना, चन्दन, सिंदूर)।

१७ मगली ढोल (विवाह के अवसर पर बजने वाला ढोल)।

१८ मागलिक वर (शुभ वर)।

१९ मगल छन्द, इसका दूसरा नाम अरुण छन्द है जिसका प्रयोग महाकवि तुलसीदास ने पार्वती मगल मे किया है।

२० मन्दिरो म रात के पिछले प्रहर की आरती "मगला आरती कही जाती है और इस समय गाये जाने वाली एक विशेष रागनी के गीतो को 'मगल' कहा जाता है।[1]

२१ शुभकामनाओ के साथ लिखी हुई रचनाओ को भी 'मगल" कहा जाता है। यथा मीरा मगल[2] और मरुधर-मगल।[3]

(आ) विवाहलउ, विवाहलो, विवाह —

५५ ३। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि उपसर्ग वह धातु और घञ प्रत्यय से मिलकर हुई है। विवाह शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'दारपरिग्रहे तज्जनके व्यापारे च। उद्वाह शब्दे, उपयम शब्दे चदृश्यम। 'भार्यात्वसम्पादकज्ञानम् विवाह इति उद्धा० रघु भार्यात्वस्वोपलक्षणतया निवेश। तेन नार्यो यात्रय "चरम सस्कारो विजातीय सस्कारो वा विवाह इत्यन्ये।'[4]

१– रावत जी प्रतापसिंहजी, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अक ३।

२– ले० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अक १।

३– ले० नाथूराम सस्कर्ता कलायण, श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, पृ० ७४–८७।

४ वाचस्पत्यम, कलकत्ता, भाग ७, पृष्ठ ४९२१।

विवाह ■ ~ का मूल अर्थ वहन करना है। प्राचीन विवाह मंगल संज्ञक नाम्रा का रूप 'विवाहलउ' प्राप्त होता है।

(इ) वेलि

५६ ३। वेलि शब्द वल्ली अथवा वल्लरी नामक संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुआ। 'वेल' प्रसार की प्रतीक मानी गई है। अतएव अनेक रचनाओं के नाम वेली परक रखे हैं। 'वेल' फलदायक भी होती है। अनेक वलि काव्य रूपक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। हाराज पृथ्वीराज ने अपनी का य कृति ' वेलि ' का भी रूपक बताया है—

> वल्ली तसु बीज भागवत वायौ, महि थाणो प्रिथुदास मुख।
> मूल ताल जड अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढि छांह सुख।
> पत्र अक्खर दल द्वाला जस परिमल, नवरस त तु त्रिधि अहो निसि।
> मधुकर रसिक सु भगति मंजरी, मुगति फूल फल मुगति मिसि ॥[1]

वेली को वेल और वेलडी भी कहा गया है—

> पसरी मुकति वेल रूपसी।
> गंगा वहै इसी छबि गहरी। [2]
> विण तरुअर जिमि बेलडी, कंठ बिना जिम माल।
> पुरष विहूणि पदमनी, विणी परि ठेलिसी काल ॥[3]

वेल का अर्थ समुद्र, सागर, तरंग और लहर भी माना जाता है। समुद्र गहराई और विस्तार ■ द्योतक है—

> जिम मधुकर नइ कमलणी, गंगा सागर वेल।
> लुबधा ढोलउ मारवी, काम कतूहल केल ॥[4]

वेल का एक अर्थ मन भी होता है—

> वेल सघो म्हारे बाप री,
> ज्यूं माळी ज्यूं दूर।[5]

१— वेलि क्रिसन रुकमणी री छंद सं० २९१, २९२।
२— सूरज प्रकाश, कविया करणीदान कृत, भाग १, पृ० १३७।
३— माधवानल काम कंदला प्रबन्ध, गायकवाड ओरियंटल सिरीज विश्वविद्यालय बड़ोदा, पृ० २०६।
४— ढोला मारू रा दूहा सं० ५६२।
५— राज थानी लोकगीत भाग १ राजस्थाना रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता गणगौर का गीत।

अनेक डिंगल शैली की रचनाएं वेलिया अथवा मिश्र वेलिया गीत नामक छन्द में लिखी गई हैं इसलिये भी इन रचनाओं का 'वलि' नाम सार्थक होता है। यथा—'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री', (महाराज पृथ्वीराज कृत) क्रिसनजी री वेल, (कर्मसी सांखला कृत) राजा रायसिंघजी री वेलि राजा सूरसिंघजी री वेलि (गाडण चोलो रचित), राज कुमार अनूपसिंहजी री वेलि (गाडण वीरभाण रचित), राठौड़ रतनसी खीवावत री वेल, राठौड़ देईदास जैतावत री वेल (बारहठ अगाजी भाणोत रचित), राणा उदैसिंघ री वेल (सादू रामाजी रचित) और नाममाला वेल (हमीर नामक कवि द्वारा वि० स० १७७ में रचित कोशग्रन्थ)।

(१) हरण

५७ ३. प्राचीन काल में कन्या का विवाह के लिये हरण भी किया जाता था। वीर पुरुष अपनी प्रेमिकाओं अथवा वांछित कुमारियों को युद्ध में शक्ति प्रयोग से प्राप्त करते थे। मंदिरों में दर्शना के लिए अथवा मेला में मनोविनोद के लिए आयी हुई कुमारियों का भी हरण किया जाता था। अनेक आदिम जातियों में 'हरण' प्रथा आज भी विद्यमान है। भगवान श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का और पृथ्वीराज चौहान ने सयोगिता का हरण किया था। अतएव सम्बन्धित विवाह सम्बन्धी अनेक काव्य हरण' परक कहे गये हैं।

हरण और अपहरण में मुख्य अन्तर यही है कि हरण बहुधा प्रेमिका की इच्छा और संकेत के अनुसार होता है और अपहरण में स्त्री की अनिच्छा होती है। कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की और पृथ्वीराज चौहान द्वारा सयोगिता की प्राप्ति हरण' ही कही गई है।

५८ ३. भारतीय भाषाओं में मगल-काव्य सैंकडों की सख्या में उपलब्ध होते हैं। जानकी-मगल[1] पार्वती-मगल[2] और रुक्मिणी-मगल[3] जैसे मगल ग्रन्थ हिन्दी काव्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दी में मगल काव्य के अन्तर्गत मुख्यतः विवाह-सम्बन्धी विषय ही लिया गया है। अन्य भारतीय भाषाओं में मगल काव्य के अन्तर्गत इत कथा, चरित्र स्तुति आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ मराठी कन्नड तेलगु और अन्य देशीय मगल-काव्यों का विवरण इस प्रकार है—

(क) मराठी मगल-काव्य

१ अन्नपूर्णास्तुति कर्ता — मोरोपंत (शक स० १६५१-१७१९)।
२ हरिहर प्रार्थना कर्ता— मोरोपंत।
३ गणपति प्रार्थना, कर्ता— मोरोपंत।
४ केकावली, कर्ता— मोरोपंत, आवागमन से मुक्त होने की प्रार्थना।

---

१ व २– कर्ता— गोस्वामी तुलसीदास जी।
३ – कर्ता – विष्णुदास, सूरदास नन्ददास आदि।

५ मृदंगस्तुति, कर्ता— मोरोपंत ।
६ गदय्न रामायण, कर्ता— मोरोपंत ।
७ दुर्गास्तवन कर्ता— मोरोपंत ।
८ व्यंकटेश प्रार्थना, कर्ता— मोरोपंत ।
९ विश्वेश्वर-स्तवन कर्ता— मोरोपंत ।
१० पांडुरंग स्तुति, कर्ता— मोरोपंत ।
११ अम्बा स्तवन कर्ता— तानाजी देशमुख संभवत महाराजा शिवाजी के प्रधान सेनापति ।
१२ उपकाल स्तोत्र कर्ता— दासोपंत, सोलहवीं शती ।
१३ वज्रपञ्जरस्तोत्र, कर्ता— दासोपंत ।
१४ भगवद्गीता स्तोत्र कर्ता – दासोपंत ।
१५ शीतज्वर-निवारण स्तोत्र, कर्ता— दासोपंत ।
१६ शिव स्तोत्र, कर्ता—दासोपंत ।
१७ करुणाष्टक, कर्ता— रामदास (शक १५३०–१६०३) ।
१८ मनोबोध, कर्ता—रामदास, आत्मज्ञान विषयक ।
१९ गणेशाष्टक कर्ता—मध्वमुनि (शक १६११–१६५६) ।
२० गंगाष्टक, कर्ता—मध्वमुनि ।
२१ त्र्यम्बकाष्टक कर्ता—गोसावी (गोस्वामी ?) नन्दन (शक १५८० १६५०)
२२ रेणुकाष्टक, कर्ता—गोसावीनन्दन ।
२३ दत्तात्रेयस्तव, कर्ता—वामन, १७ वी शती ।
२४ ब्रह्मस्तुति, कर्ता—वामन ।
२५ शिव स्तुति, कर्ता—वामन ।
२६ दत्तात्रेयाष्टक कर्ता—नारायण (शक १५६४) ।
२७ महिम्नस्तोत्र, कर्ता—नारायण मुनि (संभवत उपरोक्त ही है) ।
२८ देवीअष्टक, कर्ता—वनाजी (ई० १८वी शती) ।
२९ शिवाष्टक, कर्ता—वनाजी ।
३० निरंजनाष्टक, कर्ता—रत्नाकर (ई० १७वी शती) ।
३१ पांडुरंग स्तोत्र, कर्ता—महीपति (१६३७ १७१२ शक) ।
३२ भाग्यमस्तवराज कर्ता—माधव (शक १६२५) ।
३३ मल्लारि अष्टक, कर्ता—रंगनाथ, (१७वी शती) ।
३४ मल्लारि स्तोत्र, कर्ता—दादो रंगनाथ ।
३५ महिषासुरमर्दिनी स्तोत्र, कर्ता—विश्वनाथ ।
३६ मार्तण्डाष्टक, कर्ता—रंगनाथ (उपरोक्त ही) ।
३७ बिट्ठलस्तुति, कर्ता—अनंत फदी (शक १६६६ १७४१) ।

३८ व्यंकटाष्टक, स्तोत्रदशक, कर्ता—गिरिग्रात्मज (शक १६५८)।
३९ वेद-स्तुति कर्ता—व्यंकटेश ग्रौर गोविन्द (शक १६६०)।
४० सरस्वती स्तोत्र, कर्ता—गिरधर, (ई० १७वी सदी)।
४१ हनुमन्ताष्टक, रचयिता—माणकेश्वर।
४२ सोम सुन्दरस्तोत्र, कर्ता—ग्रज्ञातनामा।[1]

कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी मराठी काव्य एवं नाटक—

नरेन्द्र कवि (शक स० ११६० १२५०) भास्कर कवीश्वर, मुनि कृष्णदास श्रीधर स्वामी, मोरोपन्त, विट्ठल, एकनाथ, सामराज, जयराम स्वामी, चिन्तामणि (रुक्मिणी हरण नाटक, र०का०ई०स०१६७५ से पूर्व), सार्भिंसह (रुक्मिणी परिणय नाटक), चूडामणि राज दीक्षित (रुक्मिणी कल्याण), सरस्वती निवास रुक्मिणी नाटक) ग्रौर वरद कवि (रुक्मिणी परिणय नाटक) ग्रादि ग्रनेक कवियो तथा नाटककारो ने लिखे।[2] उक्त रचनाग्रो में से एकनाथ का रुक्मिणी स्वयवर ग्रौर सामराज का रुक्मिणी हरण मुख्य है।[3]

(ख) कन्नड-मंगल काव्य

१ महिम्न स्तोत्र,
२ मल्हण स्तोत्र,
३ ग्रनामय स्तोत्र
४ भृ गिस्तव
} गुरुदेव, (वीर शैव कवि) सन् ११५०।

५ चन्द्रनाथाष्टक, मौक्तिक कवि (जैनकवि) सन् ११२०।
६ जिन स्तुति कल्याण कीर्ति, सन् १५३६।
७ त्रैलोक्य चूडामणि स्तोत्र, ब्रह्मशिव, सन् ११२५।
८ देवी स्तोत्र, गुरुसिद्ध ग्रर्थात इम्मडि मुरिगेच्च स्वामी सन् १५६०।
९ नन्दी माहात्म्य, गोविन्द, (ब्राह्मण कवि) सन् १६५०।
१० उमा स्तोत्र या त्रिपुर-सुन्दरी स्तोत्र, गुरुनज, सन् १५००।
११ नरसिंह स्तुति, पतियण्ण, सन् १७००।
१२ पपा, विरूपाक्ष शतक विजयनगर के राजाग्रो का कुलदेव हिरिपुररग, सन् १६५०।
१३ पार्वतीय सोवाने, रामचन्द्र कवि, सन् १७००।
१४ रगनायक रगनायकि, स्तुति (मगलदेवता) चित्रकुपाध्याय, सन् १६७२।

१— भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, ग्रागरा, जनवरी १६५६।
२— डा० ग्रानन्द प्रकाश दीक्षित, बेलि क्रिसन रुक्मिणि री विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका पृ० १६२ १६४।
३— वही, पृ० १६४ १७३।

१५ अम्बिका विजय, आदि शक्ति देवी ने रावणोजासुर का वध किया। इस घटना की कथा इसमें वर्णित है। बज्रूर रंग, सन् १७१०।
१६ अम्बा स्तोत्र महानदेनिक, १६ वी सदी।
१७ गणाष्टक, महानदेनिक, १६ वी सदी।
१८ रेणुकायस्तोत्र, महानदेनिक १६, वी सदी।
१९ अखण्ड कावेरी माहात्म्य मुम्माड कृष्णराज (मैसूर के नरेश) सन् १७४९ से १८६४।
२० देवी माहात्म्य सप्तसती, (मार्कण्डेय पुराण की कथा) मुम्माड कृष्णराज सन् १७४९ से १८६४।
२१ उषा परिणय, मुम्माड कृष्णराज।
२२ सागरचक्र परिणय, मुम्माड कृष्णराज, सन् १७४९ से १८६४।
२३ जिनेश्वराष्टक, ? सन् १३००।
२४ अनन्त जिनेश्वराष्टक ? सन १५००।
२५ अलमेल मंगेय लाली, तिरुमलि वेंकटरमण की पत्नी लक्ष्मीदेवी के लालियां श्रीमती चेनवावे, सन् १७२५।
२६ तुलाकावेरी माहात्म्य (आग्नेय पुराणोक्त) श्रीमती चेनुवावे सन् १७२५।
२७ अष्टोत्तर शत मंगल गीतावली, गिरिभट्टरतम्पटय १६ वीं सदी।
२८ कावेरी पुराण गोरूर नरसिंहाचार्य, १६ वी सदी।
२९ कावेरी माहात्म्य, रंगय्य, (मैसूर नरेश के सेनापति) सन् १७२०।
३० गिरिजा देवी सकीर्तन, (पार्वती की स्तुति) शान्तवीर देसिक, सन् १६५०।
३१ शंकराष्टक, नंजुड (देवलपुर) सन् १८४१।
३२ त्रैलोक्य रक्षामणि स्तोत्र, ?, सन् १३००।
३३ देवी माहात्म्य (अत्यधिक प्रचलित ग्रन्थ)। संस्कृत देवी माहात्म्य का अनुवाद। इसमें ७१२ पद्य और १८ सर्ग हैं। चिदानदावधूत (ब्राह्मण कवि)।
३४ बगलामुखी स्तोत्र, (सिद्ध पर्वत निवासिनी अम्बा का स्तोत्र चिदानदावधूत, सन् १७५०।
३५ पार्वती स्तुति, ? सन् १६५०।
३६ गिरिजा कल्याण, (गिरजा विवाह) सन् १७८०।
३७ प्रभावती परिणय अलिव लिंगराज, सन् १८२३ १८७४।
३८ गिरिजा कल्याण, अलिव लिंगराज सन् १८२३ १८७४।
३९ जानकी परिणय सूर्यनारायण, १६ वी सदी।
४० पद्मावती परिणय बालाचार्य, १६ वी सदी।
४१ मीनाक्षी कल्याण, (मंगल) इड्गूरू रुद्रकवि, १६ वी सदी।
४२ रुक्मिणी परिणय सा० आर० चेलम्म, १६ वी सदी।
४३ रुक्मिणी परिणय, ए० श्रीनिवास सुब्बागार, १६ वी सदी।

४४ सीता कल्याण, श्रीमती हेलवन कट्टे गिरियम्मा, सन् १७५० ।
४५ सीता कल्याण, गेरसावे शातव्य सन् १८३० ।
४६ रेणुका माहात्म्य, यत्नो गुड्डो कुलकर्णी, २० वी सदी ।
४७ रेणुका माहात्म्य, गु० भो० नामसेवी, २० वी सदी ।
४८ वनशकरी माहात्म्य, (स्कंध पुराण के आधार पर) गलगनाथ, २० वी सदी ।[1]

(ग) तेलुगु मगल-काव्य

१ मवश्वर शतकमु यथावाक्कुल अ नमय्या, सन् १२४२ ई० के लगभग, कृष्णा नदी के किनारे, मवशाला नामक स्थल ।

२ चैनूमल्लु सीसमुलु पाल्कुरिकि सोमनाथ, सन् १३२० ई० के लगभग (समय के बारे म मतभेद है कुछ समालोचको के अनुसार ११४० ११६६) पालकुरिकि काकतीय राजाओ के राज्यकाल म विद्यमान ।

३ वीरनारायण शतकमु, रावुरिसाजोय कवि, मन् १०३१ ई० भुवनगिरी (तलगाना) ।

४ रमाणिनेश शतकमु, अडिदमु सूरकवि, सन् १०१/–८५ ई० विजयनगर विशाल जिला के आस-पास ।

५ बालसुब्रमहृण्य शतकमु नूतत्टाकम् नागशास्त्रा सन् १०४० के लगभग दक्षिणात्य आध्र ।

६ सिहाद्रि नारसिह शतकमु गोगुलपाटि कूर्मनाथुडु सन् १०५० विशाग्न मडल म सिहाचल नामक यात्रा स्थल ।

७ आध्रनायक शतकमु, कासुल पुरषोत्तम कवि, मन् १७६१ ई०, पदप्रोलु (कृष्णा जिला) ।

८ रमणीमनोहर शतकमु गगाधर कवि, सन् १८५० ई०

९ ज्ञान प्रसूनाबिका शतकमु शिष्टसव शास्त्री सन् १८/०, काल हस्ति (चित्तूर जिले का एक प्रसिद्ध यात्रा स्थल) ।

१० नदनदन शतकमु, वड्डादिसुब्बराय, सन् १८७७ रचनाकाल, जीवन १८५४–१९३८, राजमहेद्रवर । गोदावरी नदी के किनारे बसा हुआ है ।

११ कामश्वरी शतकमु, चेल्लपिल्ल वेकट शास्त्री सन् १८७ –१९५० कडियमु, (गोदावरी जिला) ।

१२ सूयनारायण शतकमु, अज्ञात, वराह वेकट नृसिह कवि ।

१३ विश्वेश्वर शतकमु विश्वनाथ सत्यनारायण जन्म स० १८९५ विजयवाडा ।

१४ हनुमत्पचविशति, तिरुनूर गोपाल कवि ।

१५ वेकटाचल विहार शतकमु

[1]– भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापिठ, आगरा विश्व विद्यालय, आगरा जनवरी १९५६ ।

(घ) आन्ध्र के मंगल-काव्य

१ भोगिनी दण्डक, नन्नय भट्ट, १००१-१२८० ई० के मध्य।
२ विघ्नेश्वर दण्डक।
३ श्री राम दण्डक, मादिन सुभद्रय्या, १६५१-१८७५ ई०।
४ राम दण्डक मादिन सुरना, १६५१-१८७५ ई०।
५ नृसिंह दण्डक, वेनुगु लक्षमण कवि १६५१-१८७५ ई०।
६ पोलेरम्मा दण्डक।
७ आञ्जनेय दण्डक।
८ सूर्यनारायण दण्डक।
९ भास्कर शतक, भास्कर १००१-१२८० ई० के बीच।
१० श्री काकुलाअन्नायक।
११ मानस बोध शतक।
१२ सुमती शतक।
१३ कृष्ण शतक।
१४ कुमारी शतक।
१५ भैरव शतक।
१६ शरभाक शतक।
१७ दाशरथी शतक, गोपना, १६५१-१८७५ ई०।[१]

(ङ) गुजराती मंगल काव्य

१ अष्ट पटराणी नो विवाह, दयाराम।
२ ईश्वर विवाह गोपीभान।
३ ईश्वर विवाह देवीदास छोटा।
४ ईश्वर विवाह, मुरारि।
५ कानुडा नो विवाह अज्ञात।
६ कृष्ण विवाह, राधा बाई।
७ गोकुलनाथ जी नो विवाह, महीदास।
८ गोपीकृष्ण विवाह, जीवनदास।
९ जानकी विवाह, तुलसीदास।
१० वली नो विवाह अज्ञात।
११ तुलसी नो विवाह अज्ञात।
१२ तुलसी विवाह गिरधर।

१- भारतीय साहित्य हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी १९५६, पृ० सं० १६०-१६१।

१३ तुलसी विवाह, प्रभाशंकर ।
१४ तुलसी विवाह, प्रीतम ।
१५ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, हरिदास ।
१६ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, मोतीराम ।
१७ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, प्रेमानन्द (बडा) ।
१८ नरसिंह ना पुत्र ना विवाह, प्रेमान द (छोटा) ।
१९ नागर विवाह, रणछोड ।
२० नाम जती विवाह, दयाराम ।
२१ महादेव विवाह, वल्लभ ।
२२ महादेव विवाह फूड ।
२३ रघुनाथ जी नो विवाह, गोविन्द ।
२४ राधा विवाह, रणछोड ।
२५ राधिका विवाह, राजे कवि ।
२६ राधिका विवाह, द्वारको ।
२७ राम विवाह इच्छाराम ।
२८ राम विवाह, दिवाली बाई ।
२९ राम विवाह प्रभूराम ।
३० रुक्मणी विवाह, विक्रमदास ।
३१ रुक्मणी विवाह, कृष्णदास ।
३२ रुक्मणी विवाह, गोवि द दास ।
३३ रुक्मणी विवाह, दयाराम ।
३४ रुक्मणी विवाह, धनजी ।
३५ रुक्मणी विवाह मुक्तान द ।
३६ रुक्मणी विवाह रघुनाथ ।
३७ विट्ठलनाथ जी नो विवाह माधवदास ।
३८ विवाह खेल, वल्लभ ।
३९ विवाह खेल, नारायण ।
४० विवाह खेल, उत्तमराम ।
४१ वेणवत्सराज विवाहलउ, अमर, १६०७ लिखित प्रति ।
४२ सामल साह नो विवाह, नरसिंह ।
४३ सामल साह नो विवाह वल्लभ ।
४४ *सामलसाह नो विवाह आधार भट्ट ।*
४५ शिव विवाह नाकर ।
४६ शिव विवाह छोटम ।
४७ शिव विवाह रणछोड ।

४८ शिव विवाह, जग जीवन ।
४९ शिव विवाह मयाराम ।
५० सत्यभामा विवाह दयाराम ।
५१ सीता विवाह, मालण ।
५२ सूरति विवाह, दयाराम ।
५३ सूरति बाई ना विवाह धेलाभाई ।
५४ सूरति बाई ना विवाह, धीरा ।
५५ सूरति बाई नो विवाह, निमय राम ।[1]

(च) हिन्दी-मंगल-काव्य

५६ ३ । अन्य भाषाओं की भांति हिन्दी में भी विवाहमंगल काव्य-सृजन की सुदीर्घ परम्परा रही है और विष्णुदास, सूरदास, तुलसी तथा नन्ददास आदि अनेक प्रमुख कवियों ने विवाह-मंगल संज्ञक रचनाएं लिखी हैं किन्तु यह काव्य-धारा हिन्दी के साहित्यिक इतिहास-ग्रन्थों में अद्यावधि सर्वथा उपेक्षित रही है । उदाहरण स्वरूप उक्त भारतीय साहित्य आगरा में हिन्दी मंगल काव्यों का उल्लेख नहीं है और सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य कोश"[2] के दोनों ही भागों में मंगल-काव्य-रूप का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता । विवाह विषयक काव्यों में भी निम्नलिखित काव्यों का ही परिचय मात्र दिया है—

१ जानकी मंगल, –गो० तुलसीदासजी ।[3]
२ पार्वती मंगल –गो० तुलसीदास जी ।[4]
३ रामलला नहछू, –गो० तुलसीदास जी ।[5]
४ रुक्मिणी मंगल, –विष्णुदास ।[6]
५ रुक्मिणी मंगल –नन्ददास ।[7]
६ बेलि क्रिसन रुक्मिणी री –पृथ्वीराज राठौड़ (सं०१६३७) ।[8]
७ रुक्मिणी मंगल –नरहरी बंदीजन (सं०१५६२–१५८५) ।[9]
८ रुक्मिणी मंगल –नवलसिंह । (सं० १८७२–१९२७) ।[10]
९ रुक्मिणी परिणय –महाराजा रघुराजसिंह ।[11]
१० रुक्मिणी विवाहला –कृष्णदास । (सं०१९९२) ।[12]
११ रुक्मिणी मंगल, –हरिनारायण (लि०का० सं०१९५०) ।[13]
१२ रुक्मिणी मंगल –ठाकुरदास (सं०१८६४) ।[14]

१– प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा श्री अगरचंद नाहटा भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर पृ० ६०–६२ ।
२– सं० सर्व श्री धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), ब्रजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी और रघुवंश (संयोजक) प्रका० ज्ञान-मण्डल लि० वाराणसी ।
३– भाग २, पृ० २०० ।
४– भाग २ पृ० ३१५ ।
५– भाग २ पृ ४६८ ।
६–से १४ – भाग २, पृ० ५०७ ।

१३ रुक्मिणी मगल, —मानशाम, उपनाम कृष्ण चाबे ।[1]
१४ रुक्मिणी मगल, —रामलाल (लि० का० स० १८६२ लगभग)।[2]
१५ रुक्मिणी मगल, —हरिचन्द द्विजदास, ।[3]
१६ रुक्मिणी को ब्याहलो,—पदम भगत ।[4]
१७ स्याम सगाई, —न ददास ।[5]

६० ३ । उक्त "हिन्दी साहित्य कोश" म अनक विवाह विषयक एव मंगल सज्ञक प्रधान रचनाओ का परिचय नही प्राप्त होता । राजस्थान क मत्स्य नैम छोट भाग म हुए हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सर्वेक्षण म ही इस प्रकार की दस कृतिया का परिचय उपलब्ध होता है । इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) जानकी मगल, रामनारायण कृत, पृ० स० १३३, २६६ ।
(२) जानकी मगल, हनुमत कवि, स० १८३४ ।

यह पुस्तक स्वयं लेखक ने लिपिबद्ध की । इस ग्रन्थ के छन्दो की सख्या ९६३ है । कवि नगर निवासी थ, उनका कहना है— "और नगर सब नक्ल है नगर नगर सुख मौन ।" पृ० ९ ।

(३) पार्वती मगल, रचयिता गुसाईं रामनारायण, स० १८३८ ।

पठनार्थ पुजारी नारायण, पत्र स० ३१ । इसा पुस्तक की एक प्रति और भी मिलती है जिसकी पत्र स० ८२ है । यह पुस्तक प० जगन्नाथ जी डीग वाला के अधिकार मे है । प्रति स० १९४७ की लिखी हुई है । पृ० १०४, १३३ १५० २६६ ।

(४) जलवत जी का विवाह, गणेश कृत पृ० २०६ ।
(५) महादवजी को ब्याहलो, रचियता सोमनाथ स० १८१३ ।

पत्र स० ११८ और उल्लास ५ है । इसकी शैली ध्रुव विनोद क अनुसार है । महादेव जी क विवाह का वर्णन प्रान्त के जातियो क गीतो के अनुसार है । स्थान स्थान पर प्रकृति वर्णन भी मिलता है । पृ० ७६, १२८ १८७ १५० १६८ २६६ ।

(६) राधा मगल रचियता गोसाईं रामनारायण १८३३ ।

पार्वती मगल और जानकी मगल की तरह लिखी गई यह पुस्तक एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है जिसम मंगलाचरण भूमिका गुरु वन्दना आत्म परिचय आदि हैं । पुस्तक म ११ अध्याय हैं । इसमे किये गय वैवाहिक वणन बहुत सजीव हैं । रामनारायण कोसामी का रहने वाला था और यह ग्रथ भरतपुर कालवानी मे लिखा गया था । कवि न इसका रचना

१ — से ४ हि० सा० को० भाग २ पृ० ५०७ । ५—वही, पृ० ६२७ ।
६ — मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, ले० डा० मोतीलालजी गुप्त, प्र० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ।

काल 'ग्रतीस बहुरि उ नोस' लिखा है । पृ० स० ६, १२४, १३३, १४३, १४४, १४५,१६८, २६६, २६६ ।

(७) रुक्मिणी मगल, पृ० २६६ ।
(८) विनयसिंह जी की पुत्री का विवाह, रामलाल कृत, पृ०स०२०६ ।
(६) विवाह विनोद रचयिता रामलाल ।

विनयसिंह जी की पुत्री बीकानेर के राठोड सिरदारसिंह जी के साथ ब्याही गई थी । इस पुस्तक मे वैवाहिक कृत्य की बहुत सी बातें हैं । कविता साधारण कोटि की है, "श्री सिरदार महीपती को प्रति हर्षित ह्व तनया निज दानी ।" पृ० स० १७१,२०६,२०७ ।

(१०) विवाह विनोद, रचयिता गणेश, सवत् १८८६ ।

पुस्तक के केवल ६० पत्र ही मिल सके । महाराज बलवतसिंह का यह विवाह "डीग के कगार वारे" महला मे भूपति कुम्प का सकुटुम्ब बुलाकर दीवान भोलानाथ जी ने सम्पन्न कराया । मुकुन्द किशोर के रहने वाले थे । पृ० १७ ।

६१ ३ । विवाह-सम्बन्धी प्रधान हिन्दी रचनाओं का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

हिन्दी साहित्य की विवाह सम्बन्धी प्राचीनतम महत्वपूर्ण रचना नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रास उपलब्ध होती है । अधिकांश विद्वानों ने इस काव्य को हिन्दी के प्रथमकाल की रचना माना है । बीसलदेव रास में अजमेर के राजा बीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की राजकुमारी राजमती के विवाह का वर्णन है । इस कृति में लोकरीत्यानुसार विवाह का सरस चित्रण है—

माणिक मोती चउक पुराय ।
पाव पखाल्या राव का राजमती दोई बीसलराव ।।
हुई सोपारी मनि हरख्यो छइ राव । वाजित्र वाजइ नीसाणे घाव ।।
गढ माहि गूडी उछली । घरि घरि मगल तारण च्यारि ।। [१]
परणवा चाल्या बीसलराव । पच सखी मिली कलस बधावि ।।
मानी का आपा क्रिया । कू कू चदन पाका पान ।।
श्रमलो समलो ग्रारती । जाई वधेरइ दिया मिलाण ।। [२]

६२ ३ । महाकवि चन्द कृत पृथ्वीराज रासो में ६६ समय अर्थात् सर्ग हैं इनमें से अनेक सर्ग पृथ्वीराज चौहान के विवाहों से सम्बन्धित हैं जैसे—

१ इंछिनी ब्याह कथा, सर्ग सख्या १४ ।
२ पद्मावती ब्याह कथा, सर्ग सख्या २० ।

१– बीसलदे रास, ना प्र स०, पृ० ८–६ ।
– वही पृ० १२ ।

३ पृथा ब्याह कथा, सर्ग सख्या २१।
४ इन्द्रावती ब्याह, सर्ग सख्या ३३।
५ विनय मगल नाम प्रस्ताव, सर्ग सख्या ४५।
६ विनय मगल, सर्ग सख्या ४६।
७ सजोगिता नेम प्रस्ताव, सग सख्या ५०।
८ विवाह सम्यो, सग सख्या ६५।

यदि पृथ्वीराज रासो का हिन्दी की प्राचीनतम रचना माना जावे तो हिन्दी का ना म "मगल" सना का प्रयोग "विनय मगल" के रूप म सत्र प्रथम पृथ्वीराज रासो मे ही मिलता है।

पृथ्वीराज रासो मे विभिन्न राजकुमारियो के सौ दय, नख शिख निरूपण शृगार वरणन, सदेश, सेना सहित पृथ्वीराज के आगमन, विरोधी पक्षों से पृथ्वीराज के युद्ध, पृथ्वीराज की विजय, और विवाह आदि के सरस चित्रण है। अनेक स्थानो म पृथ्वीराज ने कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण के आदर्श को अपनाया है, जिसके विषय मे कवि न स्पष्ट रूपण लिखा है—

दूहा— ज्यो रुक्मनि कन्हर वरी, ज्यो वरि सभरि कात।
शिव मडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रात ॥४५॥[1]

कवि ने पृथ्वीराज का वासुदेव कृष्ण का अवतार मानते हुए कृष्ण रुक्मिणी विवाह से अनेक विवाह प्रसगो में प्रेरणा ली है। श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह प्रसग के अनुसार राजकुमारी क विवाह हेतु किसी अन्य राजा से सगाई होना, राजकुमारी का पुरोहित अथवा "द्विज" (पक्षी या ब्राह्मण) क साथ पृथ्वीराज का सदेश भेजना पृथ्वीराज और राजकुमारी के मदिर म मिलन का स्थान निश्चित होना, पृथ्वीराज का मदिर मे राजकुमारी का हरण करना, विरोधी पक्षो से युद्ध, पृथ्वीराज की विजय और सम्बन्धित राजकुमारी से विवाह आदि प्रसग सामान्य परिवर्तनों के साथ पृथ्वीराज रासो में च द द्वारा चित्रित किये गए है। रासो का "पद्मावती समय" उक्त प्रसगो का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

६३ ३। भक्तिकाल म निर्गुण और सगुण दोनो धाराओ के कवियों न 'मगल' रूप मे विवाह वरणन किये हैं। नाना सन्त उपासकों म निर्गुण कवियो ने आत्मा-परमात्मा का एक मानते हुए अद्वैतवादी सिद्धात का प्रतिपादन किया। अनेक स्थलों म इन कवियो न आत्मा को दुल्हन और परमात्मा का वर के रूप म चित्रित किया है। दुल्हन की भांति आत्मा परमात्मा रूपी वर से विवाह के लिए व्याकुल रहती है। कबीर न मृत्यु को मगलकारी माना

१— पद्मावती विवाह कथा नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छद स० ४५।

है। मृत्यु के उपरान्त ही आत्मा माया के बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा रूपी वर से मिल सकती है—

> जा मरने से जग डरे मो मन बहु आनन्द।
> कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द॥[1]

कबीर ने आत्मा को सुन्दरी के रूप में प्रकट किया है—

> कबीर सुन्दरि यों कहै, सुणि हो कन्त सुजाण।
> बेगि मिलो तुम आइ करि, नहीं तर तजौं पराण।[2]
> हरिया पारि हिंडोलना मल्या कंत मचाइ।
> गाई नारि सुलषणा नित प्रति झूलण जाइ॥[3]

कबीर के नाम से 'अगाध मंगल' नामक कृति भी मिलती है जिसमें योगाभ्यास के साथ आत्मा परमात्मा के मिलन का चित्रण है।[4]

कबीर का अनुसरण करते हुए ज्ञानाश्रयी उपासना के अन्य प्रायः निर्गुण कवियों ने भी आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को वर वधू के रूप में चित्रित किया है।

६४ ३। हिन्दी में अनेक सूफी कवियों ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु प्रेमाख्यानक काव्यों का निर्माण किया। सूफी सिद्धान्तानुसार ईश्वर को सुन्दरी राजकुमारी के रूप में और बन्दे को राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया है। बन्दे के रूप में राजकुमार मार्गदर्शक गुरु के द्वारा ईश्वर रूपी सुन्दरी के रूप-यौवन की प्रशंसा सुनता है तो प्रेमावेग में भर कर सुन्दरी को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। राजकुमारी को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की बाधाओं का वर्णन भी किया गया है।

बन्दे के मार्ग में मुख्य बाधा शैतान की होती है। यह बन्दे को भटकाने का प्रयत्न करता है। सच्चा साधक आपत्तियों को सफलतापूर्वक पार करता हुआ सुन्दरी रूपी ईश्वर के समीप पहुँच कर उसको प्राप्त करता है।

सूफी कवियों ने उक्त सिद्धान्तों का निरूपण दोहा चौपाई में रचित विवाह सम्बन्धी अवधी काव्यों में किया है। सूफी कवियों में मृगावती (र० का० १५५६) के कर्ता कुतबन, मधुमालती (र० का० १५४५) के कर्ता मझन, चित्रावली (र० का० १६१३) के कर्ता उसमान और पद्मावत (र० का० १५९७ लगभग) के कर्ता जायसी प्रमुख हैं। जायसी ही सूफी मार्गी

१– साखी, सुन्दरी को अंग।
२– वही।
३– वही।
४– डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, स० १९५८, पृ० २५०।

हिंदी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने चित्रकूट (चित्तौड़) के राजा रत्नसिंह का सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती से विवाह अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण और चित्तौड़ मे रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात् पद्मनी के सती होने का सुविस्तृत और सरस निरूपण अपने काव्य मे किया है। काव्य के अन्त मे अपने प्रेमाख्यान के रूपक को आध्यात्मिक बताते हुए इस प्रकार स्पष्ट भी कर दिया है—

> तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
> गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ?
> नागमती यह दुनिया धंधा। बाचा सोई न एहि चित बंधा ॥
> राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू ॥

६५ ३। राममक्ति शाखा में महाकवि तुलसी (१७वीं वि०) अग्रदास (ज० का० सं० १६१२) स्वामी अग्रदास (ज० का० सं० १६३२) नाभादास (ज० का० सं० १६५७) सेनापति (ज० का० सं० १६४६), प्राणचन्द चौहान (सं० १६६७) श्रीकृष्ण भट्ट (ज० का० १७६६), महाराज विश्वनाथसिंह (ज० का० सं० १७६०), रामगुलाम द्विवेदी (ज० का० सं० १८७०) आदि प्रमुख कवि हो गए हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में राम जानकी विवाह का अपनी अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार निरूपण किया है। राम को जानकी से विवाह हेतु प्रतिपक्षियों से किसी प्रकार का युद्ध नहीं करना पड़ा किन्तु स्वयंवर में शिव धनुष को तोड़कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन अवश्य करना पड़ा। राम जानकी विवाह के अवसर पर कोई युद्ध नहीं हुआ, किन्तु राम जानकी विवाह राम रावण युद्ध का एक कारण अवश्य बना।

६६ ३। रामभक्त कवियों में तुलसीदास का स्थान सर्वोच्च है। तुलसीदास के नाम से ३७ कृतियां उपलब्ध हुई हैं।[1] इन कृतियों में से केवल बारह कृतियां प्रामाणिक मानी गई हैं।[2] महाकवि तुलसी कृत इन्हीं बारह ग्रंथों का प्रकाशन तुलसी ग्रन्थावली के अन्तर्गत दो भागों में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से किया गया है। तुलसी कृत महाकाव्य 'रामचरित मानस' मे प्रसंगानुसार राम-जानकी विवाह का सरस वर्णन तो है ही। साथ ही तुलसीकृत 'रामललानहछू', 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' नामक कृतियों द्वारा महाकवि तुलसी ने हमारे साहित्य की विवाह सम्बन्धी मंगल मूलक काव्य-परम्परा को पुष्ट प्रदान की है।

रामलला नहछू —

---

१ – डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३९६–७३।

२ – क—रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१२ पृ० १४४।

ख—लाला सीताराम, सलेक्शन्स फ्राम हिंदी लिटरेचर भाग ३, पृ० ८ से १६।

६७ ३। रामलला नहछू के रचना काल के विषय में निम्नलिखित संकेत मिलता है—

> मिथिला म रचना किए, नहछू मगल दोय।
> मुनि प्राचे मन्त्रित किए, सुख पावे सब कोय॥[1]

वेणीमाधव दास कृत गोसाई चरित के अनुसार तुलसीदास की मिथिला यात्रा सवत् १६४० के पूर्व हुई थी इसलिए रामलला नहछू का र० का० स० १६४० के पूर्व निश्चित होता है। यह तुलसी की प्रारम्भिक एवं अपरिमार्जित रचना है। यह विवाह के अवसर पर गाने के लिए लिखी गई है। इसका निर्माण 'मानस' से बहुत पहले का जान होता है।

६८ ३। रामलला नहछू मे केवल बीस छन्द सोहर जाति के हैं। इनमें बारह और दस के विश्राम से २२ मात्राए हैं अवध और बिहार मे विवाह के अवसर पर नहछू गाने की परम्परा है। तुलसीदास जी ने इसे वास्तव मे विवाह के समय गाए जाने वाले स्थान पर गाने के लिए बनाया है।[2] इस कृति का उदाहरण निम्न लिखित है—

> आज अवधपुर आनन्द नहछू राम क हो।
> चलहु नयन भरि देखिय सोभा धाम क हो॥
> गोद लिहे कौशल्या बैठि रामहि वर हो।
> सोभित दूलह राम सीस पर आचर हो॥[3]

पार्वती मगल—

६९ ३। पार्वती मगल के रचना-काल के विषय मे भी वेणीमाधवदास ने लिखा है—

> मिथिला मे रचना किए नहछू मगल दोय।
> मुनि प्राचे मन्त्रित किए, सुख पावे सब कोय॥[4]

तदनुसार पार्वती मगल का रचना काल १६४० से पूर्व निश्चित होता है। तुलसीदास ने स्वय पार्वती मगल का रचना काल इस प्रकार दिया है—

> जय सवत फागुन सुदि पाचे गुरु दिनु।
> अश्विनि विरचेउ मगल सुनि सुख छिनु छिनु॥[5]

---

१ – वेणीमाधवदास कृत गोसाई चरित छन्द स० ६४।

२ – श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद १९३१ पृ० ६६।

३ – रामलला नहछू, छन्द १३।

४ – गोसाई चरित्र छन्द स० ६४।

५ – पार्वती मगल छन्द स० ५।

सुधाकर द्विवेदी और डा० जार्ज ग्रियसन ने स० १६४३ का जय संवत् होना लिखा है।[1] इसलिए पार्वती मंगल का रचनाकाल भी संवत् १६४३ ही है। यह ग्रंथ १४८ मंगल अर्थात् अरूण छंदों में और १६ हरीगीतिका छंदों में पूर्ण हुआ है अर्थात् इसकी पूर्ण छंद-संख्या १६४ है। मंगल छंद में ११ और ९ के विश्राम से २० मात्राएं हैं और हरिगीतिका छंद में सोलह और बारह के विश्राम से २८ मात्राएं हैं। पार्वती मंगल में ब्राह्मण के वेश में शिवजी द्वारा पार्वती की परीक्षा लेने और शिव-पार्वती के विवाह का रोचक वर्णन है। विवाह सम्बंधी लौकिक प्रथाओं के चित्रण से काव्य में यथार्थ का समावेश हुआ है। पार्वती मंगल की रचना अवधी भाषा में हुई है।

जानकी मंगल—

७० ३। वेणीमाधव दास के मतानुसार जानकी मंगल की रचना भी संवत् १६४० से पूर्व संभव है।[2] वेणीमाधव दास अपने कथन में स्पष्ट नहीं हैं। 'नहछू मंगल गोय' से नहछू और मंगल दो रचनाओं का भी बोध होता है, ऐसी अवस्था में मंगल से तात्पर्य जानकी मंगल लिया जाय अथवा पार्वती मंगल यह निश्चित नहीं होता। 'नहछू मंगल गोय' से नहछू और दोनों मंगल अर्थात् पार्वती मंगल व जानकी मंगल लेने पर ही स्पष्ट अर्थ का बोध होता है। डा० रामकुमार वर्मा ने जानकी मंगल के रचनाकाल के विषय में लिखा है, "जानकी मंगल और पार्वती मंगल सम्पूर्ण सादृश्य रखने के कारण एक ही काल की रचनाएं मानी जानी चाहिए। कथा शैली और वर्णन शैली तथा छंद प्रयोग में दोनों समान हैं। अतः जानकी मंगल की रचना भी संवत् १६४३ में माननी चाहिए।"[3] यह आवश्यक नहीं है कि कोई कवि सादृश्य रखने वाली रचनाएं एक ही समय में करे। ऐसी अवस्था में डा० वर्मा का मत युक्ति संगत नहीं लगता।

७१ ३। जानकी मंगल में राम और जानकी का विवाह १९२ अरूण अर्थात् मंगल छंदों में और २४ हरिगीतिका छंदों में अर्थात् २१६ छंदों में वर्णित है। इसमें आठ मंगल छंदों के उपरान्त एक हरिगीतिका छंद का क्रम रखा गया है। पार्वती मंगल की कथा मानस में वर्णित शिव-पार्वती विवाह प्रसंग से नहीं मिलती उसी प्रकार जानकी मंगल और मानस के राम जानकी विवाह प्रसंग में भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। मानस की भांति जानकी मंगल में पुष्पवाटिका प्रसंग, जनकपुर वर्णन और लक्ष्मण के दर्प का निरूपण नहीं है। साथ ही परशुराम का आगमन भी मानस की भांति सभा में नहीं बताकर बरात के लौटते समय मार्ग में बताया गया है। जानकी मंगल की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण के अनुरूप है।

---

१ – इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग २२ (१८९३ ई०), पृ० १५-१६।

२ – मूल गोसाईं चरित्र छंद सं० ९४।

३ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास संवत् १९९८, पृ० ३७८।

७२ ३। तुलसीदास ने रामचरित मानस मे प्रसंगानुसार शिव पार्वती विवाह और राम जानकी विवाह वर्णन का समावेश किया है।[1] मानस को विवाह-प्रधान काव्य नहीं कहा जा सकता किन्तु इसमें आया हुआ राम जानकी विवाह-वर्णन किसी स्वतंत्र रचना से कम नहीं है। कवि ने पुष्पवाटिका प्रसंग का समावेश कर नायक नायिका में पूर्वानुराग प्रदर्शित किया है। धनुष भंग के प्रसंग मे नायक की शक्ति का प्रदर्शन भी समुचित रूप में हुआ है। महाकवि तुलसी ने भगवान राम के द्वारा रावण और परशुराम जैसे शूरवीरों का गर्व खण्डन जनक की सभा मे कराकर मौलिक सूझ का परिचय दिया है।

७३ ३। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने कृष्ण भक्ति के सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण के बालरूप वर्णन को प्रधानता दी है। इन कवियों ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं अर्थात् शकटासुर वत्सासुर अघासुर धेनुकासुर, प्रलम्बासुर, और कंस वध सम्बन्धी लीलाओं के साथ ही पूतना वध कालीय दमन गोवर्धन धारण रासलीलादि प्रसंगों को ही विशेष महत्त्व दिया है। श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ आठ विवाह किये थे किन्तु सभी गोकुल छोड़ने के पश्चात् ही इसलिए कृष्णभक्ति सम्प्रदाय के कवि इन विवाहों का विस्तृत निरूपण करने का अवसर नहीं प्राप्त कर सके।

७४ ३। श्रीमद्भागवत में क्रमानुसार श्रीकृष्ण के विवाहों का उल्लेख है और श्रीमद्भागवत ही कृष्ण भक्त-कवियों का प्रधान प्रेरणा स्रोत है इसलिए कतिपय कवियों ने श्रीकृष्ण के विवाहों और उनकी पटरानियों के विषय में संकेत प्रदान किये हैं।

७५ ३। श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजभाषा में भक्ति परक काव्य रचना करने वाले प्रथम कवि विष्णुदास हुए जिन्होंने सूरदास के जन्म से पचास वर्ष पूर्व और वल्लभाचार्य के वृन्दावन आगमन के नब्बे वर्ष पूर्व अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। अब तक हमारे साहित्यिक इतिहासकार वल्लभाचार्य और सूरदास को ही ब्रजभाषा मे काव्य सृजन प्रारम्भ करने कराने का श्रेय देते रहे हैं। विष्णुदास की कृतियां इस प्रकार हैं — (१) महाभारत कथा (२) रुक्मणी मंगल (३) स्वर्गारोहण और (४) स्नेहलीला (भ्रमरगीत)। विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ की गई मंगलकाव्य और भ्रमर गीत प्रसंग लेखन-परम्परा का अनुसरण सूरदास तथा नन्ददास आदि कृष्ण भक्तों ने ही नहीं किया अपितु आंशिक रूप में महाकवि तुलसी ने भी किया। विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूंगरेन्द्रसिंह (राज्यारोहणकाल १४८१ वि०) के समकालीन थे। महाभारत कथा का रचनाकाल वि०सं० १४९२ है।[2]

७६ ३। कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास प्रमुख हैं। सूरदास की महान् रचना सूरसागर है जिसमें श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजभाषा पदों में श्रीकृष्ण का आख्यान वर्णित है। सूरदास की एक कृति 'ब्याहलो' भी उपलब्ध हुई है।[3] ब्याहलो की पद संख्या ९३ है किन्तु इस कृति की प्रामाणिकता नहीं सिद्ध होती।

---

१ — बालकाण्ड।
२ — काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९१२ १४ पृ० २५२।
३ — वही सन् १९०६–८ पृ० ३२३।

७७ ३। "सूरसागर" में श्रीमद्भागवत का आधार ग्रहण किया गया है किन्तु श्री कृष्ण सम्बन्धी प्रसंगों को ही विस्तार दिया गया है। उदाहरण स्वरूप पंचम और षष्ठ स्कन्धों में श्रीकृष्ण सम्बन्धी कथा नहीं है इसलिए इनमें केवल चार चार पद हैं। सूरसागर के दशम स्कन्ध में कृष्णाख्यान का समावेश है इसलिए इसके पूर्वार्द्ध में ३४६४ पद और उत्तरार्ध में १३८ पद हैं। पूर्वार्द्ध में अधिक पद-संख्या का कारण यह है कि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित सूरदास बाल श्रीकृष्ण के उपासक थे जिनके चरित्र का समावेश इस दशम संग के पूर्वार्द्ध में हुआ है। उत्तरार्द्ध में द्वारिका गमन से अंत तक का श्रीकृष्ण का चरित्र है जिसका वर्णन संक्षिप्त रूप में हुआ है। दशम संग के उत्तरार्द्ध में ही श्रीकृष्ण के अनेक विवाहों का वर्णन किया गया है, जिनमें रुक्मिणी विवाह पर आधारित "रुक्मिणी मंगल" मुख्य है।

७८ १। वल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अष्टछाप नामक कवि मण्डल की योजना की। अष्टछाप में सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, चतुर्भुज दास, छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी का समावेश किया। नन्ददास ने "रुक्मिणी मंगल" नामक कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक काव्य लिखा। इसमें ६० पद्यों का समावेश हुआ है।[1] नन्ददास की विवाह विषयक अन्य रचना ६३ पद्य परक 'स्यामा-स्याम सगाई' है। इस रचना में स्यामा और स्याम की सगाई का वर्णन है।[2]

७९ २। अकबर के दरबार में नरहरि व दीजन नामक कवि थे जिनका रचित "रुक्मिणी मंगल" प्राप्त होता है। कालान्तर में अनेक कवि विवाह मंगल सम्बन्धी काव्य लिखते रहे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ-सर्वेक्षण, शिवसिंह सरोज, मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर के लेखों और डा० ग्रियर्सन के "माडन वर्नाकूलर लिटरेचर आदि के आधार पर प्रस्तुत "मिश्रबन्धु विनोद" के अनुसार हिन्दी एवं राजस्थानी विवाह मंगल सम्बन्धी रचनायें इस प्रकार हैं—

१ अगाध मंगल, कबीर, कवि संख्या (छ १५८)।[3]
२ अनिरुद्ध विवाह फतेचन्द्र कवि सं० (२२३०)।[4]
३ अनिरुद्ध स्वयंवर, फतेचंद, कवि संख्या (ज०प० २ ८३)।[5]
४ आदिमंगल, महाराजा विश्वनाथसिंह, कवि सं० (१७८४ १)।[6]
५ आनन्द मंगल, मनोराम कवि सं० (छ २६०)[7]
६ उषा अनिरुद्ध, रामदास, कवि सं० (६७६ १)।[8]

१—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १९१२,१३,१४, १९०७ व ८ और १९१७ १८ व १९।
२—वही।
३—पहला भाग, पृ० २२०।
४—तृतीय भाग पृ० १२२५।
५—प्रथम भाग पृ० ८।
६—तृतीय भाग पृ० १०२३।
७—प्रथम भाग १२।
८—द्वितीय भाग पृ० ६१६।

७ उषा हरण, हरखनाथ झा, कवि स० (२२६७)। [1]

८ उषा अनिरुद्ध भारतशाह कवि स० (छ–१४८)। [2]

९ कृष्ण विवाह उत्कण्ठा, श्रीहितवृन्दावनदासजी, कवि म० (७२६)। [3]

१० गुणविजय विवाह, मुरारीदास (दान), कवि स० (१९३४)। [4]

११ गौरा परिणय नाटक, लाल झा मैथिल, कवि स० (१०३०)। [5]

१२ गौरी स्वयवर भगवानदास कवि स० (२३२०)। [6]

१३ जानकी जू का विवाह मणिमदन मिश्र कवि स० (३५८)। [7]

१४ जानकी जू को मगलाचरण, रघुवर शरण कवि स० (छ–३०१ए)। [8]

१५ जानकी मंगल, मयो यानाथ शर्मा, कवि स० (४४०)। [9]

१६ जानकी मगल, रामलाल, कवि सं० (२२८२)। [10]

१७ जानकी मगल, शीतलाप्रसाद तिवारी, कवि स० (२५२८)। [11]

१८ जानकी मगल परमानन्द प्रधान, कवि सं० (छ प १ ७५)। [12]

१९. जानकी स्वयवर हनुमान प्रसाद वैश्य, कवि स० (४०६२)। [13]

२० जानकी स्वयवर, ठाकुरप्रसाद, कवि स० (२४५७)। [14]

२१ द्रौपदी स्वयवर, रामजी शर्मा, मधुवली कवि स० (४२९६)। [15]

२२ धनुष भग मान द्विवेदी, कवि स० (३८६१)। [16]

२३ धनुष यज्ञ, रामनाथ प्रधान, कवि स० (१२४५)। [17]

२४ धनुष यज्ञ, (नाटक) शिवबालकराम पाडे, कवि स० (४०५८)। [18]

२५ नेमिनाथ राजल विवाह, विनोदीलाल कवि स० (५२२ १)। [19]

२६ पार्वती परिणय, सदाशिव दीक्षित कवि स० (४२१८)। [1]

---

१ – तृतीय भाग, पृ० १२१५।
२ – पहला भाग पृ० १७।
३ – द्वितीय भाग पृ० ६६०।
४ – तृतीय भाग, पृ० १०७६।
५ – द्वितीय भाग पृ० ८१६।
६ – तृतीय भाग, पृ० १२४१।
७ – द्वितीय भाग पृ० ४४३।
८ – पहला भाग, पृ० ५३।
९ – द्वितीय भाग, पृ० ६०३।
१० – तृतीय भाग पृ० १२३८।
११ – तृतीय भाग पृ० १३११।
१२ – पहला भाग, पृ० ६।
१३ – द्वितीय भाग, पृ० ४३३।
१४ – तृतीय भाग, पृ० १२६५।
१५ – द्वितीय भाग, पृ० २१४।
१६ – चतुर्थ भाग पृ० ३४५।
१७ – द्वितीय भाग, पृ० ६२६।
१८ – चतुर्थ भाग पृ० ४३२।
१९ – द्वितीय भाग पृ० ५१५।
२० – चतुर्थ भाग पृ० ४६८।

२७ पार्वती मंगल, अयोध्यानाथ शर्मा, कवि सं० (४४४०)।[1]
२८ ब्याहलो, घुंघदास, कवि संख्या (२७६)।[2]
२९ ब्याहलो, रसिक बिहारी दास, कवि सं० (३७४)।[3]
३० ब्याह विनोद गणेश कवि सं० (२०२८ १)।[4]
३१ बना रघुवरशरण, कवि सं० (२३०२ २)।[5]
३२ बाल विवाह, सगबहादुर, कवि सं० (२३४१)।[6]
३३ भवानी मंगल, चतुर्भुजदास स्वामी, कवि सं० (३८४६)।[7]
३४ मंगल, कृष्णदास, कवि सं० (६८८)।[8]
३५ मंगल, लालूदास स्वामी, कवि सं० (११' १)।[9]
३६ मंगल पचासा, जवाहिरसिंह कायस्थ, कवि सं० (१२६७)।[10]
३७ मंगल मुहूर्त, रामानंद शर्मा, कवि सं० (४४६१)।[11]
३८ मंगल व बदरीनारायण चौधरी, कवि सं० (२३४३)।[12]
३९ मंगलसार, स्वामी चतुर्भुजदास, (प्रष्ट छाप वाले नहीं) कवि सं० (२८०)।[13]

४० मंगलशतक, रामसखे, कवि सं० (८६०)।[14]
४१ मंगलशतक त्रिलोचन झा कवि सं० (३७४०)।[15]
४२ युगल मंगल स्तोत्र, बदरीनारायण चौधरी, कवि सं० (२३४३)।[16]
४३ रुक्मिणी जी रो ब्याहलो, पदम भगत, कवि सं० (२४६)।[17]
४४ रुक्मिणी मंगल मिहिरचंद, कवि सं० (३३८ १)।[18]
४५ रुक्मिणी हरण, चक्रपाणि व्यास, कवि सं० (३६ २)।[19]
४६ रुक्मिणी मंगल, हीरालाल कायस्थ।[20]
४७ रुक्मिणी मंगल, हित रामकृष्ण कवि सं० (७४७)।[21]
४८ रुक्मिणी हरण, महाराजा रामसिंह जी, कवि सं० (६०० ३)।[22]

---

१ — चतुर्थ भाग, पृ० ६०३।
२ — द्वितीय भाग, पृ० ४०१।
३ — द्वितीय भाग, पृ० ४५६।
४ — तृतीय भाग, पृ० ११०२।
५ — तृतीय भाग पृ० ११८।
६ — तृतीय भाग, पृ० १०२८॥
७ — चतुर्थ भाग, पृ० ३११।
८ — द्वितीय भाग, पृ० ८०६।
९ — पहला भाग, पृ० ३३४।
१० — द्वितीय भाग, पृ० ६६४।।
११ — चतुर्थ भाग, पृ० ६०१।
१२ — तृतीय भाग, पृ० १२४८।
१३ — द्वितीय भाग, पृ० ४०२।
१४ — द्वितीय भाग, पृ० ७२०।
१५ — चतुर्थ भाग, पृ० २६०।
१६ — तृतीय भाग, पृ० १२४८।
१७ — पहला भाग, पृ० ४४१।
१८ — पहला भाग, पृ० ४००।
१९ — पहला भाग, पृ० २४२।
२० — पहला भाग, पृ० ४२८।
२१ — द्वितीय भाग, पृ० ६८५।
२२ — चतुर्थ भाग, पृ० ५२।

४९ रुक्मिणी विवाह काव्य, जनप्रवीण कवि सं० (९९२ २)।[1]
५० रुक्मिणी विवाह मुक्तानन्द स्वामी, (११७० २)।[2]
५१ रुक्मिणी विवाह हरिदत्त नारायण, कवि सं० (३४६४)।[3]
५२ रुक्मिणी परिणय (नाटक), अयोध्यासिंह उपाध्याय कवि सं०(३४७१)।[4]
५३ रुक्मिणी मंगल, बरजोर प्रधान कायस्थ (कवि सं०) (१५६५)।[5]
५४ रुक्मिणी स्वयंवर, रघुराजसिंह, कवि सं० (१८८०–१९१६)।[6]
५५ रुक्मिणी मंगल, रामलाल कवि सं० (२०११ १)।[7]
५६ रुक्मिणी मंगल देवकीनन्दन त्रिपाठी कवि सं० (२२२१ १)।[8]
५७ रुक्मिणी मंगल, ठाकुरदास कवि सं० (२३६८)।[9]
५८ रुक्मिणी मंगल, नरहरि, कवि सं० (५–११)।[10]
५९ रस विवाह भाजन परमानन्द हित।[11]
६० राम स्वयंवर ब्रजरत्नदास, कवि सं० (१९७४)।[12]
६१ रामलगन, देवकवि काष्ठजिह्वा, कवि सं० (१७९०)।[13]
६२ राधा मंगल, रसिक सुन्दर, कवि सं० (२०४८)।[14]
६३ राधाजी को ब्याह श्री रूप जी कवि सं० (२२३७)।[15]
६४ रामस्वयंवर, महाराज रघुराजसिंह।[16]
६५ लग्नाष्टक महात्मा नागरीदास महाराजा कवि सं० (१४९)।[17]
६६ लगन पचासी कृपानिवास, कवि सं० (९७२)।[18]
६७ वधु विनोद कालिदास, कवि संख्या (६–१७८)।[19]
६८ वैदिक विवाहपद्धति, आत्माराम, कवि संख्या (३६५०)।[20]
६९ विवाह प्रकरण, वृन्दावनदास कवि सं० (९०६)।[21]
७० विवाह समय कृपानिवास, कवि सं० (९७२)।[22]

---

१ – चतुर्थ भाग पृ० ६८।
२ – चतुर्थ भाग, पृ० ८०।
३ – चतुर्थ भाग पृ० १३६।
४ – चतुर्थ भाग पृ० १७५।
५ – तृतीय भाग, पृ० ९८६।
६ – तृतीय भाग पृ० १०४६।
७ – तृतीय भाग, पृ० १०९५।
८ – तृतीय भाग पृ० १०२१।
९ – तृतीय भाग, पृ० १०८६।
१० – चतुर्थ भाग पृ० ७५।
११ – चतुर्थ भाग, पृ० ८५।
१२ – चतुर्थ भाग पृ० ४०२।
१३ – तृतीय भाग पृ० १०२८।
१४ – तृतीय भाग, पृ० ११०७।
१५ – तृतीय भाग, पृ० १२४४।
१६ – क–पहला भाग पृ० १४, ख–तृतीय भाग पृ० १०४६।
१७ – द्वितीय भाग पृ० ४९६।
१८ – द्वितीय भाग पृ० ७१९।
१९ – पहला भाग, पृ० २३।
२० – चतुर्थ भाग पृ० २३४।
२१ – द्वितीय भाग पृ० ७१२।
२२ – द्वितीय भाग, पृ० ७१८।

७१ विवाह-विलास, कृष्णावती, कवि स० (१३६० १) ।[१]

७२ सत्यभामा-मगल, वृजनन्दन सहाय कवि स० (३५४३) ।[२]

७३ सदाशिव-विवाह, रणछोडजी, कवि स० (१६६० १) ।[३]

७४ सयोगिता स्वयवर श्रीनिवास दास कवि स० (२१७८) ।[४]

७५ सीताराम विवाह, मून कवि स० (११२५) ।[५]

७६ सीता-स्वयवर, नवलसिंह कायस्थ, कवि स (११३३) ।[६]

७७ सीता-मगल प्रियादास महाराजा, कवि स (१२१८२) ।[७]

७८ सीता-स्वयवर गिरिधर महाराष्ट्र, कवि स० (५३०-प्र) ।[८]

७९ सिया स्वयवर, गोपालजी मोढाराम कवि स० (२८८४ प्रा) ।[९]

८० सीता स्वयवर, रविदेव ओझा कवि स० (५७५४) ।[१०]

८१ सीता-स्वयवर, क्षमापति वर्मा हरप्रसाद सिंह, प्रवीण कवि स० (३५५६ प्र) ।[११]

८२ सिय स्वयवर [नाटक] अम्बिकादत्त त्रिपाठी, कवि स० (३६७८) ।[१२]

८३ सिय-स्वयवर, रमेशचन्द्र मिश्र कवि स० (४३६३) ।[१३]

८४ सिया-स्वयवर, कालिका प्रसाद, कवि स० (ज० व० २८२) ।[१४]

८५ सीता-स्वयवर-रामनारायण, कवि स० (४११४) ।[१५]

८६ सीता-स्वयवर, वृन्दावन कायस्थ, कवि स० (३५०१) ।[१६]

८७ शभु-विवाह, भगवान दीन मिश्र, कवि स० (४१०३) ।[१७]

८८ शिव परिणय, जानकी प्रसाद द्विवेदी, कवि स० (३८८३) ।[१८]

८९ श्री राम धनुष यज्ञ भगवान दीन मिश्र कवि स० ४१०३) ।[१९]

---

१ – तृतीय भाग पृ० ६९५ ।
२ – चतुर्थ भाग, पृ० २३८ ।
३ – तृतीय भाग, पृ० ६६० ।
४ – तृतीय भाग पृ० ११६६ ।
५ – द्वितीय भाग पृ० ८५१ ।
६ – क–प्रथम भाग पृ० ७६ ।
ख – द्वितीय भाग पृ० ८३० ।
७ – द्वितीय भाग पृ० ८६४ ।
८ – चतुर्थ भाग पृ० ४६ ।
९ – चतुर्थ भाग पृ० १२१ ।
१० – चतुर्थ भाग पृ० १९८ ।
११ – चतुर्थ भाग पृ० २४८ ।
१२ – चतुर्थ भाग पृ० ४०३ ।
१३ – वही पृ० ५८५ ।
१४ – प्रथम भाग पृ० १ ।
१५ – चतुर्थ भाग, पृ० ६४४ ।
१६ – तृतीय भाग पृ० १२०३ ।
१७ – चतुर्थ भाग, पृ० ४४० ।
१८ – चतुर्थ भाग पृ० ३३१ ।
१९ – चतुर्थ भाग पृ० ४४० ।

१० श्री [illegible] कवि [illegible] (२११८)।[1]

११ जिनदत्तसूरि ओर [illegible] [illegible] कवि [illegible] (१६०३)।[2]

१२ [illegible] कवि [illegible] (१६६१)।[3]

१३ [illegible]—[illegible][4]

१० [illegible] [illegible]

[illegible] इस प्रकार है—

[illegible] विवाह [illegible]

१ [illegible] विवाहलउ गाथा ३२ [illegible] १७ वीं [illegible]।

२ [illegible] विवाहलउ, [illegible] सूरि १५ [illegible]।

३ शान्तिनाथ विवाहला गा० [illegible] संवत् १६७५ के पूर्व।

४ शान्तिनाथ विवाहला, गा० १५, खेमराज अंचलगच्छ भंडार, १६ वीं शती।

५ शान्तिनाथ विवाहला [illegible] १७ वीं शती।

६ शान्तिनाथ विवाहलो गा० ३५, रत्नचन्द्र १६वीं शती।

७ पार्श्वकुमार विवाहलउ गा० ४९ [illegible] १६वीं शती।

८ पार्श्वकुमार विवाहलउ, गा० ३५ [illegible], १६ वीं शती संभव है उक्त दोनों रचनाएं एक ही है।

९ पार्श्वकुमार विवाहलउ, गा० २४ प्रमाण।

१० जम्बूस्वामि[illegible] विवाहलउ गा० ६३ [illegible] १६ वीं शती।

११ ऋषभदेव विवाह—धवल, [illegible], १६ वीं शती।

१२ ऋषभदेव विवाह धवल गा० २७८ [illegible] १६ वीं शती।

१३ [illegible] विवाह, जिनप्रभ सूरि, १४ वीं शती।

१४ कीर्तिरत्न सूरि विवाहलो गा० ५४ कल्याणचन्द्र, १६ वीं शती।

१५ [illegible] विवाहलो, गा० १५ [illegible], १६ वीं शती

१६ कृष्ण विवाहलउ [illegible] १८ वीं शती।

१– तृतीय भाग, पृ० १२८६। २ –द्वितीय भाग पृ० ४०१।

३ – द्वितीय भाग, पृ० ८७६। ४ – प्रथम भाग, पृ० ६२

१७ गुणरत्न सूरि विवाहला, गा० ४०, पद्म मंदिर, १६ वी शती।

१८ चन्द्रप्रभ विवाहलउ गा० ४१, उदयवर्धन, १६८४।

१६ जंबू अंतरंग विवाहला, गा० ६३ सहजसुन्दर, १५७२।

२१ जम्बूस्वामी विवाहला, गा० १२, अज्ञात।

२० जम्बूस्वामी-विवाहलो गा० ९५ हीरानंद सूरी, सं० १४८५।

२२ जिनचन्द्र सूरि विवाहलो, गा० ५, सहजज्ञान, सं० १४०६।

२३ जिनेश्वरसूरि विवाहला गा० ३३, सोममूर्ति, सं० १३३१।

२४ जिनोदयसूरि विवाहला गा० ४४, मेरुनंदन सं० १४३२।

२५ नेमिनाथ विवाहलो, अज्ञात।

२६ नेमिनाथ विवाहलो, धवल ढाल ४८, ब्रह्मविनय देवसूरि सं० १६१५।

२७ नेमिनाथ विवाहला, महिमसुन्दर सं० १६६५।

२८ नेमिनाथ विवाहला, गरबा ढाल ९२ वीर विजय, सं० १८६०।

२६ नेमिनाथ विवाहलो ऋषभविजय १८८६।

३० नेमिनाथ विवाह ववलचन्द्र १६२६।

३१ पार्श्वनाथ विवाहलो गा० ३६ ६९ अज्ञात, सं० १४१२ वै० सु० ११।

३२ पार्श्वनाथ विवाहलो पद्यो, १६ वी शती।

३३ पार्श्वनाथ विवाहलो गा० ८, क्षमराज जैसलमेर भंडार १६ वी शती।

३४ पार्श्वनाथ विवाहलो ढाल ४६, ब्रह्मविनयदेव सूरि, सं० १६१७ सावण।

३५ पार्श्वनाथ विवाहलो, रंग विजय सं० १८६०।

३६ पार्श्वनाथ विवाहलो, गा० ६१, विजयरत्नसूरि भण्डार १८वी शती।

३७ पिप्पलगच्छ गुरु विवाहलो गा० ५, अज्ञात १६वी शती।

३८ मंगलकलश विवाहलउ गा० १७०, धनराज, सं० १४६०।

३६ महावीर विवाहलउ, कीर्तिराज, १५ वी शताब्दी।

४० महावीर विवाहलउ, गा० ३२२ अज्ञात अनंतनाथजी भण्डार १७वी शती।

४१ वीरचरित्र विवाहलो, ढाल ३७ ब्रह्मविनयदेव सूरि १७वी शताब्दी।

४२ विवाहलउ, गा० २५ अज्ञात १५वी शताब्दी।

४३ शालिभद्र विवाहलो, गा० ४४, लक्ष्मण, सं० १५६८ लिखित।

४४ शांतिनाथ विवाहलउ हर्ष धम, १६वी शताब्दी।

४५ शान्तिनाथ विवाहलउ धवल, आनन्द सं० प्रमोद सं० १५९१

४६ शांतिनाथ विवाहलउ, सहजकीर्ति सं० १६७८।

४७ शान्तिनाथ विवाहलउ कल्याणचन्द्र सूरि, १७वीं शती।
४८ सुमतिजिन विवाहलउ पद्य ३४, जिनचन्द्र सूरि सं० १६१२।
४९ हेम विमल सूरि विवाहलउ गा० ७१ १६वीं शताब्दी।
५० सुमति साधु सूरि विवाहलउ गा० ८१ लावण्यसमय, १६वीं शताब्दी।
५१ श्री महावीर विवाहलउ हेमरत्नसूरि शिष्य, सं० १५१८।
५२ शान्तिनाथ विवाहलउ।
५३ शान्ति विवाहलउ, गा० ७७, तपोरत्न १६वीं शती।
५४ महादेव पार्वती रो वत रिमनाजी वि०सं० १६६० १७००।
५५ रुक्मिणी मंगल।[1]

८१ ३। उक्त रचनाओं के अतिरिक्त विवाह संज्ञक निम्न लिखित रचनायें और प्राप्त हुई हैं —

१ ईश्वर विवाह दवीदास, लि० का० सं० १६१८ उत्कट शुक्ला २।[2]
२ परणा रुक्मिणी री, अज्ञात कवि कृत[3]
३ कानजी विवाहलो, अज्ञात कवि कृत।[4]
४ किसन हिलोल, र० का० सं० १७८७[5]
५ कृष्णजी रो विवाहलो, अज्ञात जैन कवि कृत लि० का० सं० १७८६।[6]
६ कृष्ण जी री वेलि, धर्मसी सासला, लि० का० सं० १६१४।[7]
७ कृष्ण रुक्मिणी मंगल, कायस्थ ववरचंद फूलचन्दोत कृत सं १९०६—मेड़ता।[8]
८ गौर ब्यावलो हात गोवधन।[9]
९ जानकी मंगल महताबसिंह मलसा सं० १९०९ कार्तिक कृष्णा १० रविवासरे।[2]

---

१ श्री अगरचन्द जी नाहटा, बीकानेर की सूची, प्राचीन काव्यों की रूपपरम्परा, पृ० ५८ ६३।
२ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, पृ० ५।
३-४ लेखक के निजी संग्रह में।
५-श्री अगरचन्द नाहटा मरु भारती वर्ष १० अङ्क २, जुलाई १९६२।
६-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
७-अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।
८-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
९-श्री सूर्यशंकर पारीक का निबन्ध, वरदा त्रिमास, वर्ष ४ अङ्क २, पृ० ६४।

१० महादेव विवाहलो, कर्ता अज्ञात।[१]

११ रामदेव जी को ब्यावलो, प० पूनमचंदजी सुखवाल कृत।[२]

१२ रुक्मिणी कृष्णजी रो रासो तिमरदास कृत।[३]

१३ रुक्मिणी बारामासिया, रूलीराम पुजारी।[४]

१४ रुक्मिणी मगल, केसाराय, वि०स० १७८०।

१५ रुक्मिणी मगल, समय सुदर।[५]

१६ रुक्मिणी मगल, रूपमति कृत।[६]

१७ रुक्मिणी मगल सहसमल कृत, वि स० १७०१।[७]

१८ रुक्मिणी मगल हृदयराम कृत।

१९ रुक्मिणी मगल प्रियादास कृत।[८]

२० रुक्मिणी मगल, इन्दरमन कृत।[९]

२१ रुक्मिणी मगल, हीरामणि कृत।

२२ रुक्मिणी मगल, ऊदो।[१०]

२३ रुक्मिणी मगल महाचद द्विज, र० का० वि० स० १७७१ पौष शुक्ला १, सोमवार।

२४ रुक्मिणी मगल ख्याल, प० बंशीधर शर्मा।[११]

१–लेखक का निजी सग्रह, यह ग्रन्थ महादेव–विवाहलों से भिन्न एक लघु रचना है।

२–प्रकाशक शिवदयाल लखारा बुकसेलर, मुकाम सांन्डिया, पोस्ट भामनपुर (काल्हू मारवाड़)।

३–जयपुर ग्रंथ–भण्डार सूची, श्री कासलीवाल की भूमिका पृ ३–४४।

४–क–श्री दारूका भजन संग्रह भाग १ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता।
ख रुक्मिणी मगल, हिन्दी पुस्तकालय मथुरा।

५–राजस्थान प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रन्थांक १८५०३।

६–श्री दीनदयाल ओझा का निबन्ध वरदा बिसाऊ अक्टूबर १९६१।

७–राजस्थान भारती, बीकानेर।

८–पत्र सं० ६८, राजस्थान प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रंथांक ? ६००।

९–अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर।

१०–प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, श्री अगरचन्द नाहटा पृ० ६३।

११–प्रकाशक, प० बंशीधर शर्मा किशनगढ़।

२५ रुक्मिणी मगल, उमादत्त । [1]
२६ रुक्मिणी रास, न दलाल र० का० वि० स० १८७६ । [2]
२७ रुक्मिणी 'बलाम प्रबन्ध' लि का०स० १८६६, फाल्गुन कृष्ण,⁴ ।[3]
२८ रुक्मणी विवाहलो प्रथम अज्ञात कवि कृत । [4]
२६ रुक्मिणी विवाहलो द्वितीय, अज्ञात कवि कृत । [5]
३० रुक्मिणी हरण बु भोजो भूला । [6]
३१, रुक्मिणी हरण विट्ठलदास स० १८११, फागुण वदी ६ अदीतवार, लिखी । [7]
३२ रुक्मिणी हरण रत्नभूषण । [8]
३३ रुक्मिणी हरण सावलदास बारहठ । [9]
३४ रुक्मिणी हरण अज्ञात कवि कृत प्रथम । [10]
३५ रुक्मिणी-हरण अज्ञात कवि कृत द्वितीय । [11]
३६ रुक्मिणी हरण सू' कृत वि० स० १६०४ में लिपि कृत । [12]
३७ रुक्मिणी हरण, सायाजी भूला [वि० स० १६३२ १७०३]। [13]
३८ शिवजी रो विवाहलो शम्भुराम, जोधपुर निवासी कृत वि० स० १६०७। [14]
६ हरजी रो हुडमडो, अज्ञात कवि कृत । [15]

१–रुक्मिणी मगल गीतावली प० कृष्णानन्द व्यास कलकत्ता द्वारा प्रकाशित ।
२–त्रिम चारित्र सग्रह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा बीकानेर ।
३–पद्य स० १०३ ।
४ – लेखक के निजी सग्रह म ।
५ – लेखक के निजी सग्रह में ।
६ – चारणी अने चारणी साहि य श्री झवेरचन्द मेघाणी पृ० १८८ ।
७ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्र थाक २०१२६, ग्रथव बीठलदास रो कह्यो अमरकोट लोढ़ा रे रहिता ।
८ – जयपुर ग्र थ भण्डार सूचि, श्री कासलीवाल जन अतिशय क्षेत्र महावीर जी जयपुर ।
६ – राजस्थानी शा । सस्थान, जोधपुर ।
१०–११ – लेखक के निजी सग्रह मे ।
१२– राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्र थाक प्र० ८३५ ।
१३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से लेखक के सम्पादन म प्रकाशित ।
१४ – पत्र स०, १५, र० का० १६०७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्र थाक ११०४ ।
१५ – लेखक के निजी सग्रह मे । यह विवाह क अवसर पर गाई जाती है ।

८२ ३ । विवाह सनक काव्यों की परम्परा राजस्थानी साहित्य में चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है । विवाह मूलक राजस्थानी रचनाओं में प्रारम्भिक गच्छीय जिन प्रभसूरि कृत "अंतरग विवाह" प्राचीनतम माना गया है । [1] "अंतरग विवाह" में प्रमाद की पत्तन अर्थात् नगर के रूप में जीव को वर के रूप में चतुर्विध रचनाओं को जानउत्र अर्थात् बारातियों के रूप में और शीलांग को दुल्हन के रूप में चित्रित किया गया है । कथा के अन्त में जीव रूपी वर को मुक्ति से विवाह करवा कर सिद्धपुरी पहुँचा दिया गया है । इस कृति के आदि अन्त इस प्रकार है—

प्रारम्भ—पमाय गुण मग्गु पाटण तहि अह भवि योजिउ निरुवमु वसए ।
चउविह सघु जान उत्रकीय, अह वाहण सहस सीलग ॥१४॥

अन्त—इणि परि परि गए जो अजगि अहे लहइ मो सिद्धि पुरिवासु ।
मगलिकु वीर जिण प्रभह अहे मगलिकु च चउवीह सघ ए ॥[2]

८३ ३ इस काव्य की पुष्पिका से प्रकट होता है कि यह काव्य रास व न से गेय है, साथ ही इसका विवाह और धवल नाम भी मनाते गए हैं । [3] धवल मंगल भी "मगल" संज्ञा की तरह विवाह सम्बन्धी काव्यों के लिए प्रयुक्त होती रही है । परवर्ती सहज सुन्दर कृत 'जम्बू अन्तरग विवाहलो' भी इसी प्रकार का काव्य है । तदुपरान्त सवत् १३३१ में रचित सोममूर्ति का 'जिनेश्वर सूरि सयम श्री विवाह वर्णन रास' उपलब्ध होता है । इस रास में जिनेश्वर सूरि नामक खरतर गच्छीय आचार्य की दीक्षा वर्णन करते हुए कवि ने दीक्षा कुमारी अथवा सयम श्री को कन्या मानकर हुए विवाह का रूपक प्रस्तुत किया है । जिनेश्वर सूरि मरुकोट अर्थात् मारवाड़ के नमिचन्द्र भण्डारी के पुत्र थे । इनका मूल नाम अम्बड़ कुमार था और इनका जन्म वि० स० १२४५ में हुआ था । अम्बड़ कुमार की दीक्षा जिनपति सूरि द्वारा खेड नगर में सम्पन्न होती है जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

अभिनव ए चालिय जानउत्र अंबड तणई वीवाहि ।
आपुणु ए धम्मह चक्कवइ हुयउ जानह माहि ॥१६॥
आवहि आवहि रग भरी, पत्र महुव्वयराय ।
गायहि गायहि महुर सरि, अट्टय महव्वयराय ॥१७॥

---

१ – क ताड पत्रीय प्रति, वि० स० १३०० के लगभग लिखित जैन ग्रन्थ भण्डार पाटण ।
ख–श्री अगरचन्द नाहटा, प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा पृ० ४८ ४९ ।

२ – वही ।

३ – 'अंतरग विवाह धवल वसत रागेण भणनीय ।" वही ।

के प्राचीन विवाहले भी उपलब्ध होते हैं, जिनका रचना काल १५ वी से २० वी सदी तक) माना गया है। [1]

८६ ३। उक्त विवेचन से प्रकट होता है कि हमारे साहित्य में विवाह-सम्बन्धी काव्यों की सुदीर्घ परम्परा प्रत सलिला के रूप में उपलब्ध होती है। मानव जीवन में विवाह एक विशेष आनन्द और उल्लास का अवसर होता है। विवाह के अवसर पर वर और वधु दोनों ही पक्षो के परिजन और परिचित व्यक्ति अनेक दिनों तक उत्सव की आयोजना करते हैं। विवाहोत्सव में नृत्य, संगीत और काव्यरूपी त्रिवेणी का संगम होता है तथा अनेक व्यक्तियों को उल्लासयुक्त हार्दिक अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

८७ ३। हमारे कवियों ने विवाह सम्बन्धी प्रसंगो में विशेष रुचि ली है। नायक नायिकाओं के विवाहो का वर्णन हमारे कवियो ने पूर्ण हार्दिकता के साथ किया है। अनेक काव्यो में विवाह प्रसंग प्रासंगिक कथा के रूप में सन्निविष्ट हुआ है। साथ ही विवाह सम्बन्धी अनेक स्वतन्त्र रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं। हमारे कवियों को विवाह के अवसर पर होने वाले प्रेमालापो, सन्देशो के आदान प्रदान, सेनाओ के प्रयाण, युद्ध पाणिग्रहण, नायक-नायिका मिलन, नख शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन आदि प्रसंगों में आत्माभिव्यक्ति का अनूठा अवसर उपलब्ध होता रहा है। विवाह सम्बन्धी प्रसंगों में कवियों का रुचिगत विविध प्रकार की मार्मिक अभिव्यक्ति के अवसर मिल जाते हैं जिनमें शांत, शृंगार और वीर आदि रसो की निष्पत्ति सम्भव होती है।

८८ ३। संक्षेप में लिखना है कि निम्नलिखित कारणों से विवाह सम्बन्धी अवसर कवियो के लिए विशेष रुचिप्रद हुए हैं—

[१] नायिका की बाल लीला, वयः संधि, नख शिख निरूपण प्रिय नायक के प्रीत सदेश-प्रेषण, नायक नायिका मिलन, प्रेमालाप, षट्ऋतु आदि के वर्णन का प्रसंग प्राप्त होना।

[२] भक्त कवियो के लिए नायक के प्रति और अन्य देवी देवताओं के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के प्रसंगो की प्राप्ति होना।

[३] वीर रस के कवियो को युद्ध के लिए भूमिका प्राप्त होना सेना की साज-सज्जा अश्व गज रथादि वाहनो, विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रो सैनिको की वेशभूषाओं, रण वाद्यो, सेना प्रयाण, शस्त्रास्त्रों के प्रहार, वीरो की हुंकार, कायरो की भाग-दौड़, घायलो की कराहट, शिव, काली, भूत प्रेतो, योगिनियो आदि की लालाओं, जलचर पशु पक्षियो दुर्ग भेदन और विजयोपरांत आनन्ददायक परिस्थितियो के चित्रण का अवसर प्राप्त होना।

---

१ – प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० ५२।

[४] विवाह प्रसंग में निहित नर नारियों की आनन्दपूर्ण अभिव्यक्ति, वस्त्रा भूषणों, और विविध शृंगारों का वर्णन, नगर, हाट, घर, द्वार और आंगन की साज-सज्जा, दीपमालिका, आतिशबाजी, सामूहिक भोज आदि के प्रसंग उपलब्ध होना।

[५] कवियों को विवाह रूपक के अन्तर्गत वर वधु के रूप में परमात्मा आत्मा,[1] साधु-संयमश्री[2] और वीर विजयश्री[3] आदि के वरण वर्णन के अवसर उपलब्ध होना।

८६. ३। इस प्रकार हमारे कवियों को विवाह दर्शन इतने प्रिय रहे हैं कि पशु पक्षियों,[4] साग सब्जियों[5] और फल फूलों[6] आदि के काल्पनिक विवाह वर्णन भी उपलब्ध होते हैं।

---

१ — क — दुलहिनी गावहु मंगलाचार। पद, कबीरदास।
ख — गावहु गावहु आणो बिबेक बिचार। पद, गुरु नानक, आदि।

२ — क — जिनेश्वर-सूरि दीक्षा विवाह-वर्णन रास, सोममूर्ति कृत, जैन गुर्जर कविओ मो० द० देसाई भाग १ पृ० ७।
ख — जिनोदयसूरि विवाहलउ, मेरुनन्दन कृत, वही, पृ० १८ १९।
ग — सुमति सूरि विवाहलो, लावण्यसमय कृत, वही, पृ० ८५।

३ — राठौड़ रतनसी खींवावत री वेल, दूदो, सं० १६१४ लगभग, सं० श्री नारायणसिंह भाटी, राज० शो० सं०, जोधपुर।

४ — जनावर नी जान, सबलराम कृत और पक्षीओ नो विवाह, गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, पद्य विभाग, प्रो० मजूमदार, पृ० ३६५।

५ — क — बैंगण न वर थोड़े, वही पृ० ३६६।
ख — 'करेला री आई है बरात' लेखक का निजी संग्रह।

६ — 'केला री हुई है सगाई', वही।

चतुर्थ अध्याय

श्रीकृष्ण चरित्र और श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्यों के प्रेरणा स्रोत

१–श्रीकृष्ण–चरित्र

२–श्री कृष्ण–रुक्मिणी–विवाह सम्बन्धी काव्यो के प्रेरणा स्रोत

(क) श्रीमद्भागवत का श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन

(ख) विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण का श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन

(ग) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी संस्कृत रचनाएं

(घ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी अपभ्रंश एवं जैन रचनाएं

(ङ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह विषयक ब्रज भाषा की रचनाएं—

(१) विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल
(२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी मंगल
(३) कविवर नन्ददास कृत रुक्मिणी मंगल
(४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी मंगल
(५) रघुनाथ सिंह कृत रुक्मिणी-परिणय
(६) श्री कृष्णानन्द व्यास कृत संगीत रुक्मिणी मंगल
(७) प्रभुदास कृत रुक्मिणी-मंगल

(च) कृष्ण रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की प्रेरक परिस्थिति

चतुर्थ अध्याय

श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत।

(१) श्री कृष्ण-चरित्र

१.४। भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्र में अनेक बाल लीलाओं का चापल्य, रास-लीला की रसिकता, वंशीवादन और ग्वाल नृत्य का कला प्रेम, कुंजविहार का शृंगार, गोप लीलाओं का माधुर्य, शकटासुर, वत्सासुर, अघासुर, धेनुक, प्रलम्बासुर, बकासुर और कंस आदि को मारने की वीरता, श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान, महाभारत की नीतिज्ञता तथा राजसी ऐश्वर्य आदि लौकिक एवं अलौकिक तत्व हैं अतएव इससे अनेक कवि कोविद और कलाकार युग युगान्तर से प्रेरित होते रहे हैं। श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी मानवी रूप धारण कर विभिन्न लीलाओं का प्रसार करने वाले हैं, आजीवन गृहस्थ रूप में रहते हुए भी योगेश्वर हैं और देवराज इन्द्र को पराजित करने में समर्थ होते हुए भी नीतिवश रण छोड़ हैं। श्रीकृष्ण की समकक्षता में कोई अन्य चरित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिसमें सर्वांगीण प्रभाव से युक्त ऐसी विविधता हो।

२.४। भारतीय साहित्यिक परम्परा के साथ ही संगीत, चित्रकला, नृत्य, शिल्प, स्थापत्य, वेश भूषा, साज सज्जा और सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एवं विचार धारा पर श्रीकृष्ण का प्रभाव स्पष्टरूपेण लक्षित होता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय जनता के लिए एक अजस्र प्रेरणा-स्रोत हैं और लोक रक्षक के साथ ही लोकरंजक रूप में प्रतिष्ठित हैं।

३.४। श्रीकृष्ण नाम का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में एक स्तोता ऋषि के रूप में प्राप्त होता है। यहां श्रीकृष्ण सोमपान के लिए अश्विनिकुमारों का आह्वान करते हुए बताये गये हैं —

'आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥१॥
इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥२॥
अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू। मध्व सोमस्य पीतये ॥३॥
शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा। मध्व सोमस्य पीतये ॥४॥
छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा। मध्व सोमस्य पीतये ॥५॥
गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना। मध्व सोमस्य पीतये ॥६॥
युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू। मध्व सोमस्य पीतये ॥७॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेनायातमश्विना। मध्व सोमस्य पीतये ॥८॥
नूमे गिरो नासत्याश्विना प्रावत युवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥९॥ [1]

अर्थात् अश्विनिकुमारो ! मेरा आह्वान सुन कर मेरे यज्ञ में हर्षप्रद सोम के पास आओ ॥१॥
हे अश्विद्वय ! इस हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु मेरे स्तोत्र रूप आह्वान को सुनो ॥२॥
हे अश्विद्वय ! तुम अन्न–धन से सम्पन्न हो। मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें हर्ष प्रदायक सोम के लिये आह्वान करता हूं ॥३॥
अश्विद्वय हर्षप्रदायक सोम को पीने हेतु मुझ कृष्ण का आह्वान सुनो ॥४॥
हे अश्विद्वय ! मुझ विद्वान् स्तोता कृष्ण ऋषि के लिये हर्ष प्रदायक सोम के निमित्त आओ ॥५॥
हे अश्विद्वय ! मुझ हविदाता के घर में हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु आगमन करो ॥६॥
हे अश्विनिकुमारो ! हर्षप्रदायक सोम के लिये दृढ़ धागो वाले रथ मे घोड़े जोतो ॥७॥
हे अश्विद्वय ! तीन फलकों वाले त्रिकोण रथ पर हर्ष प्रदायक सोम पीने हेतु आओ ॥८॥
हे अश्विद्वय ! मेरी स्तुति रूपी वाणी के प्रति आकृष्ट हो कर सोम पीने हेतु शीघ्र आगमन करो ॥९॥

४ ४। ऋग्वेद मे ही श्रीकृष्ण के पुत्र विश्वक का भी उल्लेख है—

श्रवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभि।
पशु न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय ॥२३॥ [2]

अर्थात् हे अश्विनौ ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले श्रीकृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने पशु के समान खोए हुए पुत्र विष्णापू से मिला दिया।

५ ४। ऋग्वेद में कृष्ण को एक स्थान पर दैत्य बताते हुए इन्द्र द्वारा कृष्ण की प्रजा के विनाश का वर्णन हुआ है। यहां कृष्ण से इन्द्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है—

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१॥ [3]

अर्थात् हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त अन्नयुक्त स्तुतियां अर्पण करो जिसने राजा "ऋजिश्वा" के साथ कृष्ण दैत्य की प्रजाओं का विनाश किया। हम उस वज्रधारी, वीर्यवान् इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिये आह्वान करते हैं।

६ ४। कृष्ण घोर इन्द्र को एक दूसरे से बढ़ कर बताने का विवाद कालान्तर में अनेक

१—ऋग्वेद मण्डल ८ वां सूक्त ८५ वां (मन्त्र १ से ९) गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
२—ऋग्वेद, मण्डल, १, सूक्त ११६, मन्त्र २३, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
३—ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १०१, मन्त्र १, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

शताब्दियों तक चलता रहा। अन्त में श्रीमद्भागवत्कार ने गोवर्द्धन पर्वत-धारण जैसे प्रसंगो में श्रीकृष्ण की महत्ता इन्द्र से बढकर ही नहीं सर्वोपरि रूप मे प्रकट की।

७ ४। देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का नाम सर्व प्रथम छान्दोग्य उपनिषद् मे प्राप्त होता है जहाँ घोरआंगिरस देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण को विशेष ज्ञान प्रदान करते हैं।[१] देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण की महत्ता सर्वप्रथम महाभारत में प्रतिपादित होती है। महाभारत-युद्ध के लिये अर्जुन इन्द्र की अपेक्षा श्रीकृष्ण के सहयोग को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अर्जुन श्री कृष्ण को इन्द्र से अधिक पराक्रमी बताते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने भोज राजाओं को नष्ट किया, रुक्मिणी का हरण किया, नग्नजित के पुत्रों को पराजित किया राजा पाण्ड्य का सहार किया, काशी नगरी का उद्धार किया, निषाद-राज एकलव्य का वध किया और उग्रसेन के पुत्र सुनाम को मारा। साथ ही अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था मे ही हैहयराज और अन्य राक्षसों को मारा, जलदेवता को परास्त किया तथा इन्द्र के नन्दनवन से सत्यभामा की प्रसन्नता हेतु पारिजात ले आये, आदि।[२]

८ ४। जैनमतानुसार वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव मे से प्रत्येक की सख्या ६ है। यथा—

वासुदेव-त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ स्वयप्रभ, पुरुषोत्तम प्रगट पुण्डरीक, दत्त लक्ष्मण और कृष्ण, बलदेव-अचल, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, शुभमति, रामचन्द्र और बलभद्र, प्रतिवासुदेव-अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधुयशा, निशुम्भ, बलय, प्रल्हाद, रावण और जरासध।[३]

९ ४। श्री आर० जी० भाण्डारकर का मत है कि वासुदेव कृष्ण सभवत सात्वत जाति के प्रसिद्ध राजकुमार थे और मृत्यु के उपरान्त इसी जाति द्वारा सर्वप्रथम पूज्य हुए। सात्वत जाति के अनुकरण में ही कृष्णोपासना का प्रचार अन्य जातियों मे हुआ।[४]

ग्रियसन, मैनेडी और वेबर आदि विद्वानो ने अपना अनुमान प्रकट करते हुए लिखा है कि क्राइस्ट के बाल-चरित् के अनुकरण में ही गोपाल कृष्ण का बाल-चरित निरूपित किया गया है।[५]

१० ४। श्री कृष्ण-चरित्र का पूर्ण विकास श्रीमद्भागवत् महापुराण में उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत् मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को विशेष महत्व दिया गया है किन्तु प्रसगानुसार श्रीकृष्ण के उत्तरकालीन ऐश्वर्यमय स्वरूप अर्थात् महाभारत-कालीन चरित्रों को

१—छान्दोग्य उपनिषद् ३। १७। ४-६।
२—महाभारत, उद्योगपर्व।
३—कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्रम्।
४—ए रिपोर्ट आन सर्च फार संस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस, १८८३-८४, बम्बई १८८७, पृ० ७४।
५—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, हि० सा०, भाग २, पृ० ३२१।

भी निरूपित किया गया है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत् में ऋग्वेद के स्तोता कृष्ण, सात्वता के गोपाल कृष्ण और महाभारत के राजनीतिज्ञ कृष्ण, तीनों ही प्रतिनिधि रूपों का समन्वित चित्रण हुआ है।

भागवत् के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम हैं एवं परम उपास्य हैं। हमारी विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर श्रीमद्भागवत् के कृष्ण का प्रभाव है और यह महान् ग्रन्थ कवि कीर्तिनों भक्तों तथा रसज्ञों का परम प्रिय और उपास्य बन गया है एवं धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के दाता रूप में सुप्रतिष्ठित है। श्रीमद्भागवत् के विषय में लिखा गया है 'भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र के माधुर्य का लोगों को रसास्वादन करा कर कृष्णोपासना के वैष्णव पंथ द्राविड़, महाराष्ट्र गुजरात राजपूताना, उत्तर हिंदुस्तान और बंगाल में स्थापित किये।' १

११ ४। श्रीकृष्णोपासना का पुरातात्विक दृष्टि से प्राचीनतम प्रमाण राजस्थान में माध्यमिक (नगरी चित्तौड़) के वासुदेव मन्दिर-सम्बन्धी भग्नावशेषों में नारायण वाटिका से प्राप्त होता है। २ मथुरा से प्राप्त एक शिला पर वासुदेव को नवजात कृष्ण सहित यमुना पार करते हुये उत्कीर्ण किया गया है। यह मूर्तिपट्ट अनुमानतः प्रथम शताब्दी ई० का है। ३ मथुरा से प्राप्त एक अन्य शिलापट्ट पर कालियदमन का दृश्य प्रदर्शित किया गया है। ४ राजस्थान में मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डोर से एक शिलापट्ट उपलब्ध हुआ है जिस पर श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी गोवर्द्धन धारण माखन चोरी, शकटभंजन और कालियदमन के दृश्य बताये गये हैं। इस शिला का समय ४ थी व ५ वी शताब्दी ई० माना गया है। ५ राजस्थान में सूरतगढ़ (बीकानेर) से मिट्टी की ऐसी पट्टिकायें प्राप्त हुई हैं जिन पर गोवर्द्धन धारण और दान लीला के दृश्य बताये गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में बादामी गुफाओं में श्रीकृष्ण जन्म पूतना वध, शकट भंजन प्रलंब वध, धेनुक वध, कंस वध आदि के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं जिनका निर्माणकाल ५ वी ७वी शताब्दी ईस्वी है। ६

१२ ४। विविध प्रकार के काव्यों में श्रीकृष्ण चरित्र का निरूपण प्रथम शताब्दी ई० से ही प्राप्त होने लगता है। उदाहरण स्वरूप अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई०) कृत संस्कृत काव्य "बुद्धचरित्" और प्राकृत भाषाबद्ध हाल सातवाहन के काव्य 'गाहा सतसई' में श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है। दक्षिण भारतीय आलवार संतों ने भी ५वी से ९वी

१—मराठी वाङ्मय का इतिहास ले० सा० रा० पांगारकर, प्रथम खण्ड पृ० ११०।
२—राजस्थान में भागवत धर्म का प्राचीन केन्द्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ना० प्र० प० सं० २०१४ अंक २-३।
३—इण्डियन आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट वर्ष १९२५-२६।
४—पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में यह पट्ट सुरक्षित है।
५—इण्डियन आर्क्योलोजिकल सर्वे १९०५-६।
६—आर्क्योलोजीकल मेमोयर्स वर्ष १९२८-२९।

शताब्दी पय त श्रीकृष्ण-सम्ब धी अनेक भावपूर्ण पदो की रचनायें की। आलवार भक्तो द्वारा रचित चार हजार भावपूर्ण गीत 'प्रब धम्' नाम से सग्रहीत हैं। इन पदो में विष्णु, नारायण एव वासुदेव और इनके अवतारो के प्रति प्रेम भाव प्रकट किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेम लीलाओ का वर्णन राधा के रूप म हुआ है। नाप्पिन्नाइ गोपी का वर्णन राधा के रूप में हुआ है। नाप्पिन्नाइ को लक्ष्मी का अवतार बताया गया है। सुप्रसिद्ध राजा यशोवर्मा (आठवीं शता दी ईसवी) के सभा कवि वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत महाका य 'गउडवहो' के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण का ही स्तुति गान किया है—

> सो जयइ जामइल्लायमाण मुहलालि वलय परिग्रान्त।
> लच्छि विवेस तेउर-वइ व जोवहइ वण माल ॥
> बालतणम्मि हरिणो जयइ जसो आए चुम्बिय वयण।
> पडिसिद्ध नाहि मग्गुद्ध णिग्गय पुण्डरीयव ॥
> णहरेहा राहा कारणाओ करुणा हरन्तु वो सरसा ॥
> वच्छत्थलम्मि कोत्थुह किरणा अन्नीओ कण्हस्स ॥
> त णमह जेण अज्जवि विलूण कण्ठस्स राहुणो वलई
> दुक्ख मनिव्वरियचिय अभून लहुम्हि सामेंहि ॥ [1]

आन दवध नाचाय रचित ध्वन्यालोक [2] (९वीं शता दी) और कवीन्द्र-वचन समुच्चय (१०वा शता दी) [3] में श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है।

१३ ४। जन आचाय हेमच द्र (१२वीं शताब्दी ई०) ने अपने सुप्रसिद्ध प्राकृत व्याकरण मे कतिपय राधा कृष्ण सम्ब धी पद्य उद्धृत किय हैं। जयदेव ने गीत-गोविन्द में राधाकृष्ण की शृ गारिक लीलाओ का सरस निरूपण किया, जिसका प्रभाव कालान्तर में अनेक कवियो पर लक्षित होता है।

(२) श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत

(क) श्रीमद्भागवत् का कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-वर्णन्-

१४ ४। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध म राजा परीक्षित शुकदेव जी स निवेदन करते हैं— हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक की परम सुन्दरी कन्या

१—मगलाचरण छ० स० २०-२३।
२—२-६-१०, २-५-६।
३—छद स० ४१०।

रुक्मिणी का बलपूर्वक हरण किया और उनके साथ राक्षस विधि से विवाह किया।[१] शुकदेवजी महाराज! जरासन्ध और शाल्व आदि को जीतकर रुक्मिणी-हरण करने की कथा हम सुनना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की लीलायें स्वयं तो पवित्र हैं ही सारे संसार के कालुष्य को दूर कर उसको भी पवित्र करने वाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन रात सेवन करने पर उसमें नित्य नवीन रस मिलता है। ऐसा कौन रसिक और मर्मज्ञ है जो उन्हें सुनकर तृप्त न हो।'[२]

१५ ४। तदुपरान्त श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजा भीष्मक विदर्भदेश के अधिपति थे। उनके क्रमशः रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मेश और रुक्ममाली नामक राजकुमार हुए। उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभव की प्रशंसा सुनी। रुक्मिणी के आगे आगत अतिथि प्रायः श्रीकृष्ण की प्रशंसा गाया करते थे। ऐसी अवस्था में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण का ही पति रूप में वरण करने का निश्चय किया।[३]

१६ ४। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के सौन्दर्य गुण, शीलस्वभाव और शुभ लक्षणों की प्रशंसा सुनी तो उससे विवाह करने का निश्चय किया।[४] रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था इसलिये उसको छोड़कर सभी रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से ही करना चाहते थे। रुक्मी ने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने का निश्चय किया। यह जानकर रुक्मिणी ने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को अपने सन्देशवाहक के रूप में द्वारिका श्रीकृष्ण के समीप भेजा।[५]

१७ ४। रुक्मिणी के सन्देश में रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया गया है। सन्देश में नगर के बाहर कुलदेवी के दर्शन के समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले जाने का और राक्षस विधि से पाणिग्रहण का संकेत दिया गया है।[६]

१८ ४। श्री कृष्ण रुक्मिणी के प्रति अपने अनुराग को प्रकट करते हुए यथा समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले आने का निश्चय प्रकट करते हैं।[७] तदुपरान्त तीसरे ही दिन लग्न-तिथि जानकर सारथी दारुक द्वारा शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक तीव्रगामी घोड़े अपने रथ में जुतवा कर और ब्राह्मण को साथ लेकर एक रात में विदर्भ देश पहुँच जाते हैं।[८]

---

१ अध्याय ५२ श्लोक सं० १८।
२ अध्याय ५२, श्लोक सं० १९-२०।
३ अध्याय ५२ श्लोक सं० २१ ३२।
४ अध्याय ५२ श्लोक सं० २४।
५-अध्याय ५२ श्लोक सं २६।
६-अध्याय ५२, श्लोक सं० ३७-४३।
७-अध्याय ५३ श्लोक सं० २-३।
८-अध्याय ५३, श्लोक सं० ४-६।

१६ ४। तदुपरान्त रुक्मिणी के विवाहोत्सव की तैयारी और कुण्डिन नगर की सजावट आदि का वर्णन है।[1] चेदि-नरेश राजा दमघोष भी अपने पुत्र शिशुपाल को लेकर अनेक राजाओं और चतुरंगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंचते हैं।[2] विदर्भराज भीष्मक सबका स्वागत करते हैं[3] और सभी राजा शिशुपाल के समर्थन में आवश्यकतानुसार श्रीकृष्ण से युद्ध करने की तैयारी करते हैं।[4]

२० ४। बलराम भी श्रीकृष्ण की सहायता हेतु चतुरंगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंच आते हैं।[5] आगे श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी के चिन्तातुर होने का वर्णन है।[6] तदुपरान्त ब्राह्मण देवता आकर रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के आने का सन्देश देते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को ले जाने की प्रतिज्ञा की है।[7]

२१ ४। राजा भीष्मक ने, श्रीकृष्ण-बलराम का यह जानकर कि व विवाह देखने आये हैं, विधिपूर्वक पूजा अर्चना क उपरान्त आतिथ्य-सत्कार किया।[8] विदर्भदेश के नागरिकों ने श्रीकृष्ण के रूप गुण से प्रभावित होकर कामना प्रकट की– श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें।"[9]

२२ ४। आगे रुक्मिणी के अन्तःपुर से प्रस्थान कर देवी-मन्दिर की ओर जाने का और उनकी सुरक्षा का वर्णन है।[10] रुक्मिणी मन्दिर में प्रवेश कर देवी पूजा करती है और श्री कृष्ण को पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करती है।[11] तदुपरान्त श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी के मोहक सौंदर्य और शृंगार का निरूपण है जिसको देखकर विरोधी राजा बेसुध हो गये और उनके शस्त्र हाथों से छूट पडे।[12] इसी समय रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। रुक्मिणी श्री कृष्ण के रथ पर चढ़ना ही चाहती थी कि श्रीकृष्ण ने स्वयं विरोधियों को भीड़ में से उनको उठा कर रथ में बैठा दिया। तदुपरान्त श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर बलराम और अपनी सेना सहित वहां से चल दिये और राजागण अपने आप को धिक्कारते हुए रह गये।[13]

२३ ४। तत्पश्चात् शिशुपाल के समर्थक राजाओं की पराजय और श्रीकृष्ण रुक्मिणी-परिणय का वर्णन हुआ है। श्री शुकदेव जी परीक्षित को श्री कृष्ण और विरोधी राजाओं के मध्य होने वाले युद्ध का वर्णन करते हुए बताते हैं कि राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण किया और रुक्मिणी ने चिंता प्रकट की तो श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही राजाओं को

१–अध्याय ५३ श्लोक संख्या ७–१३।
२–अध्याय ५३ श्लोक संख्या १४–१५।
३–अध्याय ५३, श्लोक संख्या १६।
४–अध्याय ५३, श्लोक सं० १७–१९।
५–अध्याय ५३ श्लोक सं० २०–२१।
६–अध्याय ५३, श्लोक सं० २२–२६।
७–अध्याय ५३, श्लोक सं० २७–३०।
८–अध्याय ५३ श्लोक सं० ३२–३४।
९–अध्याय ५३, श्लोक सं० ३६–३८।
१०–अध्याय ५३, श्लोक सं० ३९–४३।
११–अध्याय ५३, श्लोक सं० ४४–५०।
१२–अध्याय ५३ श्लोक सं० ५१–५३।
१३–अध्याय ५३, श्लोक सं० ५४–५७।

पराजित कर भगा दिया। [1] आगे जरासंध शिशुपाल को समझाते हैं कि श्रीकृष्ण से वे १७ बार पराजित हुए किंतु प्रयत्नशील रहने से १८ वी बार विजयी बने। [2] शिशुपाल उदास होकर युद्ध से बचे हुए साथियो सहित अपनी राजधानी को लौट गया। [3]

२४ ४। रुक्मी ने एक अक्षोहिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। रुक्मी ने श्रीकृष्ण को ललकार कर आक्रमण किया किंतु श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उसके सभी शस्त्र काट गिराये। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मी को मारने का विचार छोड़ कर उसकी दाढ़ी मूछ और मस्तक के केश मूड कर उसको उसीके दुपट्टे से बांध दिया। [4]

२५ ४। बलराम ने रुक्मी को दयनीय अवस्था में देखा तो उसको मुक्त कर दिया और रुक्मी के प्रति किये गये व्यवहार को निंदनीय बताया। [5] तदुपरान्त बलराम ने रुक्मिणी के आगे क्षात्र धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि तुम्हारे भाई प्राणियो के प्रति दुर्भाव रखते हैं इसलिए हमने उनके मंगल हेतु ही समस्त काम किया है। तुम अज्ञानियो की भांति इस कार्य को अमंगल मत मानो। यह शरीर नाशवान है और 'अहं' के कारण आत्मा को जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़ना होता है आदि। रुक्मिणी ने तदुपरान्त विवेक बुद्धि से अपने दुख का समाधान किया। [6] रुक्मी ने अपमानित और निराश होकर भोजकट नामक नवीन नगरी का निर्माण किया और वही रहने लगा क्योकि उसने श्रीकृष्ण को मारकर अपनी बहिन को लौटा कर ही कुण्डिनपुर में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा की थी। [7]

२६ ४। श्री कृष्ण ने द्वारिका लौट कर विधि पूर्वक रुक्मिणी का पाणि ग्रहण किया। द्वारिका में श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह के अवसर पर उत्सव हुए और रुक्मिणीहरण की गाथा गाई जाने लगी। द्वारिकावासी लक्ष्मी को रुक्मिणी के रूप में लक्ष्मी पति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर आनन्दित हुए। [8]

२७ ४। तदुपरान्त प्रद्युम्न जन्म की कथा वर्णित है। इस अध्याय के आरम्भ में वर्णन है कि कामदेव भगवान वासुदेव के ही अंश हैं। इन्होंने रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर अपना प्रद्युम्न-नाम प्रसिद्ध किया। [9]

२८ ४। प्रद्युम्न जब दस दिन के हुए तब शम्बरासुर इन्हें अपना शत्रु जानकर सूतिकागृह में उठा ले गया और समुद्र में फेंक आया। समुद्र में एक मगर मच्छ ने प्रद्युम्न को

१—अध्याय ५४ श्लोक सं० १—६।
२—अध्याय ५४ श्लोक सं० १०—१६।
३—अध्याय ५४ श्लोक सं० १७।
४—अध्याय ५४ श्लोक सं० १८—३५।
५—अध्याय ५४ श्लोक सं० ३६—३६।
६—अध्याय ५४, श्लोक सं० ४० ५०।
७—अध्याय ५४ श्लोक सं० ५१—५२।
८—अध्याय ५४ श्लोक सं० ५३।
९—अध्याय ५५ श्लोक सं० ५४—६०।

निगल लिया। मछुआ ने संयोग से उसी मच्छ को पकड़ा और शम्बरासुर को समर्पित किया। रसोइया ने मच्छ को काटते समय उसके पेट में बालक प्राप्त किया तो उस बालक को शम्बरासुर की दासी मायावती ने ले लिया। नारद मुनि ने आकर दासी को प्रद्युम्न सम्बन्धी वृत्तान्त कह सुनाया।[1] यह मायावती कामदेव की पत्नी रति ही थी। प्रद्युम्न के युवा होने पर मायावती उनके आगे कामिनी सदृश हाव भाव प्रदर्शित करने लगी।[2] प्रद्युम्न ने उसको अपनी माता के समान समझ कर आपत्ति की। मायावती ने नारद द्वारा सुनी हुई घटनाएं बताकर प्रद्युम्न को सभी प्रकार की मायाओं का नाश करने वाली 'महामाया' नामक विद्या दी।[3] प्रद्युम्न ने महामाया विद्या प्राप्त कर शम्बरासुर को ललकारा। प्रद्युम्न पर शम्बरासुर ने क्रोधित होकर अपनी गदा चलाई। प्रद्युम्न ने भी अपनी गदा चलाकर उसकी गदा को गिरा दिया। तब शम्बरासुर आकाश में उड़कर शस्त्रों की वर्षा करने लगा। प्रद्युम्न जी ने महामाया का प्रयोग कर शम्बरासुर की अनेक मायाओं का विनाश किया और शम्बरासुर का अपनी तलवार से वध किया।[4] तदुपरान्त मायावती प्रद्युम्नजी को ले कर आकाशमार्ग से द्वारिका चली गई।[5] रुक्मिणी और अन्तःपुर की अन्य नारियां इस नव दम्पति को देखकर आश्चर्य चकित हो गईं। रुक्मणी अपने खोए हुए पुत्र का ध्यान करने लगी।[6] इसी समय नारदजी ने आकर सबको शम्बरासुर-सम्बन्धी कथा सुनाई।[7]

२९. ४। प्रद्युम्न को देखकर सभी बहुत प्रसन्न हुए। प्रद्युम्न का रूप-सौन्दर्य श्रीकृष्ण से मिलता हुआ था अतएव अन्तःपुर में स्त्रियों को कभी-कभी भ्रम भी हो जाता था। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के अंश और कामदेव के अवतार थे इसलिये यह आश्चर्य की बात नहीं थी।[8]

३०. ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी-संवाद के अन्तर्गत वर्णन है कि एक समय श्री कृष्ण ने रुक्मिणी से कहा—"मैंने जरासंध और शिशुपालादि का गर्व भंजन करते हुए ही तुम्हारा हरण किया है। मैं एक सामान्य पुरुष हूं और मेरे पास कोई बड़ा राज्य नहीं है। इसलिए अब तुमको अपनी इच्छानुसार पति का वरण कर लेना चाहिए।"

३१. ४। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की महानता बताते हुए उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के अगाध प्रेम के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की।[9]

(ख) विष्णुपुराण और हरिवंश-पुराण का श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-वर्णन

३२. ४। विष्णुपुराण[10] और हरिवंशपुराण[11] में वर्णित रुक्मिणी-हरण प्रसंग

१—अध्याय ५५, श्लोक सं० ३–६। २—अध्याय ५५, श्लोक सं० ७–१०।
३—अध्याय ५५, श्लोक सं० ११–१६। ४—अध्याय ५५ श्लोक सं० १७–२३।
५—अध्याय ५५ श्लोक सं० २४–२५। ६—अध्याय ५५ श्लोक सं० २६–३४।
७—अध्याय ५५, श्लोक सं० ३५–३७। ८—अध्याय ५५, श्लोक सं० ३८–४०।
९—दशमस्कंध अध्याय ६०। १०—अंश ५, अध्याय २८।
११—अध्याय ११६०।

में श्रीमद्भागवत जैसी सुनियोजित कथा योजना और रोचकता नहीं है। विष्णुपुराणगत कथा में यह विशेषता है कि रुक्मैया श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण के पश्चात् युद्ध में जाते समय श्रीकृष्ण को पराजित किये बिना कुण्डनपुर में नहीं प्रवेश करने की प्रतिज्ञा करता है। विष्णु पुराण में रुक्मैया को श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये दण्ड का वर्णन नहीं है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का राक्षस विवाह होने की ओर संकेत मात्र है किन्तु विष्णुपुराण[1] में इस विवाह को स्पष्ट ही राक्षस विवाह लिखा गया है—

> निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमेह रुक्मिणीम्।
> राक्षसेन विवाहेन संप्राप्तां मधुसूदन ॥

३३ ४। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न के उत्पन्न होने का प्रसंग भी विष्णु पुराण में वर्णित है। इस पुराण में रुक्मिणी को श्रीकृष्ण की आठों पटरानियों में प्रमुख बताते हुए श्रीकृष्ण की देह के साथ ही रुक्मिणी का दाह संस्कार सूचित किया गया है—

> अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणी प्रमुखास्तु याः।
> उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥ [2]

३४ ४। हरिवंशपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण और बलराम रुक्मिणी का विवाह देखने हेतु कुण्डनपुर में आते हैं। इन्द्राणी के मंदिर में पूजन के लिये आगत रुक्मिणी के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर श्रीकृष्ण बलदेव के परामर्शानुसार मंदिर के बाहर रुक्मिणी का हरण करते हैं। रुक्मैया श्रीकृष्ण से युद्ध में पराजित हो कर अभयदान की प्रार्थना करता है और श्रीकृष्ण के क्षमादान पर कुण्डनपुर में प्रवेश नहीं करने के विचार से अपने निवास हेतु भोजकटपुर का निर्माण करता है। हरिवंशपुराणगत प्रसंग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) रुक्मिणी हरण[3] और (२) रुक्मैया की पराजय।[4]

३५ ४। श्रीमद्भागवत् वैष्णव भक्तों का प्रधान उपास्य ग्रन्थ है और समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों का आधार रूप है। महाभारत में मानव धर्म का सम्यक् निरूपण करने के उपरान्त भी महर्षि व्यास को शांति लाभ नहीं हुआ तो देवर्षि नारद के निर्देशानुसार व्यास जी ने भगवान् की प्रेममयी लीलाओं का वर्णन कर अनंत प्रेमरस के आधार भगवान में सम्पूर्ण रूप में आत्म समर्पण की दृष्टि से श्रीमद्भागवत् की रचना की।[5] भारतवर्ष में मुस्लिम विजेताओं ने इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार शासन सञ्चालन कर हिन्दू धर्म और संस्कृति का उच्छेद करना चाहा तो हमारे धर्माचार्यों ने श्रीमद्भागवत् से प्रेरित होकर ही देश

१–दशमस्कन्ध अध्याय ५२, श्लो० १८। २–अंश ६ अध्याय ३८, श्लो० २।
३–अध्याय ५९। ४–अध्याय ६०।
५–श्रीमद्भागवत्, प्रथम अध्याय, ५।८।९।४०।

में भक्ति धारा प्रवाहित की और सम्यक्रूपेण मार्ग दर्शन कर जनता को आश्वस्त किया। श्रीमद्भागवत में सर्वजन-सुलभ भक्ति का, पूर्णब्रह्म परमेश्वर की विविध लीलाओं के साथ सरस वर्णन हुआ है और भगवान् के काव्यमय एवं भावपूर्ण कीर्ति गान के कारण ही श्रीमद् भागवत का व्यापक प्रचार हुआ है।

ग श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी संस्कृत रचनाएं —

३६४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग में शृंगार, भक्ति और वीरता-सम्बन्धी अनेक मार्मिक भावों का समावेश हुआ है इसलिए श्रीमद्भागवतादि पुराणों के आधार पर संस्कृत में अनेक रचनाएं हुईं। यथा—

(१) रुक्मिणी-कल्याण नाटक चूडामणि कृत।[1]

(२) रुक्मिणी-चम्पू घनश्याम-पुत्र गोवर्द्धन कृत।[2]

(३) रुक्मिणी-नाटक, सरस्वतीनिवास कृत।[3]

(४) रुक्मिणी-परिणय नाटक, रामचन्द्र कृत।[4]

(५) रुक्मिणी परिणय वरद कवि कृत।[5]

(६) रुक्मिणी विजय काव्य।[6]

(७) रुक्मिणी विजय, वादिराज तीर्थ कृत।[7]

---

१ – लिस्ट्स आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लायब्रेरीज आफ सदर्न-इण्डिया, गस्टाव ओपेट, वो० १ मद्रास १८८० ई० स० २९८८, ३४७१ वो० २, मद्रास १८८५ ई०, स० १६०००, ६६०० टीकाएं, वो० १ स० ४७२, वो० २ स ६००१।

२ – कर्ता की स्वदमपंरा टीका मे उद्धृत-केटलोगस केटलोगोरम एन अल्फाबेटिकल रजिस्टर आफ संस्कृत वर्क्स एण्ड आथर्स, थियोडोर औफ्रेक्ट, भाग १, फ्रेन्ज स्टैनर वरलोग औ० एम० बो० एच० विएस्बडेन, पृ० ५२७।

३ – क – वही। ख – केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स एक्जिस्टिंग इन दी सेन्ट्रल प्रोविन्सेज, स० एफ० कोल्हान, नागपुर १८६४ ई०, स० ७४।

४ – आपेर्ट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची, स० २६९०, ४५७।

५ – ए क्लासिफाइड इंडेक्स टू दी संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पेलेस एट तंजोर, स० ए० सी० बर्नेल, लन्दन, १८८० ई० स० १७२ बो०।

६ – ओपेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची भाग १ सं० २५३४, भाग २, सं० ५५५६, टीका १, स० २९८९।

७ – क – रिपोर्ट आन दी सर्च फार संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी बाम्बे प्रेसीडेन्सी ड्यूरिंग दी ईयर १८८२ ८३, आर० जी भंडारकर बाम्बे १८८४, सं० ६३२।

ख – आपेर्ट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची वो० २, स० ५५८।

(८) रुक्मिणी स्वयंवर काव्य ।[1]

(९) रुक्मिणी-हरण नाटक, वीर विजयामणि कृत ।[2]

(१०) रुक्मिणी-कल्याण-नाटक राजचूडामणि कृत ।[3]

(११) रुक्मिणी-परिणय काव्य मदनलपुत्र गोविन्द कृत ।[4]

(१२) रुक्मिणी परिणय नाटक रामवर्मा कृत ।[5]

(१३) रुक्मिणी परिणय नाटक कवि कार्तिकसिंह कृत ।[6]

(१४) रुक्मिणी कल्याण गीत, विद्याचक्रवर्तिन ।[7]

(१५) रुक्मिणी-कल्याण-गीत, वरदानन्द ।[8]

(१६) रुक्मिणी कल्याण गीत गोविन्दरथ ।[9]

(१७) रुक्मिणी कृष्ण विवाह ।[10]

(१८) रुक्मिणी परिणय आत्रेय वर्म ।[11]

(१९) रुक्मिणी-परिणय, विश्वेश्वर ।[12]

(२०) रुक्मिणी-परिणय वत्सराज ।[13]

(२१) रुक्मिणी परिणय, अप्पय दीक्षित ।[14]

(२२) रुक्मिणी-परिणय, वेंकट शास्त्रिन ।[15]

(२३) रुक्मिणी-परिणय, एडवेहित्वराट्ट नट्टद्रि ।[16]

(२४) रुक्मिणी परिणय, गोविन्द ।[17]

१-क-केटलाग आफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स कन्टेन्ड इन दी प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिंध, एण्ड खानदेश, कम्पाइल्ड अण्डर दी सुपरिंटेन्डेन्स आफ जी० बुहर०, बाम्बे १८७१-७३ ई०, सं०, २, सं० १०४ ।

ख- औफेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची सं० २९९० ६१७६ ।

२ – क- रिपोर्ट आन दी सर्च फोर संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट इन दी बाम्बे प्रेसीडेंसी ड्यूरिंग दी ईयर १८८०-८१, एफ० कील्हार्न बाम्बे १८८१, सं० ६२ १०४ ।

ख- औफेट की उक्त सूची सं० २९९०, ६१७९ ।

३ – गवर्नमेंट ओरियन्टल लायब्रेरी, मद्रास सं० ७८

४-५-६ —आफ्रेक्ट कृत केटलोगस केटलोगार, भाग २, पृ० १२३ ।

७ – हिस्टरी आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुमलार, तिरुपति, देवस्थान प्रेस मद्रास १९३३, इन्डेक्स पृ० १०५७—१०५८ ।

८ – वही ।

९ – वही ।

१० – वही, ४६ ।

११ – वही, डी० ७७७ ।

१२ – वही, २१२६०६ ।

१३ – वही, एड० जी० पी० एस० ।

१४ – वही ।

१५ – वही, ६४३ ।

१६ – वही, ६३९ ।

१७ – वही २५३ ।

(२५) रुक्मिणी परिणय चम्पू, अम्मालू ।[1]
(२६) रुक्मिणी परिणय चम्पू वेंकटाचार्य ।[2]
(२७) रुक्मिणी परिणय चम्पू, रामराय ।[3]

घ. श्रीकृष्ण–रुक्मिणी–विवाह-सम्बन्धी अपभ्रंश एवं जैन रचनाएं

३७ ४। श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह के संकेत नेमिनाथ, गज सुकुमाल और प्रद्युम्न विषयक जैन रचनाओं में भी उपलब्ध होते हैं। जैन मतानुसार नेमिनाथ अपर नाम रिष्टनेमि अथवा रिट्ठनेमि बाईसवें तीर्थङ्कर और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई माने गये हैं। गजसुकुमाल श्रीकृष्ण के सहोदर भ्राता और प्रद्युम्न श्रीकृष्ण–रुक्मिणी के पुत्र थे। यादव–कुल में नेमिनाथ परम शक्तिशाली थे जिनका विवाह उग्रसेन की राजकुमारी राजुलदेवी से निश्चित हुआ था। विवाहोत्सव में भाज्य पदार्थों हेतु वध किये जाने वाले जीवों का करुण क्रन्दन सुन कर नेमिनाथ ने सांसारिक सुख-बन्धनों का पूर्ण रूपेण त्याग कर वैराग्य ग्रहण कर लिया। साथ ही राजुल देवी ने भी वैराग्य ग्रहण कर लिया। नेमिनाथ से प्रभावित होकर गजसुकुमाल ने भी बाल्यकाल में वैराग्य धारण कर लिया।

३८ ४। प्रद्युम्न कुमार कामदेव के अवतार और श्रीकृष्ण–रुक्मिणी के पुत्र थे। प्रद्युम्न कुमार ने भी वैराग्य धारण किया था। प्रद्युम्नकुमार सम्बन्धी रचनाओं के प्रारम्भ में रुक्मिणी–हरण सम्बन्धी प्रसंग दिया गया है। नेमिनाथ, गजसुकुमाल और प्रद्युम्न सम्बन्धी कतिपय जैन रचनाएं निम्नलिखित हैं—

(१) नेमिनाथ चतुष्पदिका, विनयचन्द्र सूरि (वि० सं० १३२५) कृत।[4]
(२) नेमिनाथ रास, पुण्यरत्नकृत लि० का० १६३६।[5]
(३) नेमि रास वि० सं० १६७५, धर्मकीर्ति कृत।[6]
(४) नेमि फाग वि० सं० १६६५ रत्नसागर सूरि शिष्य कृत।[7]
(५) नेमिराजुल बारामासा, वि० सं० १६८६, लाभोदय कृत।[8]
(६) नेमिनाथ सिलोको, उदयरत्न कृत लि० का० सं० १८७१।[9]
(७) नेमिजिन गीत लि० का० २० वीं शताब्दी।[10]

---

१ — हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुपति देवस्थान प्रेस, मद्रास १९३३ इंडेक्स १५०, ८४४।
२ — वही। ३ — वही।
४ — जैन गुर्जर कविओ, भाग १, मो० द० देसाई, जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई, पृ० ५।
५ — वही पृ० २४३। ६ — वही पृ० ४६१।
७ — वही पृ० ४०३। ८ — वही, पृ० ५३४।
९ — राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थांक ४८३७।
१० — राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग २, सं० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, प्र० राजस्थान प्रा० वि० प्र० जोधपुर, पृ० २१।

(८) नेमिनाथ गीत, कर्ता अजीत सागर, नि० का० १६ वीं शताब्दी।[1]

(९) गजसुकुमाल संधि, वि० सं० १५२५, मूलप्रभ कृत।[2]

(१०) गज सुकुमाल रास वि० सं० १६१७ लावण्यकीर्ति कृत।[3]

(११) गजसुकुमाल रास, वि० सं० १६६६।[4]

(१२) प्रद्युम्नचरित्र, रविसागर कृत, र० का० १२०७ वि०।[5]

(१३) प्रद्युम्न चरित, सधारु अग्रवाल कृत, रचनाकाल वि० सं० १४११।[6]

३९ ४। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह के प्रसंग में जैन रचनाओं के मूल प्रेरणा-स्रोत पुराण ग्रंथ ही हैं। जैन रचनाओं में नारद-विद्या का विशेष चमत्कार बताते हुए जैन सिद्धान्तों का महत्व प्रतिपादित करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण की तुलना में नेमिनाथ, राजुमती और प्रद्युम्न आदि की तपस्या का विशेष चित्रण किया गया है।

ड श्री कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-विषयक ब्रज भाषा की रचनाएं —

४० ४। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी ब्रज काव्यात्मक भाषा की रचनाओं में विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल और महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी-मंगल प्राचीनतम हैं। आगे चल कर ब्रज और राजस्थानी दोनों ही भाषाओं में इस विषय पर काव्य रचना होती रही। ब्रज प्रदेश और राजस्थान में पारस्परिक घनिष्ट सम्पर्क होने से ब्रज और राजस्थानी दोनों ही भाषाओं की रचनाएं परस्पर प्रभावित होती रहीं। ब्रजभाषा के प्रसार और प्रभाव के साथ ब्रज रचनाओं का प्रभाव भी बढ़ता गया। हिन्दी विवाह-मंगल एवं श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी काव्य-लेखन की परम्परा आधुनिक काल में खड़ी बोली में भी उपलब्ध होती है।

(१) विष्णुदास कृत रुक्मिणी-मंगल

४१ ४। ब्रजभाषा में कृष्ण सम्बन्धी काव्य रचना प्रारम्भ करने का समस्त श्रेय अब तक श्री वल्लभाचार्य और सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों को दिया जाता रहा है—

---

१ — वही, ग्रन्थांक ८४००० (२६)।

२ — जैन गुर्जर कवियो, भाग १, मो० द० देसाई जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बम्बई, पृ० ७६५।

३ — वही, पृ० २१७। ४ — वही, पृ० ४०८।

५ — रुक्मिणी-हरण सं० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, सम्पादकीय भूमिका।

६ — शास्त्र भण्डार, श्री दिगम्बर मंदिर, जयपुर।

"व्रजभाषा मे कृष्ण-काव्य की रचना का समस्त श्रेय श्री वल्लभाचार्य को होना चाहिये, क्योंकि उन्हां के द्वारा प्रचारित पुष्टि मार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो ने कृष्ण-साहित्य की रचना की।[1] विष्णुदास की रचनाओ से प्रमाणित होता है कि व्रजभाषा में कृष्ण-सम्बन्धी काव्य-रचना का प्रारम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन-आगमन और सूरदास के जन्म से अर्द्धशताब्दी पूर्व हो चुका था। विष्णुदास का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं होता है। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्ट में प्रस्तुत विष्णुदास कृत महाभारत-कथा के विवरण में इसका रचना काल १४३५ ई० सूचित किया गया है।[2] विष्णुदास ग्वालियर-नरेश डूगरेन्द्रसिंह के समकालीन थे, जिनका राज्यारोहण १४२४ ई० मे हुआ था।[3]

४२ ४। विष्णुदास कृत निम्नलिखित रचनाए उपलब्ध होती हैं —

(१) महाभारत कथा र० का० १४३५ ई०
(२) रुक्मिणी मगल,
(३) स्वर्गारोहण अथवा स्वर्गारोहण पर्व, और
(४) स्नेहलीला (भ्रमर गीत)।

४३ ४। उक्त रचनाओ में रुक्मिणी मगल मगल काव्य-परम्परा में और स्नेह-लीला भ्रमर गीत परम्परा में लिखित हैं। कृष्ण-काव्य मे प्रचलित इन दो प्रधान परम्पराओ के प्राचीन रूप भी विष्णुदास की रचनाओ मे ही उपलब्ध होते हैं।

४४ ४। १९१२ ई० की खोज रिपोर्ट में रुक्मिणी मगल का अन्तिम पद इस प्रकार है—

महलन मोहन करत विलास।
कहा मोहन कहा रमन रानी और कोउ नही पास।
रुक्मन चरण सिरावत पिय के पूजी मन की आस॥
जो चाहे थि सो प्रभ पायो हरि पति देवकी सास।
तुम बिनु और कौन थो मेरो धरत पताल अकाश॥
पल सुमिरन करत तिहारो मसि पूस परगास॥
घट घट व्यापक अन्तर्यामी सब सुखरासी॥
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दासी॥[4]

---

१ — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ५११।
२ — हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की रिपोर्ट, १९०६-८, सं० २४८ पृ० १२।
३ — सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, पृ० १५२।
४ — गोस्वामी राधाचरण वृन्दावन की प्रति, खोज रिपोर्ट, पृ० २५२।

४५ ४। उक्त प० १९२९-२८ की खोज रिपोर्ट में निम्नलिखित पद प्राप्त होता है—

मोहन महलन करत विलास।
कनक मंदिर में केलि करत है और कोउ नहिं पास।
रुक्मिनी चरन सिरावे पी के पूजी मन की आस।
जो चाहो सो मांगे पावो हरि पति दवकी दास॥
तुम बिनु और न कोऊ मेरो धरणि पताल अकास।
निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास॥
घट घट व्यापक अंतरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास।
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दास॥[1]

४६ ४। श्री कृष्णानन्द व्यास ने रुक्मिणी मंगल विषयक विष्णुदास के अनेक पदों को संकलित किया है[2] जिनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

गौरी न्यारा

प्रथम ही गुरु के चरणन वन्दत गौरी-पुत्र मनाइये।
आद ही विष्णु जुगादहि ब्रह्मा शंकर ध्यान लगाइये।
देवी पुजन कर वर मागत बुध अरु ग्यान देवाइये।
ताते सुख अति होवे अबे आनद मगल गाईये॥
गौरी लक्ष्मी सुरहि सरस्वती इन हुं सीश नवाइये।
चन्द सुरज दोउ गंगा जमुना जिनतें अति सुख पाइये॥
संत महंतन की पद-रज ले मस्तक तिलक चढाइये।
विष्णुदास प्रभु प्रीया प्रीतम को रुकमनी मगल गाइये॥

कृष्ण विरह रुकमणी को

नही आयो री वे श्याम सुन्दर ब्रजवासी अजहु अरी।
अब कोन सुने कासो कहा सदन निशदिन रहत उदासी॥
अरी म राह तकेदा तकते रहिहु हरि दरशन की प्यासी।
हे कोइ राहो आन मिलावे पुरण ब्रह्म अवनाशी॥
अरी वाहे सेश महेशे सुरेश रटत है ब्रह्मा पार न पासी॥
इन्द्रादिक की कोन चलावे शकर करत खवासी।
एरी जात न लगे सोइ तन जानत अनजानत की हासी॥
विष्णुदास प्रभु के बिन देखे लेहु करवत काशी॥

---

१ — प० गणपतिलाल दुबे, गढवापुर ग्राम, जिला सीतापुर, खोज रिपोर्ट, सं० ४९८ ए०, पृ० ७२६ ६०।

२ — संगीत रुकमणी मंगल, कृष्णानन्द व्यास, बडो बाजार के पास, कालगिज के पास, कलकत्ता, सं० १९३ (१–६) ? पृ० ४।

४७ ४। श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा संकलित संगीत रुक्मिणी मंगल में विष्णु दास क ४१ पदों का समावेश हुआ है।

४८ ४। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल की एक प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में [1] और एक प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर के केन्द्रीय पुस्तकालय में [2] भी उपलब्ध है। जोधपुर की प्रति म प्रारंभ के १४ पत्र अप्राप्त हैं। जोधपुर की प्रति का अंतिम अंश इस प्रकार है-

पद राग परज

मोहन करत विलास महल में।

टेक— कनक मन्दिर म केल करत हैं। और कोई नहीं तीजा पास॥
रुक्मनि चरन पलोटत पीय के। पूजी मेरे मन की आस॥१॥
जो चाहे यो साई पाईयो। प्रभु पति देवकी सास॥
तुम बिन और कोन था मेरे। धरनि पताल अकास॥
पल पल सुमरन करत तिहारो। सुनि पूरन परकास॥
घट घट व्यापक अंतरजामी। त्रिभुवन स्वामी सुख की (सुख की) रास॥
विष्नुदास रुक्मनि अपनाई। जनम जनम की अपनो दास॥
जो कोई सुनै प्रीति सो। मगल पूरे सब ही मन की आस॥
ठकोराम सुप दियो कृपा कर। विष्णुदास कू आप प्रकास॥१२१॥

इति श्री विष्नुदास जी को रुक्मणी मंगल लिख्यते॥ शुभ भूयात् वाचे ज्याने राम राम॥

याद्दशं पुस्तकं द्दष्ट्वा ताद्दशं लिखितं मया।

यदि शुद्ध मशुद्ध वा मम दोषो न दीयते॥१॥

दोहा

कर कुबजा कटि कूबरी, उघ मुषी द्वि नैंन॥
ऐन कष्टन करि पुस्तक लीपी, तुम नीके रपीयो सैन॥२॥

हस्ताक्षर बलदेव कृत अलवर मध्ये। शुभ भवतु॥

४६ ४। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल की उक्त जोधपुर की प्रति से प्रकट होता कि यह रचना विभिन्न रागों में गेय १२१ पदों में पूर्ण हुई है।

१- प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्रीअगरचन्द नाहटा पृ० ५३।
२- ग्रंथाङ्क १२६००।

५० ४। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल की प्राप्त प्रतियों में अनेक पाठान्तर हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस रचना का व्यापक प्रचार रहा है। पं० गणपतिलाल दुबे, गढ़वापुर की प्रति को च (प्रमुख) मानते हुए रचना के अंतिम पद के पाठान्तर इस प्रकार हैं

> [1]मोहन महलन[1] [2]करत विलास[2] ।
> [3]कनक मंदिर[3] में[4] केलि[5] करत [6]है [7]और[8] कोउ[9] नहिं[10] पास ।
> रुक्मिनी[11] चरन सिराव[12] [13]पी के[13] पूजो मन की आस
> जो चाहो[14] सो[15] [16]अबे पायो[16] [17]हरि पति[17] दवकि[18] तास ।
> तुम बिन[19] और[20] [21]न कोऊ[21] मेरो[22] धरणि[23] पताल अकास ।[24]
> [25]निस दिन[25] सुमिरन[26] करत[27] तिहारो[28] सब[29] पूरन[30] परकास ।[31]
> घट घट व्यापक[32] अन्तरजामी[33] त्रिभुवन स्वामी [34] सब[35] सुन्दराम ।[36]
> विष्णुदास [37] रुकमन[38] अपनाई[39] जनम जनम की दास [40]।

१–ख०घ० महलन मोहन ग० मोहन करत। २–ग० विलास महलन में। आगे ग० प्रति में टेक[1] पाठ है। ३–ख० कहा मोहन। ४–ख० कहाँ, ग० में। ५–ख० रमन, ग० घ० केल। ६ ख० पानी। ७ घ० है, ख० प्रति में यह रूप नहीं है। ८–ग० और। ९–ग० कोई, घ० कोई। १०–ख० घ० नहीं, ग० नहीं तीजा। ११–ख० रुकमन, ग० रुक्मनि घ० रुकमनीपी (जी) के। १२–ख० सिरावत ग० पलोटत, घ० सरावत। १३–ख० पिय के, ग० पीय के घ० में यह रूप नहीं है। १४–ख० ग० चाहे, घ० मांगा। १५–ख० पि सो ग० पी सोई, घ० सोइ। १६–ख० अब पायो ग० पाईयो, घ० प्रभु दिना। १७–ख० प्रभु पति। १८–ख० ग० घ० देवकी। १९ ख० बिनु। २०–ग० और। २१–ख० कौन पो, ग०घ० कौन था। २२–ग० मेरे, घ० में यह रूप नहीं है। २३–ख० धरत, ग० धरनि घ० धरन। २४–ख०घ० प्रकाश। २५–ख० पल पल, ग०घ० पल। २६–ग०घ० सुमरन। २७–घ० करू। २८–ग० तिहारो, घ० तिहार। २९–ख० ससि ग० सुनि घ० पुरण ३०–ख० पूस, घ० पुन्य। ३१–ख० परगास, घ० प्रकाश। ३२–ख० ग० घ० व्यापक। ३३–ख० अन्तर्यामी घ० अंतरजामोय। ३४–ख० में यह रूप नहीं है, घ० भुवन स्वामी। ३५–ग० में यह रूप नहीं है घ० सब। ३६–ख० सुखरासी ग० मुख को 'मुख को" पाठ को लि०क० ने भूल से दो बार लिखा है।) ३७–ग० विष्णुदास ३८–ग०घ० रुकमनि। ३९–ग० यों बोली। ४०–ख० दासी ग० अपनी दास।[1]

५१ ४। प्राप्य समस्त प्रतियों के आधार पर ब्रजभाषा के प्रथम महान् कवि की श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी प्रथम ब्रजभाषा-कृति का विधिवत् सम्पादन अपेक्षित है।

१– प्रति परिचय—
ख० – हिन्दी खोज रिपोर्ट का० ना० प्र० सभा, १६१२ ई० की प्रति।
ग० –राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति।
घ० –श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा संकलित, संगीत रुक्मिणी मंगल का पद।

विष्णुदास ने "रुक्मिणी मगल" और स्नेहलीला के रूप में भ्रमरगीत काव्य लेखन की परम्परा प्रारम्भ की जिसका पालन सूरदास, तुलसीदास, नन्ददास, पृथ्वीराज, नरहरिदास, और रघुराजसिंह आदि अनेक कवियो ने किया ।

(२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मिनी-मगल

५२ ४। महाकवि सूरदास ने अपने सूरसागर ग्रथ मे कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसग का समावेश "रुक्मिणी मगल" क अ तर्गत किया है ।

५३ ४। सूरदास जी ने मगल के प्रारम्भ में मगलाचरण के अन्तर्गत लिखा है

अथ रुक्मिनी मगल, राग विलावल
हरि हरि हरि हरि सुमरन करो हरि चरणारविंद उर धरो ।
हरि समरन जब रुक्मिन वरो । हरि किरपा कर ताही तब वरो ।

५४ ४। सूरदास जी न मगल क प्रारम्भ म ही इस प्रकार कथा क फल का सकेत द दिया है । तदुपरा त इसी पद में कथा का प्रारम्भिक भाग भी दे दिया है, जिसमे शिशुपाल द्वारा बरात जोड कर आने तक का वणन है ।[1]

५५ ४। राग सारग के अ तर्गत रुक्मिणी की ओर स ब्राह्मण क द्वारा पाती भेजने का वर्णन है ।[2]

५६ ४। श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी का सन्देश मौखिक है । सूरदास जी ने रुक्मिणी द्वारा पत्रिका भेजने का चित्रण किया है, साथ ही मौखिक सन्देश भी भेजा गया है—

पाती दीजो स्याम सुजाने ।
मुख सन्देश सुनाय दीजिओ विनय सुनो हरी काने ॥
बाचत वेग आप जदुनायक धीर धरो मेरे प्राने ।
समझत नाहि दीन दुख कोऊ सिह भक्ष शृगाल के पाने ॥
मन मर्कत कू देत मूढ मन मृगमद रज म माने ॥
कब लग दोस सहु दरशन बिन होब मीन बिन पाने ॥
सूरदास प्रभु अधर सुधाधर हरपि दोओ जी दाने ॥[3]

५७ ४। आगे सूरदास जी ने रागविलावल (३ पद) और राग जैत श्री के आठ पदों

१–सूरसागर, अध्याय ५२, पद स० १ ।
२–वही, पद सख्या २ ।
३–वही, पद सख्या ३ ॥

तक पत्रिका प्रसंग को ही बनाया है। इस प्रसंग में ब्राह्मण पत्र पर लग्न लिखकर भी भेजा गया है। लिखित लग्न की प्राप्ति के बिना वर की यात्रा नियमित नहीं मानी जाती इसलिए सूरदास जी ने यह योजना की है।[1]

५८ ४। सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी के प्रेम का चित्रण करते हुए रुक्मिणी से कहलाया है कि उसके पास पंख हों तो वह श्रीकृष्ण से मिलने के लिए उड़ जाये। उसके बन्धु ने श्रीकृष्ण से बैर किया इसलिए वह बन्धु के पास नहीं ठहरना चाहती। रुक्मिणी दुख के कारण विष खा लेना चाहती है अथवा धरती फटे तो उसमें समा जाना चाहती है—

राग सारंग

सखी री पर हों तो उड़ि जाऊं।
जहां वे बसत नन्द के ढोटा ढूंढ लेऊं सोई गाऊं॥
कीजे खेद भई जो ऐसी कहो तो विष फल खाऊं।
हिरदे मेरे दोऊ जरत है गहरो मन गो ठाऊं॥
बंधु बैर कियो जदुपति सों ठाढ़ी हू न ठराऊं।
सूरदास प्रभु असुर विवाहे धरनी फाड़ समाऊं॥[2]

५९ ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का संदेश सुनते ही ब्राह्मण को रथ में साथ लेकर चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण बार बार मार्ग में आंसू भरकर रुक्मिणी के विषय में पूछते हैं और बलदेव से तुरन्त सेना लेकर पहुंचने के लिए कहते हैं।[3]

६० ४। श्रीकृष्ण कुन्दनपुर पहुंचते हैं तो रुक्मिणी सहित नगर के सभी नर-नारी बहुत प्रसन्न होते हैं। राजा भीष्मक भी श्रीकृष्ण का स्वागत-सत्कार करते हैं।[4]

६१ ४। रुक्मिणी ने धूप दीप और पूजा की सामग्री लेकर देवी के मंदिर में पहुंच, पूजा कर देवी से कृष्ण की वर रूप में प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। पूजा कर रुक्मिणी बाहर आयी तो उसकी सुन्दरता देखकर समस्त सुभट मोहित हो गए और उनके धनुष नीचे गिर गए। इसी समय कृष्ण ने आकर रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा लिया। इस विषय में कवि ने लिखा है—

शिव की पूजा कवरि आय, कर गहि हरि तब लई उठाय।
हरि भुज भरि भेटि भली भान, सकल सभा देखइ पछतात।
कोउ मारे कोउ गए जु भाज, शिशुपाल कधर मुखमिसे लाज।

६२ ४। युद्ध में शिशुपाल और जरासंध सहित सभी राजा हार गये। कृष्ण और बलदेव के सामने उनकी एक न चली। रुक्म लड़ने के लिए कृष्ण की ओर चला, मानो पतंग

१– पद संख्या ८।
२– पद संख्या ९।
३– पद संख्या ११।
४– पद संख्या १२, १३।

दौवक के पास जा रहा हो। श्रीकृष्ण खड्ग लेकर उसको मारने लगे तो रुक्मिणी ने क्षमादान के लिए विनय की। रुक्म ने भी कृष्ण की विनती की। कृष्ण ने उसको क्षमा दान दिया। रुक्म लज्जा के कारण अपने नगर में नहीं गया और वन में रहने लगा। राजा भीष्मक ने आकर रुक्म को उस स्थान का राज्य दे दिया। कृष्ण द्वारिका लौट आए।[1]

६३ ४। विजेता कृष्ण को रुक्मिणी सहित आता हुआ देखकर द्वारिकावासी बहुत प्रसन्न हुए। घर घर बन्दनवार और स्वर्णकलश सजाए गए, चौक पूरे गए और कदली स्तम्भ खड़े किए गए। सारे नगर में उत्साह का वातावरण छा गया।[2]

६४ ४। तदुपरान्त कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। कृष्ण रुक्मिणी शृंगार सजा कर विवाह मण्डप में प्रवेश करते हैं, रीति पूर्वक विवाह होता है और ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। रुक्मिणी मंगल के अन्त में कवि ने लिखा है कि विवाह के अवसर पर दी जाने वाली 'गार' कृष्ण को क्या कह कर दी जाय—

राग सोरठ—

तोहि गार कहा कहि के दीजिए।
[illegible] जगत काको नाम लीजै सान गीत बिन जान ही॥
बिन रूप बिन अनुहार औरहि कयो बखानही।
जब सुध रही तहा सोच पायो बिन सुने कहा कीजिए॥
[illegible]ल जाउ जादोपति बिहारे गार का कहि दीजिए।
तेरो माय सकल जग खोयो सो को जो मिलके न बिगोयो।

६५ ४। सूरसागर के दशम स्कन्ध के ५५ वें अध्याय में राग मारू के अन्तर्गत प्रद्युम्न जन्म का वर्णन है। इसी पद में असुर द्वारा प्रद्युम्न को उठा ले जाना समुद्र में डाल देना और मछली के निगलने आदि का वर्णन है—

राग मारू

प्रद्युम्न जन्म शुभ घड़ी हुआ हो काम औतार लियो।
विधिवत यह बात जग तात समूल रहै रूप दोऊ।
पृथ्वी पै असुर सम्भ्रम भयो अति प्रबल पुन समुद्र ते डार दीनो।
मच्छ लियो भक्ष सो मच्छ मच्छो कहो असुर पति कू सोल बहुत कीना,
मच्छ के उदर तें बाल परगट भयो बहोरि असुर कामवती हाथ दीनो।
कहो यह काम परनाम तेरो पुरुष वचन नारद सुमिर भ्रात सू लीनो।

१— पद संख्या १६। २— पद संख्या १७ १८।

भयो तब तरुण जब नारि तासू कह्यो रुक्मनी मात हरि तात तेरो।
नाम मम रति विदित वात आनन जगत काम तो नाम प्रद्युम्न मेरो।
असुर कुमार पर दार देहू विद्या मैं तुम्हें बताई।
बिना विद्या उस जोन सके नहिं भेद की बात सब कहि सुनाई।
प्रद्युम्न सकल विद्या समझ नारि सू असुर सू जुद्ध मांगो प्रचारी।
काढ तरवार लिया मार तासू तुरत सुरन आकाश जयुनि उचारी।
वहरि आकाश मग जाय ह्यागवती मात मन अति ही बढायो।
भयो जदुवन अति रहस मनो जन्म लियो सूरजन मंगलाचार गायो।

६६ ४। सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के ६० वें अध्याय के अनुसार रुक्मिणी की भक्ति परीक्षा का वर्णन भी किया है।

६७ ४। इस प्रकार ज्ञात होता है कि सूरसागर के अन्तर्गत "रुक्मिणी मंगल" एक स्वतन्त्र रचना की भांति महत्वपूर्ण है। श्रीमद्भागवत रचना का मूलाधार है किन्तु कवि की मौलिक उद्भावनाएं भी कम नहीं हैं। यथा रुक्मिणी का सन्देश मौखिक के साथ ही पत्रिका रूप में होना, श्रीकृष्ण को लग्न पत्र प्रेषित करना, रुक्मिणी का उड़ कर श्रीकृष्ण के समीप पहुंचने की इच्छा व्यक्त करना और श्रीकृष्ण को विवाह के अवसर पर 'गार' सुनाते हुए लौकिक विधि का निर्वाह करना, आदि।

महाकवि सूरदास ने विभिन्न शास्त्रीय रागों में गेय रुक्मिणी मंगल की रचना कर विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ की गई काव्य-परम्परा को आगे बढाया है।

(३) नन्ददास कृत रुक्मिणी मंगल

६८ ४। कविवर नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर १३३ दोहा छन्दों में 'रुक्मिणी मंगल' की रचना की है। प्रारम्भ में मंगलाचरण के अन्तर्गत क्रमशः गुरु स्तुति और श्रीकृष्ण का स्मरण किया गया है।[१]

६९ ४। रुक्मिणी मंगल का अपर नाम कवि ने 'रुक्मिणी हरन' दिया है और इसकी महिमा इस प्रकार बतलाई है—

> रुक्मिणी हरन पुनीत, चित दै सुन सुनावैं।
> जाहि मिटै जम त्रास बास हरि के पद पावैं ॥[२]

७० ४। कवि ने रुक्मि द्वारा "सिसुपालहि को देत" की बात सुनने पर रुक्मिणी की अवस्था का चित्रण प्रारम्भ में किया है। रुक्मिणी इस आघात को न तो सहन

---

१ छन्द संख्या—१। २—छन्द सं० २।

कर सकता है और न किसी से इस विषय में कह सकती है। कवि ने रुक्मिणी की इस अवस्था का विस्तृत और मार्मिक चित्रण किया है।[1]

७१ ४। रुक्मिणी ने अन्य कोई उपाय न देखकर श्रीकृष्ण के नाम पत्र लिखा।[2] रुक्मिणी ने ब्राह्मण को बुलाकर अपनी बात समझा कर कही और पत्रिका कृष्ण के पास भेजी।[3] ब्राह्मण रुक्मिणी की दुखित अवस्था देखकर और श्रीकृष्ण के चरणों से प्रीति रखता हुआ पवन वेग से द्वारका पहुंचा। कवि ने प्रसंगानुसार द्वारका का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है।[4]

७२ ४। विप्र ने बिना किसी रोक टोक के कृष्ण के महलों में प्रवेश किया। कृष्ण ने उठ कर ब्राह्मण की पग वन्दना की और ब्राह्मण के पैर धोये। विप्र को स्नान करवा कर उत्तम वस्त्र पहिनाये।[5] कृष्ण ने मानपूर्वक खान पान करवाकर ब्राह्मण से पूछा कि वह कहां से आया है ? तब ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण को वस्त्र के किनारे से खोलकर पत्र दिया और उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ किया—

> श्री हरि हियो सिरावत लावत लै लै छाती।
> लिखी विरह के हाथ सुपाती अजहू ताती॥
> हिय लगाय मचु पाय, बहुरि द्विजवर कौं दीनो।
> रुक्मिनि अंसुवन भीनो पुनि हरि अंसुवन भीनो॥

७३ ४। श्रीकृष्ण अपनी अश्रु धारा के कारण रुक्मिणी का पत्र नहीं पढ़ सके इसलिए ब्राह्मण ही पत्र पढ़ने लगा। रुक्मिणी ने प्रारम्भ में अपना परिचय देकर कृष्ण से निवेदन किया कि वे रुक्मिणी का उद्धार करें।[7]

७४ ४। रुक्मिणी ने आगे लिखा कि रुक्म शिशुपाल के साथ उसका विवाह करना चाहता है तथा उसके माता पिता भी विवश हो गये हैं। यदुवंश में उत्पन्न कृष्ण रूपी हंस ! आप अपने वंश का विचार करें और शिशुपाल रूपी कौवे को नष्ट करें। अन्त में रुक्मिणी ने अपने पत्र में लिखा—

> जो नगधर, नन्दलाल मोहि नहिं करिहौ दासी।
> तो पावक पर जरिहौ बरिहौ तन तिनका सी।
> जरि मरि घरि घरि देह न पैहौ सुंदर हरि बर।
> पै यह कबहु न होय ग्याल सिसुपाल छुए कर॥[8]

१–छन्द सं० ११, १२। २–छन्द सं० २४।
३–छन्द सं० २५–२६। ४–छन्द सं० २७–३६।
५–छन्द सं० ५०। ६–छन्द सं० ५४–५५।
७–छन्द सं० ५६–६१। ८–छन्द सं० ६६–७०।

७५ ४। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का पत्र सुनकर अपना छाता व गाथा और रुक्म पर क्रोधित होते हुए सारथि से रथ मगाया।[1] श्रीकृष्ण पवन के समान गति धारण कर कुन्दन पुर आये।[2] यहां दुल्हिन रुक्मिणी घर आगन में घूमती हुई इस प्रकार तडप रही थी जैसे थोडे जल में सूर्य की गरमी से मछली तडपती है।[3] रुक्मिणी अट्टालिका पर बार बार चढती हुई झरोखे से झांकती है, मानो तृषित चकोरी चन्द्र के उदय हुए बिना आतुर होती है।[4]

७६ ४। ब्राह्मण चलता हुआ प्रात पुर मे पहुंचा। रुक्मिणी ने उसके प्रसन्न मुख को देखकर धीरज धारण किया। रुक्मिणी ब्राह्मण से पूछ नहीं सकती है और विचार करती है कि ब्राह्मण प्रभुत सोचेगा अथवा विष से शरीर जलावेगा।[5] ब्राह्मण ने जब हरि के आने की सूचना दी तब मानो रुक्मिणी के प्राण लौट पाये। रुक्मिणी ब्राह्मण के पैरों पडी। कवि इस विषय में कहता है—

> 'दिवी चहै कछु द्विजहिं, नही देख्या निहिं लायक।
> तब उठि पायन परी, भरी आनन्द महा इक॥
> सुर नर जाको सेवत, सेवतहू नहिं लहियै।
> सो लक्ष्मी जिहि पाय परत, उनताको का कहियै॥'[6]

७७ ४। नगर के लोगों ने श्रीकृष्ण का आना हुआ सुनकर उन के दर्शन किये। श्रीकृष्ण के शील और सौन्दर्य से लोग बहुत प्रभावित हुए और रुक्मिणी के वर रूप में श्रीकृष्ण को ही योग्य समझने लगे। लोगों ने रुक्मी, शिशुपाल और जरासन्ध की निन्दा की।

७८ ४। रुक्मिणी नगर के बाहर अम्बिका देवी की अर्चना हेतु चली। रुक्मिणी ने विधिवत् देवी की अर्चना वन्दना और प्रार्थना की। रुक्मिणी चारों ओर से सुभट सैनिकों द्वारा सुरक्षित थी।[8]

७९ ४। अम्बिका ने भी प्रसन्न होकर रुक्मिणी से कहा कि वह प्रभु गोविन्द चन्द्र को प्राप्त करेगी। रुक्मिणी मनोरथ प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक मन्दिर से निकली। रुक्मिणी ने बाहर आकर मुख से घूंघट पट हटाया तो मुंह की शोभा इस प्रकार प्रकट हुई जैसे आकाश में चन्द्र उदित हुआ हो। रुक्मिणी के कटाक्षों से सारा मन पावन होकर राजा गिर पडे। श्रीकृष्ण ने इसी समय समीप आकर रुक्मिणी का हरण किया। राजा लोग टकटकी लगा कर देखते रह गए मानो उन्होंने 'ठगमूरि' खाई हो।[9] कृष्ण रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा कर ले चले।[10]

१-छन्द सं० ७१।	२-छन्द सं० ७५।
३-छन्द सं० ७०।	४-छन्द सं० ७७।
५-छन्द सं० ८।	६-छन्द सं० ८१।
७-छन्द सं० ८-८२।	८-छन्द सं० १०३-१०४।
९-छन्द सं० ११७।	१०-छन्द सं० ११९-१२१।

८० ४। अराम ज जैसे राजा कृष्ण के पीछे दौड़ जस पागल कुत्ते सिंह के पीछे दौड़त हैं। शत्रुओं का भारी दल देखकर बलदेव न इस प्रकार युद्ध किया जैसे मस्त हाथी तालाब में प्रवेश कर कमल दल का रौंद डालता है। जरासंध और शिशुपाल का मान मर्दन होने पर रुक्मी कृष्ण स लड़न के लिए आगे बढ़ा। कृष्ण न उसको परास्त कर लिया और मस्तक मूंड कर उसे छोड़ा।[१] इस प्रकार सब राजाओं को जीत कर कृष्ण रुक्मिणी को ले आये और उससे विधिपूर्वक विवाह किया। इस विषय मे कवि ने लिखा है—

> इहि विधि सब नृप जीति, हरी रुक्मिनि लै आये।
> विधिवत् कियौ विवाह, तिहू पुर मगल गाये।
> जो यह मगल गाय चित दै सुनै सुनावै।
> सो सब मगल पावै, हरि रुक्मिनि मन भावै॥
> हरि रुक्मिनि मन भावै, सो सबके मन भावै॥
> नन्ददास अपने प्रभु को, नित मगल गावै॥[२]

८१ ४। कविवर नन्ददास न अपनी रचना में विष्णुदास और सूरदास की पद पद्धति के स्थान पर दोहा छंदों का प्रयोग कर नवीनता उपस्थित की है। कवि न रचना का नाम 'रुक्मिणी मंगल' के साथ ही 'रुक्मिनी हरन' भी दिया है।[३] द्वारका-वर्णन् कवि की कला का एक उत्तम उदाहरण है।[४] श्री कृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी की विकलता का चित्रण भी मार्मिक हुआ है।[५] नन्ददास न रचना के अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी से "विधिवत् कियौ विवाह" का भी स्पष्ट निर्देश किया है।[६]

(४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी-मगल

८२ ४। नरहरि का जन्म गांव पखरौली (राय बरेली) में सन् १५०५ ई० में माना जाता है। इनका सम्पर्क बादशाह हुमायूं, शेरशाह, सलीमशाह, अकबर और रीवा नरेश रामचन्द्र आदि कई शासकों से रहा था। सम्राट अकबर न इनका विशेष सम्मान किया और इन्हें महापात्र की उपाधि प्रदान की। कहते हैं कि नरहरि के अनुरोध से ही अकबर न गो वध बन्द कर दिया था।[७] नरहरि की मृत्यु सन् १६१० ई० में मानी जाती है।

---

१ छंद स० १३०। | २ छंद संख्या १३१—१३३।
३ छंद स० २। | ४ छंद स० ३१ ... ।
५ छंद स० ७६—७७। | ६ छंद स० १३१।
७ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ० ६०१।

८३ ४। नरहरि महापात्र कृत 'रुक्मिणी मंगल' और कवित्त स्फुट छन्द प्रसिद्ध है।[1] इनकी 'छप्पय नीति' और 'कवित्त संग्रह' नामक रचनायें भी कही जाती है। इन रचनाओं के नामों से ज्ञात होता है कि ये नरहरि के स्फुट छन्द ही संकलन हैं।

८४ ४। रुक्मिणी मंगल के प्रारम्भ में गणपति, गौरी और सरस्वती का वन्दना है। तदुपरान्त कुन्दनपुर में राजा भीष्मराय द्वारा सपरिवार बैठकर रुक्मिणी के विवाह के विषय में विचार करने का वर्णन है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की निन्दा करता हुआ शीघ्र ही उतावली में शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है।

८५ ४। शिशुपाल अनेक राजाओं और मन्त्रियों सहित विवाह के लिए कुन्दनपुर पहुँचता है तो रुक्मिणी बहुत दुखी होती है और श्री कृष्ण के पास सन्देश भेजती है—

बैठि एकान्तहि रुकुमिनी विप्र बोलाऐउ।
दवन मान निहोर सरश बुलाऐउ॥
जदुपति कहकर सुदरी पाती दी हेउ।
सजल नएन पगु लागि सो विनती कीन्हेउ॥

८६ ४। विप्र रुक्मिणी की पत्रिका लेकर कृष्ण के पास पहुँच जाता है और कृष्ण कुन्दनपुर के लिये प्रस्थान करते हैं। विप्र लौट कर संकेत से ही रुक्मिणी को आशीर्वाद देता है। इस प्रसंग में रुक्मिणी की अवस्था का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है —

हिय विचारे मुख निहारे सकुचि मन ही म रहे।
दुख सुख मिलन वियोग अब दुहु विप्र मोसो का कहे।
दिज कहा सैन बुलाय सुन्दर पाइ पति सुख पाइया।
अनु रंग पाऐउ रतन रुकुमनी प्रगट जदुपति आइया।

८७ ४। श्री कृष्ण के कुन्दनपुर में आगमन पर राजा भीष्मक और नागरिकों ने उनका स्वागत किया। कृष्ण ने बहुत सुख माना और जरासंध शिशुपाल का अन्त समझा—

आएउ भीसम निकट सो माथ नवाबउ॥
रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हेउ।
मोर जन्म हरि आहू कीतारथ कीन्हेउ।
रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ।
कहेउ भरम सब भेद गोविन्दहि लोखेउ।
हरि पुनि कीन्ह सतोख बहुत सुख मानेउ।
जरासंध सिसुपाल काल वश जानेउ।

---

[1] — अकबरी दरबार के हिंदी कवि, परिशिष्ट, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ, २००७ वि०।

८८ ४। श्रीकृष्ण को आया हुआ जानकर रुक्मैया ने सैनिकों को तैयार रहने की आज्ञा दी और गौरी का मण्डप घेर लिया। रुक्मिणी ने गौरी-पूजन के समय वर रूप में कृष्ण को प्राप्त करने की प्रार्थना की तो गौरी ने प्रसन्न होकर रुक्मिणी को उसकी मनोकामना पूरी होने का वरदान दिया। गौरी मन्दिर में रुक्मिणी कृष्ण की प्रतीक्षा में धीरे धीरे चल रही थी तब कृष्ण ने आकर उसकी बांह पकड़ी और उसको रथ में बैठा लिया। इस समय का वर्णन् कवि ने इस प्रकार किया है —

> पायो जो लोभ सतोख मन महा प्रतिहि बस देखहि खरो।
> जनु जुथ जबुक मध्य नरहरि सिंघ आपन वलि हरो।
> शशि दूरी तजे से तिमिर पसरै अ धु धुधर सूझई।
> लै चाल रथहि चढाइ रुकमिनी एक ऐकहि बूझई ॥

८९ ४। रुक्मैया ने कृष्ण का सैनिकों सहित पीछा किया तब जरासंध ने उसको समझाया किन्तु वह नहीं माना। रुक्मिणी युद्ध की आशंका से विचलित हो गई। कृष्ण ने नाग पाश से रुक्मैया को बांध लिया। कृष्ण रुक्मैया का मस्तक काटने लगे तब रुक्मिणी ने कृष्ण के पैरों में मस्तक रखते हुए क्षमा की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने दया कर उसकी दाढ़ी मूंछों और मस्तक का मुण्डन कर उसे छोड़ दिया।

९० ४। नरहरि ने कृष्ण रुक्मिणी विवाह को गान्धर्व विवाह माना है —

> हरि रुकमिनि ले संग दुवारिका आऐउ।
> कीन्हो गध्रप ब्याह सुजस जग छाऐउ।

९१ ४। यह रचना दोहा और चौपाई छन्दों में लिखित है। लिपिकार के दोष से अनेक स्थानों में दन्त्य 'स' के स्थान पर तालव्य 'श' का प्रयोग हुआ है। कवि ने कथा के माधि [illegible] की सर्वथा उपमा की है। इस विषय में डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित का मत उल्लेखनीय है—"नरहरि का रुक्मिणी मंगल निश्चित रूप से एक संक्षिप्त रचना है, जिसमें घटनाओं का उल्लेख मात्र है। उनका भावात्मक सौन्दर्योद्घाटन की मनोरम चेष्टा नहीं के बराबर ही है।"[1] कवि की कतिपय काव्यगत विशेषताएं भी हैं। यथा—

१ कवि ने दोहा चौपाई छन्दों का प्रयोग कर एक नवीनता उपस्थित की है।

२ नरहरिदास एक दरबारी कवि थे इसलिये दरबारी परम्पराओं का उन्हें पूर्ण अनुभव था। तदनुसार प्रस्तुत काव्य के समस्त वर्णन् राजदरबारी मर्यादाओं के सर्वथा अनुकूल हैं।

३ कवि ने श्री कृष्ण रुक्मिणी के विवाह को 'गध्रप ब्याह' बताया है।

---

१ – वेलि क्रिसन रुकमणी री विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर सम्पादकीय भूमिका पृ० १४८।

(४) रघुराजसिंह कृत रुक्मिणी-परिणय

९२ ४। रघुराजसिंह रीवां के महाराजा थे। और इनका जन्म काल १८२३ ई० तथा मृत्यु काल १८७९ ई० है। रघुराजसिंह के पिता महाराजा विश्वनाथ सिंह भी कवि थे। रघुराजसिंह की रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

सुंदर शतक, (सन् १८४७ ई०), विनयपत्रिका (१८५० ई०), रुक्मिणी-परिणय (१८५१ ई०) आनन्दाम्बुनिधि (१८५३ ई०) श्रीमद्भागवत माहात्म्य (१८५४ ई०), भक्तिविलास (१८६६ ई०) रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल रामस्वयंवर (१८७६ ई०), यदुराज विलास (१८७४ ई०) विनयमाला, राम रसिकावली, (इसका रचनारम्भ १८४३ ई० में हो गया था किन्तु पूर्ति १८७८ ई० में हुई), गंगाशतक, चित्रकूट महात्म्य, मृगयाशतक, पदावली, रघुराज विलास विनय प्रकाश, रामअष्टयाम रघुपति शतक गंगाशतक, धर्मविलास, शम्भुशतक, राजरंजन हनुमान चरित्र, भ्रमर-गीत परम प्रबोध और जगन्नाथशतक।

९३ ४। उक्त रचनाओं में रामस्वयंवर, राम अष्टयाम और रुक्मिणी-परिणय[1] मुख्य हैं। रुक्मिणी परिणय का रचना काल भाद्रपद शुक्ला सप्तमी गुरुवार वि० सं० १९०७ है—

> ओनइस से अरु सात, भादव सित गुरु सप्तमी।
> रच्यो ग्रंथ अवदात रुक्मिणी परिणय नाम जाहि॥

९४ ४। पारिणय [illegible] ग्रंथ में इक्कीस सर्ग हैं और कथा का विस्तार महाभाष्य[illegible] के [illegible] में ॥ [illegible] देने का प्रयत्न किया गया है—

प्रथम सर्ग—प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के अन्तर्गत वैष्णव, गणपति, सरस्वती गुरुदेव और गुरु की वन्दना है। इसी सर्ग में कवि ने अपनी असामर्थ्य और गुरु कृपा का महत्व बताते हुए लिखा है—

> मम गति नहीं प्रयत्न रचन पै, कछु मति अनुसार।
> बरणहु रुकुमिणी परिणयो लहि गुरु कृपा अपार।

कृष्ण के मथुरा आगमन तक की कथा प्रथम सर्ग में वर्णित है।

द्वितीय सर्ग द्वितीय सर्ग में कालयवन का मथुरा पर आक्रमण, मुचकुन्द कथा, जरासन्ध के आगे कृष्ण का 'रणछोड़' होना और कृष्ण बलदेव का द्वारिका प्रस्थान वर्णित है।

---

१ — प्रका० भारत माता प्रेस, रीवां १८८६, ई०।

ततीय सग इसमे द्वारिका का विस्तृत वणन है।

चतुथ सर्ग—बलराम और रवती का विवाह वर्णन।

पचम सर्ग—पचम सर्ग से नाव्य की मूल कथा प्रारम्भ होती है। यदुकुल के पुरो हत गर्ग-
मुनि कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का प्रस्ताव करते है। रुक्मया प्रस्ताव का विरोध करता है। इस सर्ग मे रुक्मया की क्रूरता का वणन किया गया है।

षष्ठ सर्ग—इस सग में नारद जी रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण के प्रति प्रम उत्पन्न करने के लिये कृष्ण की वीरता गुण शील और शारीरिक सौन्दर्य का वणन करते हैं

सप्तम सर्ग—सप्तम सग म रुक्मया शिशुपाल का रुक्मिणी के लिये लग्न पत्रिका भेजता है। शिशुपाल राजाओ सहित सेना सजा कर कुन्दनपुर पहुचता है। रुक्मिणी विप्र के द्वारा अपना पत्र कृष्ण के पास द्वारका भेजती है।

अष्टम सर्ग—ब्राह्मण का द्वारका पहुचना। नारद भी इसी समय द्वारका पहुचते हैं और श्रीकृष्ण के आगे रुक्मिणीका नख शिख निरूपण करते है।

नवम् सर्ग इस सर्ग के अन्तर्गत विप्र द्वारा श्रीकृष्ण के दरबार मे रुक्मिणी का पत्र पढना और कृष्ण द्वारा रथ मे बैठ कर कुन्दनपुर पहुचना और विप्र से रुक्मिणी के विस्तृत समाचार प्राप्त करना आदि वर्णित है।

दशम् सर्ग—इस सग म बलराम का सेना सज्जा कर कुन्दनपुर पहुचना, भीष्मक द्वारा कृष्ण-बलदेव का स्वागत करना, कृष्ण के दर्शन से प्रजा का आनन्दित होना तथा कृष्ण के आगमन की सूचना प्राप्त कर रुक्मिणी द्वारा विप्र की पद वदना आदि का वणन है।

एकादश सर्ग इस सग म रुक्मैया का क्रोधित होते हुए शिशुपाल के शिविर में जाना शिशुपाल के समर्थकों की गर्वोक्तियां सैनिक तैयारी, रुक्मिणी का अपनी सखियों, माता और रक्षकों के साथ पद यात्रा करते हुए अम्बिकालय जाना और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण आदि प्रसग वर्णित है।

द्वादश सर्ग—द्वादश सग मे बलराम और शत्रु सेनाओ का वणन तथा युद्ध का वर्णन है।

त्रयोदश स—इसमें राजाओ के द्वन्द-युद्ध का वर्णन है।

चतुर्दश सर्ग—इस सग म बलराम द्वारा शिशुपाल का परास्त कर आकाश मे फेंकना बताया गया है।

पंचदश सर्ग—इस सर्ग में युद्ध के पश्चात् युद्ध भूमि का वर्णन रुक्मिणी को कैद करते हुए कृष्ण को पराजित करने की प्रतिज्ञा करना, बलराम से सामना न कर आगे मार्ग में रोका तट पर पहुंच कर कृष्ण को घेरना तथा श्री कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का पराजित कर दण्ड देने का और बलराम द्वारा कृष्ण के समीप पहुंचने का वर्णन है।

षोडश सर्ग—द्वारिका में कृष्ण रुक्मिणी के स्वागत की आयोजना और कृष्ण रुक्मिणी विवाह आदि का वर्णन है।

सप्तदश सर्ग—कृष्ण और बलदेव का राज-सभा में आगमन उग्रसेन द्वारा युद्ध-वर्णन, रुक्मिणी का शृंगार, मधुशाला, रास क्रीडा और कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने का वर्णन है।

अष्टादश सर्ग—कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर रुक्मिणी और सखियों का विलपना कृष्ण का पुनः प्रगट होना तथा रास क्रीडा और जलविहार आदि का वर्णन है।

एकोनविंश सर्ग—इस सर्ग में रात्रि कृष्ण रुक्मिणी मिलन प्रभात वट ऋतु विहार आदि का वर्णन है।

विंश सर्ग—इस सर्ग में कृष्ण रुक्मिणी से विनोद वार्ता करते हुए रुक्मिणी की भक्ति परीक्षा करते हैं। रुक्मिणी मूर्छित होकर गिर पड़ती है तो कृष्ण उसका उपचार कर पुनः उसको अपने प्रेम में आश्वस्त करते हैं।

एकविंश सर्ग—इसमें संक्षिप्त भागवत कथा वर्णित है।

६५ ४। इस प्रकार परिणयकार ने रचना को महाकाव्य रूप देने का प्रयत्न किया है। रास क्रीडा जैसी नवीनताएं भी परिणय में दृष्टिगोचर होती हैं। वीर रस की ओर कवि का अधिक झुकाव है और अनेक सर्गों में युद्ध वर्णन किये गये हैं। रास जलक्रीडा और कृष्ण रुक्मिणी मिलन में शृंगार भी है। अन्य रस गौण रूप में हैं। परिणय के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं। —

रुक्मिणी की विकलता

अति दाःचति मोचति आसुन को गुणी ब्याहनि जै शिशुपालहि को।
क्षण लो रही बावरी सीतहु बान, बिचारि दियो पुनि लालहि को।।
त ा स्नेह छयो मुग सूखि गयो को कहै रुक्मिणी के हालहि को।
मरिहों विष सो बरिहों शिखि को बरि हो बिम्बे बीम गुपालहि को।।

रुक्मिणी का पत्र लेखन

खंजन नयनन रंजन कागर प्रेम के आँसुन की मसि कीनी ।
कोमल आंगुरी की कलमें करि कागद अ बन रू करि लीनो ।।
नेह ते सान लिखे वर आखर रुक्मिणी केशव के रस भीनी ।
प्रीति भरी बतिया पतिया लिखि छिप्रहिं विप्रहिं के कर दीनी ।।

रुक्मिणी का नख शिख निरूपण

कै सुखमा के सरोवर को विकस्यो अरविंद अनूपम भावै ।
गावरे आनन देखिबे को किधों आरसी आनन्द की छवि छावै ।।
केशव की दुव नयन चकोर को रूप सुधानिधि इन्दु सुहावै ।
भाखे मुनि रघुराज किधों मुख रुक्मिणी सिंधु बढावै ।।

कैंधो सुधा के सरोवर के ढिग सोहैं मृणाल उभय अति भाये ।
कैंधो मयूख मयूरन के पान को पलग पीत द्वै अरध धाये ।।
भाखैं मुनि रघुराज किधौं युग हेम के दण्ड अखण्ड सुहाये ।
कैंधों लसैं सुखमा की लता किधौं रुक्मिणी के भुज द्वै छवि छाये ।।

युद्ध-वर्षा-रूपक

कारे नाग मघ राजैं दुंदुभी अवाज गाजैं बाजे बेस बासुरी विराजैं सोर घोर है
चमकैं कृपाण तेई दामिनी दमकै दौरि बाद बूंद बूंदन की भई वृष्टि घोर है ।।
फहरैं पताकें व्योम उहरैं ते बकपाति मागी पानी घायल त चातक वा ठौर है ।
इन्द्र चाप चाव भिल्ली भिलिम भनकति है,
फैली रणपावस की शोभा चहुं ओर है ।

बसन्त वर्णन

हरिना हरिनी हरष्यौ हरये हारन मे उहरे ।
छवि छाय छपाकर की सुरटा छपा में क्षिति छोड़ छुये छहरे ।
पिकवाणी पियूष सी पूरति कान सु मानिन के मन मान हरे ।
सु संयोगिनी को है बसन्त सुधा वै वियोगी विचारिन को जहरे ।।[1]

६६ ४। इस प्रकार ज्ञात होता है कि परिणयकार वस्तु वर्णन में परम कुशल है। कवि को अलंकार निरूपण में भी पूर्ण सफलता मिली है। युद्ध वर्णन में अवश्य ही त पा

[1] — श्रीयुत डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित, वेलि क्रिसन रुकमणी री सम्पादकीय भूमिका से उद्धृत।

दौर दैत्या व रूप मे कुरानपाठी मुसलमाना का वणन कर कवि काल दोष मे वचित नही रह सका है। कवि के प्र तस्थन मे तत्कालीन अनेक कवियो की भाति मुस्लिम शासक रूपी राक्षसो से रुक्मिणी रूपी भारत लक्ष्मी के उद्धार की भावना रही है। अपनी रचना को महा काव्य रूप प्रदान करने का प्रयत्न करना कवि की प्रधान विशेषता है।

(६) श्रीकृष्णानन्द व्यास कृत 'सगीत रुक्मिणी मगल"

६७ ४। श्रीकृष्णानन्द व्यास लिखित 'सगीत रुक्मिणी मगल" अनेक राग रागि नियो मे गेय है। प्रस्तुत 'मगल' मे श्रीकृष्णान द ने स्वरचित पदों के अतिरिक्त अपने समय मे प्रचलित पदम, विष्णुदास और उमादत्त के पदो को कथा क्रम के अनुसार "रागकल्पद्रुम' के अ तर्गत सकलित किया है।[1] प्रारम्भ इस प्रकार है—

श्री गणेशायनम । श्रीरुक्मणीवल्लभायनम । अथ श्रीकृष्णान द व्यास देव रागसागरोद्भव सगीतराग कल्पद्रुमे श्रीकृष्ण जी श्रीरुक्मणीजी को विवाह मगल अनेक राग रागिणी सयुक्त प्रारम्भ।

६८ ४। श्रीरुक्मिणी नारदजी के पैरा लगी तब नारद जी ने वरदान दिया कि श्रीकृष्ण वर मिलें। नारद मुनिने भीष्मक से भी कहा—

> नारद मुनि भीष्म सो कहत है सुन कुदनपुर के राइ।
> श्रीकृष्ण देव वाको नाम भणीजे जाके बलभद्र है भाई।
> द्वारामती वाको धाम कहोजे त्रई लोकनाथ जादौराइ।
> वसुदव देवकी नन्दन कहीय परब्रह्म प्रगटाई॥
> भुव भार उतारन कारण प्रगटे श्रीकृष्णानन्दन सुखदाई।[2]

६९ ४। राजा भीष्मक और रानी परस्पर विचार करते हैं कि नारद के वचनो का पालन करना चाहिए और रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से करना चहिए।[3] नारदजी और माता पिता के वचनो को सुनकर रुक्मैया क्रोधित हुआ और कहने लगा मैं अपनी बहिन माखनचोरी करने वाले को कभी नही दूगा'। रुक्मया कहता है राजकुमारी का विवाह किसी राजपुत्र से ही होना चाहिए। राजा भीष्मक अपने पुत्र को समझाने का प्रयत्न करते है कि कृष्ण वास्तव में पूर्णब्रह्म परमात्मा के अवतार हैं।[4] रुक्मया अपने पिता राजा भीष्मक के वचनो की उपेक्षा करता हुआ शिशुपाल को लग्न-पत्रिका प्रेषित करता है।[5] शिशुपाल ने

---

१ — प्रका० श्रीकृष्णानन्द व्यास माना कासगिज बडा बाजार कलकत्ता वि० स० १९६२ (१-६)।
२ — पृष्ठ सख्या ७।
३ — पृष्ठ सख्या ७।
४ — पृष्ठ सख्या ६।
५ — पृष्ठ सख्या १२।

अपशकुना और क्रूर ग्रहा की चिंता न करते हुए रुक्मिणी से विवाह करना स्वीकार कर लिया।[1] शिशुपाल के पास लग्न-पत्रिका लेकर सूरज भट्ट पहुंचता है। मंत्री ने लग्नपत्रिका देखी तो ज्ञात हुआ कि उसमें राजा भीष्मक का नाम नहीं है। सूरजभट्ट ने स्पष्टीकरण किया कि राजा भीष्मक का विचार कृष्ण के साथ ही रुक्मिणी का विवाह करने का है।[2]

१०० ४। शिशुपाल ने अनेक देशों के सहयोगी राजाओं को बरात में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण पत्र भेजे। शिशुपाल बरात सजा कर कुन्दपुर पहुंचा। रुक्मिणी की विकलता का वर्णन इस प्रकार है –

बचत पाती फटत छाती सुरत रुक्मिणि म गई।
लिन माम उमास जलधर नैन आसू बहावई॥
वियोग रुक्मिनी के भए उर उमग उमग भूमी भरी।
प्राण कुंदनपुर हीं माही देह द्वारका रही खरी॥
कन्हि प्रात की रित माधो रुक्मनी कृष्ण से इतनी कही।
कृष्णान द म आसू बहत है जाहे लागे सोइ लही॥[3]

१०१ ४। कृष्ण ने ब्राह्मण का विधिपूर्वक स्वागत सत्कार किया। उसको चंदन की चौकी पर बैठाया और रत्नजटित थाल में रुचिकर व्यंजन परोसे। कृष्ण भगवान ने ब्राह्मण की महिमा का बखान किया और उसको रथ में बैठाकर कुन्दनपुर की ओर चले। पीछे से बलदेव जी बरात सजा कर चले।

१०२ ४। शिशुपाल को उसकी भाभी कुन्दनपुर नहीं जाने के लिए समझाती है और कहती है कि रुक्मिणी वास्तव में हरि की प्यारी है वह हरि के साथ ही विवाह करेगी और तुमको पछताना पड़ेगा।[4] शिशुपाल बरात लेकर कुन्दनपुर आ गया। शिशुपाल का कुन्दनपुर में आना राजा भीष्मक और रुक्मिणी को अच्छा नहीं लगा। रुक्मैया अपनी बहिन को समझाकर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करता है किन्तु उसको सफलता नहीं मिलती है। रुक्मिणी ने झरोखे से देखा कि एक ब्राह्मण जा रहा है। रुक्मिणी ने ब्राह्मण को अपने पास बुलाया और पत्र देकर कृष्ण के पास भेजा।[5]

१०३ ४। ब्राह्मण द्वारका के लिए रवाना हुआ किन्तु मार्ग में रात होने पर सो गया। प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण ने अपने आपको द्वारका में पाया। द्वारपाल से सूचना प्राप्त

---

१ – पृष्ठ संख्या १३। २ – पृष्ठ संख्या १८।
३ – पृष्ठ संख्या २५। ४ – पृष्ठ संख्या १५–१६।
५ – पृष्ठ संख्या २२।

कर कृष्ण भगवान ने उसका अपने पास बुलाया। ब्राह्मण ने कृष्ण को रुक्मिणी की पत्रिका दी। कृष्ण ने पत्र को हृदय से लगा लिया और कुन्दनपुर के लिये प्रस्थान किया।

१०४ ८। रुक्मिणी अपनी सखी के आगे कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करती हुई उनकी प्रतीक्षा करती है—

परज तितारा। सखी प्रति वचन रुकमनिजी।

कहो री सखी अब कैसो किजीये।
लोकलाज कुल कान सो तो जीये।
कृष्ण विरह मे भइ हु बावरी हरि अपनी कृपा ते दरश दीजिये ॥
तन मन नैन म मोहिनो मूरतो नारद वचन सो हृदय पतीजीये।
कृष्णानन्द मैं मगन भई हु चरण शरण प्रभु अपने लीजिए ॥[१]

१०५ ४। रुक्मिणी अपने भाई रुक्मैया से कहती है कि शिशुपाल को बुलाकर उसने बुरा किया वह तो कृष्ण से ही विवाह करेगी—

सोरठ ति० रुकमनी वचन भैया प्रति।

अरे बन्धु मोसे बुरो रे करि तुम लाय।
शिशुपाल चढाई कहा गई तेरी अकल बुरि।
मुरख मातो है मतवारो अपनी अकल करि।
मेरे तो मन कृष्ण बिहारि वाके चरन परि।
तन मन नन मैं मोहनी मूरत वोही मोकू वरी।
कृष्णानन्द मे रहु निशि बासर वाकी वाको शरणशरन परो रे ॥[२]

१०६ ६। प्रस्तुत रुक्मिणी मगन म एक पद पजाबी भाषा का भी उपलब्ध होता है जिसमें कृष्ण का कुन्दनपुर आगमन चित्रित किया है —

झझोटी तितारा।

रुकमण दे राणी विरहुण दा मेरा स्याम मिनी नीं पावे ॥
द्वारका नगर से आया लडका नन्द दा उसदे द्गा मे।
सोहै हतीयारामे आनन्द रलीया नोवे ॥
कुण्डल चमक चट भृकुटी मटक अन मुकटनक।
मटके द्रग साहन कर पीन पर छलडा अनडावे।
बाकडा तोमडा नाकडा मोहणा मोहना।

१— पृष्ठ संख्या २३। २— पृष्ठ संख्या २८।

गवर्दिलाद महरमसा वलयार मेणु भलीया नीवे ॥
रेंदडीया उसदी यादडीया आखडीया उनदेरी सूर म देवड्या।
उस दे घोलडीया नघनडीया रतडीया पाछदयोया नोकिनडीया।
यादडीया मानु भादडीया सदवे करेंडीया जिदडीया कुरबानडीया।
मापलकर सानु घायल कीदा हुण लीता चित चोर सोडा यारानन धुली
पानी शेह।

नग मरी देख के कहने लगे यो हकीम।
स्याम देखने की चाह इश्क की बिमारी हेति।
सना लागी तिसकी तिसवी नार हेन जाय आन मिलावे ॥
स्याम को तिम देखे तिस जाया मणु प्यारा मिलिया लीवे ह० ॥[1]

१०७ ४। रुक्मिणी प्रतिका पूजन क साथ ही वर क रूप में कृष्ण की प्राप्ति प्राथना करती है। इस पद म द्वारिकाधीश कृष्ण के साथ ही यशोदा माता और बलदेव देवर की कामना भी करती है।[2]

१०८ ४। 'संगीत रुक्मिनी मगल म उमादत्त कवि क पद भी हैं। एक पद मे ग और रुक्मिनी के विवाह की कामना की गई है–

जोजवन्तिति

कुदनपुर के लोग लगाई देखन चले हैं बरात के ताइ।
प्रथम ही निरख चैद्य को मन के मन कु वहु सोचि नहि आइ।
यह मरकट क सोहे सूरत रुक्मनि लक्ष्मी रूप बनाइ।
रुक्मनि लायक यह वर नाहि रुक्मैया कहा करी हे सगाइ।
फिट फिट कहे आगे कु जावे पहाचे तहि जहा जादुराइ।
सु ... मनो हर सुरत देखेत हि सब गए हे लोभाइ।
ऐसो वर रुक्मनि हि जाइये धाता जु यह बनाइ।
गौर सावल सोभा हो बेना मेघ स्याम दामनि चमकाइ।
रुक्मनि कृष्ण विवाह करो प्रभु हमरि किजी ये सब पुरलाइ।
उमादत रुक्मनि बडभागिन बलकृष्ण जाइ मन भाई।[3]

१०९ ४। रुक्मिणी मगल म कवि न रुक्मिणी की कामना इस प्रकार व्यक्त की है

१– पृष्ठ सख्या ४२। २ – पृष्ठ सख्या ४३।
३ – पृष्ठ सख्या ४४।

सोरठ तितारा

नमन करूं देवी को नमन गुरु जगदाश ।
भरतार तो दाज गोपाल जु हो मेरे जनम जनम के हूंग ।
पुरा तो दाज दारमिता है गामती नदी के तीर ।
कृष्णानन्द म मगन रहु हो विहुद सिन्धु तीर ॥[1]

११० ४। कवि कृष्णानन्द ने व्यास म श्या-पूजन, रुक्मिणी हरण, शत्रु नरेशों और रुक्मैया की पराजय रुक्मया की दुर्दशा आदि का वर्णन एक हो पद में कर दिया है ।[2]

१११ ४। रुक्मिणी की विदाई का वर्णन लोकरीत्यानुसार करते हुए कवि ने मार्मिक प्रसंग उपस्थित किया है ।[3]

११२ ४। 'रुक्मिणी मगल' विषयक पदों से श्रीकृष्णानन्द का सगीत शास्त्र के साथ ही भाषा और विषय पर भी अधिकार प्रकट होता है। ज्ञात होता है कि कवि ने रागकल्पद्रुम[4] का संकलन करते समय ही प्रसगानुसार अपने पदों की रचना की है ।

(७) प्रभुदास कृत "रूक्मणी-मगल"

११३ ४। डा० सत्येन्द्रजी और चन्द्रभानजी रावत ने ब्रज प्रदेश में विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले 'रुक्मणी मगल" को लिपिबद्ध किया है।[5] रचना के प्रारम्भ में बताया गया है कि रुक्मिणी पूर्व जन्म में सीता थी और उसने पाताल में प्रवेश कर राजा भीष्मक के यहा जन्म लिया था —

सीता गई समाई लच्छिन स्वा भुलसन लागे ।
दरसन पाए नाइ, करम के बड़े अभागे ।
डोक फोरि के लछिमन रोए, भेटे कठ लगाई ।
आपुन जाइ पताले बैठी कैसे रहे फौराइ ।
सीता गई समाई जनमु भीखम घर लीयो ।
धरती धरयो न पाउ नाम रुक्मिनि धरि दीयो
ऐसी बेटी मैं जनू ऐसो जानें न कोई ।
धरते निकरी अगन भई ठाडी सूज की सी लोई ।[6]

१- पृ० स० ४८।   २-पृ० स० ५०।   ३-पृ० स० ६३।

४-प्रथम सस्करण १८४३ ई०, द्वितीय सस्करण १९१४ ई०, स० नगेन्द्रनाथ वसु, प्रका० बगीय साहित्य परिषद, २४३।१ अपर सर्कुलर रोड कलकत्ता।

५-भारतीय साहित्य वर्ष २, अक २, अप्रेल १९५७ हिन्दी विद्यापीठ, वि० वि०, आगरा पृ० १५१।

६-छन्द संख्या १४।२।

११४ ५। आगे बताया गया है कि एक समय रुक्मिणी मानसरोवर में नहाने के लिए चली। सहेलियों ने समझाया कि रुक्मिणी को देर तक खडे हुए केश नही सुखाना चाहिए। चारो ओर जवन है और कोई बाह पकड कर रथ में बैठा ले जायेगा।

११५ ४। रुक्मिणी ने ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण को सन्देश भेजा। ब्राह्मण ने रुक्मिणी द्वारा एक कगन मिलने पर लालच से दूसरा कगन भी माग लिया। ब्राह्मण फिर द्वारका नही पहुच कर मार्ग में एक तालाब के किनारे सो गया।

११६ ४। भगवान श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को सोया हुआ जान कर नारदजी के साथ अपना रथ भेजा और ब्राह्मण को लाकर द्वारिका के फूलबाग में सुला दिया। ब्राह्मण अपने आप को अज्ञात स्थान में पाकर चिन्ता करने लगा—

> उठिकैं बैठ्यौ भयौं करे स्वाने मनि पछिताए।
> ऐसी बरियौ कोन स्वाते मोइ या लैं आए।
> आजु मेरी आम्मनि रोइ मरैगी, जाने कौन की सरनि गहैगी।
> रुकमिनि तैने बादर फारे, मेरे घरते त्रिम्मा तारे।
> करता ने वदन दुराए माधौ के जौरें आए।
> सुनि लीजौ अरजी मेरी मैने सरनि लई ए तेरी।
> स्वा असुरन की भीर घनेगे, स्वा डरपैं बरनी तेरी।
> बन्दूक धडाधड बाजे। बम्मन में डका गाजे।
> आजु कहा छिपे गुफा में जाई, आजु मेरी खबरि लेउ जादा राई।

११७ ४। आगे द्वारका का वर्णन है—

> छीपी बसे सुनार, पौरि पै छतिया न्यारे,
> कोरी वसैं चमार किनक के छब्बे उसारे।
> बैवस हेरे बगत ऐ, बिन के अटा अगास,
> माधौ ने द्वारामति देखी सिरीकिस्न के साथ।
> महल बने नौरग रग विच मारे भाई,
> नचैं पातुरा द्वार किस्न घर बजै बधाई।
> कुबिजा तो चन्दन घिसे घरै किस्न के हाथ,
> माधौ ने पाती दई, सिरीकिस्न के हाथ॥

११८ ४। द्वारका में ब्राह्मण को अच्छा भोजन करवाया गया और लोक प्रथा के अनुसार गारी भी गाकर सुनाई गई।[1] श्रीकृष्ण बरात सजाकर कुण्डनपुर पहुचे। कोई

1—छन्द सं० १८, १९।

सुखपाल मे सवार होकर और कोई हाथी, ऊ ट तथा घोडे पर बैठ कर कृष्ण की बरात म आया। श्रीकृष्ण जी ने शिशुपाल को कहा—

> बडी कठिन की चोट मिलेगी रुक्मिनि रानी।
> बिज्जवारे की माग ऐ, तरी क्या उनमानि।[1]

११६ ४। शिशुपाल को गाली सुनाती हुई कुण्डलपुर की स्त्रिया कहती है—

> तैंने गरब कियो बजमारे, मेरे हरिजी ते पहिले आयौ।
> अब माद म मू ड मजा मारतु ओ कोरू मातु नाइ खायौ।
> ब्याहन कह तो वो हरिकी रुक्मिनी बांधि सेहरो आयौ।
> दस हजार की भीर सजी ऐ अब तैंनें नेक खोपु नाउ खायौ।[2]

१२० ४। प्रस्तुत रचना म श्रीकृष्ण द्वारा हरण नहा होकर रुक्मिणी को नारद जी झपट कर श्री कृष्ण के रथ म बठाते हैं।[3]

१२१ ४। श्री कृष्ण ने रुक्मैया को बाध लिया। रुक्मिणी ने कृष्ण से निवदन किया कि यदि रुक्मैया को नही छोडा गया तो कुण्डलपुर मे कोई उन्हें पीने के लिए हुक्का नही देगा और कोई उनकी चिलम पर आग नही रखगा—

> बे जगुला बगुला नही, बेमारे ससुरारि,
> छोडो मुसक मेरे बीर की।
> को तुमे हुक्का देइगो को धरे चिलम पै आच
> छोडो मुसक मेरे बीर की।
> तुम सामन में जाउगे हम आगे हरियाली तीज,
> छोडो मुसक मेरे बीर की।[4]

१२२ ४। रुक्मैया क योद्धाओ ने श्रीकृष्ण मे युद्ध किया कि तु अन्त मे उनकी हार हुई।[5] कृष्ण स निवेदन किया गया कि वे रुक्मिणी को कु वारी न ले जावें और उसके साथ विधिवत् विवाह कर लें—

> मनि क्वारि लै चले मनो मेरो नाम धरावे,
> हारि मर्मारया हारि, रुक्मिपुर नयो बसावे।

१-छन्द म० २५। २-छन्द सं० २७।
३-छन्द म० २८। ४-छन्द म० ३६।
५-छन्द म० ३१।

द्वापर श्रोर निरेना म सबु कोई जनियौं धीम्र ।
क्वारिन कू वे खेचि लै जाइ सूनि करता जगदोस ।।[१]

१२३ ४। श्रीकृष्ण ने तदुपरा त रुक्मिणी से विधिवत् विवाह किया। अ त मे प्रयुक्त प्रभुदास नाम से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत रचना का कर्ता प्रभुदास है—

सोलह से सहस नाम हरि के कहत म सूख पाइए
कहे प्रभुदास प्रभु के रहमि मगल गाइये ।

१२४ ४। प्रस्तुत "रुक्मिणी मगल' मे ग्राम्य और पिछडी जातियो की भावनाए कवि ने सफलता पूर्वक व्यक्त की हैं। सन्देश वाहक ब्राह्मण को लालची बताया गया है और रुक्मणी की हत्या करने पर कृष्ण को जाति से बहिष्कृत कर उनका हुक्का पानी ब द करने का धमकी भी दी गई है। रचना का प्रारम्भ भी नवीनता लिये हुए हैं।

(च) कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की प्रेरक परिस्थिति

१२५ ४। कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्य मे मुख्यत वीरता, श्रृगार और भक्ति का समन्वय हुआ है। मध्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप ही हमारे कवि अपनी रुचि के अनुसार, वीरता श्रृ गार और भक्ति के तत्व ग्रहण कर, उनका निरूपण अपनी रचनाओ मे करते रहे हैं।

१२६ ४। भारतवर्ष पर होने वाले मुस्लिम आक्रमणो, भारतीय नरेशो की पराजयो और भारत मे मुस्लिम साम्राज्यो की स्थापनाओं ने भारतीय जनता को आतकित कर दिया था। भारतीय जनता में मुस्लिम शासन को उखाड फेंकने की भावनाए उत्पन्न होती रहीं। पृथ्वीराज चौहान की तराईन युद्ध मे पराजय के पश्चात् भारतवर्ष में क्रमश गुलाम, तुगलक खिलजी, लौदी और मुगल सल्तनतें स्थापित हुई और इन सभी सल्तनतो को छोटे मोटे अनेक विद्रोहो का सामना करना पडा।

१२७ ४। मध्यकालीन मुस्लिम शासन के युगा में हमारा जन समुदाय मुस्लिम शासको की वभव और विलास सम्बन्धी भावनाओ से भी व चित नही रह सका। इस युग मे नारी को भोग विलास की वस्तु मान लिया गया। मुस्लिम शासको के महलो में अनेक देशो की स्त्रियां रहती थी और राज्य का आय का बहुत बडा भाग इन स्त्रियो के लिए खर्च होता था।

१२८ ४। मुस्लिम शासकों के अनुकरण में इनके आश्रित राजपूत राजा भी अधिक से अधिक सुन्दरी कन्याओं को अपने महलों में रखने के लिए तत्पर रहते थे। किसी राजा द्वारा विवाह के अवसर पर पहुंच कर किसी कन्या का अपहरण करना इस काल की सामान्य घटना हो गई थी। राजपूत राजाओं में पारस्परिक ईर्षा-द्वेष और संघर्ष भी प्रायः सुन्दरी कन्याओं के विषय में होते रहते थे।

१२९ ४। कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों में हमारे जन प्रतिनिधि कवियों की स्वाधीनता और वीरता सम्बन्धी भावों की भी अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। रुक्मिणी भारत लक्ष्मी के रूप में चित्रित हुई है जिसका उद्धार असुर-संहारक भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा हुआ। कृष्ण, बलदेव और यादव वीरों की युद्ध में प्रकट की गई वीरता के रूप में मूलतः हमारे कवियों की मुस्लिम शासन को उखाड़ फेंकने की भावनाएं हैं।

१३० ४। अनेक मुसलमान शासक हिन्दू राजकुमारियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते थे और कतिपय राजपूत राजा भी प्रलोभन में पड़ कर अथवा नीतिवश अपनी कुल कन्याओं का विवाह मुस्लिम राजपरिवारों में करने लगे थे। अनेक हिन्दू राजकुमारियां ऐसे विवाह सम्बन्धों को अपनी इच्छाओं के विपरीत समझती हुई ऐसी परिस्थितियों से त्राण पाने का उपाय भी करती थी। प्रसिद्ध है कि रूपनगर की राजकुमारी का विवाह सम्बन्ध औरंगजेब से निश्चित हुआ तब राजकुमारी ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह को रुक्मिणी की भांति संदेश भेजकर औरंगजेब से त्राण पाने की प्रार्थना की। राणा राजसिंह ने भी विवाह के अवसर पर सेना सहित पहुंचकर औरंगजेब का मार्ग अवरुद्ध किया और विधिपूर्वक रूपनगर की राजकुमारी से विवाह किया। इस विषय का एक राजस्थानी गीत इस प्रकार है —

गीत बडो साणोर

घरा वेंघ ग्रम खेत चत्रकोट गढ देलडा,
पुराव नवत्र सुवरख प्रमाणो।
साह ग्रवरग ग्रवतार सिसिपाल रो
राजसी किसन ग्रवतार राणो ॥१॥
मांडियो ज्याग कमधा घरैं माढहो,
लिखत वर सुवर ईसवर लिखायो।
कथन सुण द्वारका हूत ग्रायो किसन,
उदैपुर हूत इम राण ग्रायौ ॥२॥
घुरत सद नगौरा सझे हिक साथ घण
सेहरा बांधि बे वर सनेही।
चाव कर कुनणपुर एम चवरी चडे,
जगारो किसनगढ जोध जेही ॥३॥
एक ग्रधकार हीदू तुरक ईसना
जको तो वात ससार ग्राणी।

किसन घरि रुक्मणी ले गयो कवारी,
अमर रै कलोधर परणि आणी ॥४॥

धरा धक धूण गढ कोट चाढे धकै,
देस रावणतणें दिये खगदाह ।
पैलकै गयो सिसपाल माथो पटकि,
पटकी सिर हमरकै गयो पतसाह ॥५॥

राजरा विरद वाखाण गुण रायवर
कथन सुणि दिलीचे वचि कहसी ।
राजसी राण हिंदवाण ध्रम राखता,
राण वाखाण जुग च्यार रहसी ॥६॥ [1]

१ पूर्वानक्षत्र युक्त शुभ समय पर धरा का वेध करने तथा क्षत्रियो को खेद पहुचाने के लिए दिल्ली से बादशाह औरंगजेब शिशुपाल के अवतार के रूप मे आया तो चितौड के महाराणा राजसिंह कृष्ण के अवतार के रूप में पहुचे ।

२ आज राठौडो के घर लडकी का विवाह है और यज्ञ आयोजित हुआ है । ईश्वर ने राजकुमारी के भाग्य में उत्तम वर लिखा है इसलिए रुक्मिणी का सन्देश प्राप्त कर द्वारिका से श्रीकृष्ण आये उसी प्रकार उदयपुर से महाराणा राजसिंह आये हैं ।

३ नक्कारो का नाद हो रहा है, और कुन्दनपुर रूपी किशनगढ मे महाराणा जगतसिंह का वशज राजसिंह और बादशाह औरंगजेब दोनो ही वर सेहरा बाधकर एक साथ तैयार हुए हैं । दोनो वर उत्साह पूर्वक विवाह मडप की ओर चले ।

४ हिन्दुओ और मुसलमानो का अधिकार समझते हुए आज समस्त ससार यह जान गया कि कृष्ण तो रुक्मिणी को कुंवारी ही हरण कर ले गये किन्तु महाराणा अमरसिंह का वशज राजसिंह विवाह करके राजपुत्री को लाया ।

५ दुर्ग और कोट सहित पृथ्वी को कम्पायमान कर राणा राजसिंह ने रावण रूपी बादशाह के देश को खड्गरूपी अग्नि से दग्ध कर दिया । पहिले शिशुपाल जिस प्रकार कृष्ण के समक्ष मस्तक झुका कर चला गया उसी प्रकार अब बादशाह हताश होकर मस्तक धुनता हुआ चला गया है ।

६ महाराणा राजसिंह के विरद और गुणो का वर्णन सुन कर दिल्ली मे लोग कहेंगे कि हिन्दुधर्म की रक्षा करने से महाराणा राजसिंह का यश चारो युगो मे स्थाई रहेगा ।

१–महाराणा यश प्रकाश, स० ठाकुर भूरसिंह शेखावत उदयपुर प्रका० रगनाथदास श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना बम्बई, वि० स० १९८२, पृ० १६६ ।

१३१ ४। उस [illegible] क्रमशः [illegible] माना जाता है। [illegible] मारवाड़ में [illegible] मे [illegible] और [illegible] के [illegible] के [illegible] माने गये हैं।[1]

१३२ ४। इस प्रकार [illegible] है कि [illegible] परिस्थिति में हमारे समाज एवं कवियों का [illegible] श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह [illegible] की ओर आकर्षित हुआ तथा [illegible] और [illegible] श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह एक अनुकरणीय [illegible] बन गया। [illegible] में [illegible] और [illegible] विवाह की तुलना श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह से की गई है —

'[illegible] ।'[2]

१३३ ४। अनेक कवियों ने [illegible] शिशुपाल और जरासंध [illegible] मुसलमान मानते हुए रुक्मिणी को भारतमाता अथवा हिन्दु [illegible] का भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार होने का चित्रण किया है। यथा—

> डाढ़िन युत मुख लगहिं घनेरे। जनु छनता मधु मालिन केरे ॥
> कोई कुरान वाचहि नृप पासे। कछु गनिका बहु करहिं तमासे ॥
> यवन लसो सब श्याम पोशाकें। मनहु नील घन रहित बलाकें ॥
> कोइ आमिर सुनि श्रवण पुराना। उफरहिं भूमहिं मनुहु दिवाना ॥[3]
> मिले म्लेच्छ भीर जिके अंग मोटा, मिले दागवा व न दाढी कदाटा।
> मिले साहजादा जिके मिले सूरा मिलयेह वाणी जिके अंग पूरा।
> मिले कोइ पेकबरा कोइ याजी मिले कोउ गोरबरा कोउ गाजी।[3]

१३४ ४। मुस्लिम शासनकाल की विषमता व युगों मे एक मात्र प्रभु सहारक करुणामय परमात्मा का ही अवलम्बन रह गया था और ऐसी ही अवस्था में हमारे कवियों ने अपने हार्दिक उद्गार श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह परक काव्यों मे व्यक्त किये।



१–महाराणा यशप्रकाश, स० ठाकुर भूरसिंह शेखावत, मलसीसर, जयपुर।

२–महाराज रघुराज सिंह रुक्मिणी-परिणय, द्वितिय सर्ग।

३–कवि विट्ठलदास, रुक्मिणी हरण, छन्द सं० ३०–३१, आनन्द प्रकाश जी दीक्षित का निबंध 'रुक्मणिहरण ,बीठलदास रो कह्यो, शोध पत्रिका उदयपुर, भाग ११, अंक १।

पंचम अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी चारण काव्य

१–कर्मसी सांखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

२–महाराज पृथ्वीराज कृत वेलि कृष्ण रुक्मिणी री—

क कथा ममीचा

ख. वेलि का रचना काल

ग रस यजना

घ भाषा शैली

ङ वस्तु वर्णन

च अलकार सौन्दर्य

छ. छन्द प्रयोग

ज वेलि का काव्य रूप

झ पृथ्वीराज रचित वेलि और कर्मसिंह साखला रचित वेलि

ञ. "क्रिसन रुक्मिणी री वेलि" की टिकाए —

(१ लाखाजी चारण की टीका

(२) कवि सारग कृत सस्कृत टीका

(३) कवि कनक लिखित सस्कृत टीका

(४) श्री सार रचित सस्कृत टीका

(५) शिव निधान कृत राजस्थानी टीका

(६) जय कीर्ति कृत टीका

(७) कुशलधीर कृत टीका तथा अन्य प्रतियां और टीकाए

ट वेलि की सस्तुति

३–सायां जी झूला कृत रुक्मिणी हरण

सूर कृत रुक्मिणी हरण

५–मुरारीदान बारहट कृत 'विजय विवाह'

६–विट्ठलदास कृत रुक्मिणी हरण

७–किशन किलोल

पंचम अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी-चारण-काव्य

१ ५। राजस्थानी साहित्य के विकास में चारण साहित्यकारों की विशेष देन है। 'चारण' शब्द की व्याख्या "चारयन्ति कीर्तिम् इति चारण" अर्थात् कीर्तिगान करने वालों के रूप में की गई है। चारणों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवतादि पुराणों में भी माना जाता है।[1] चारणों की मुख्य शाखाएं चार हैं— १ मारू, २ काछेला, ३ सोरठिया और ४ तुम्बेल तथा उपशाखाएं १२० तक हैं।[2] चारण मुख्यतः शाक्तमतानुयायी हैं और इनके रीति रिवाज खान पान तथा रहन-सहन राजपूतों के अनुरूप हैं।

२ ५। चारण मुख्यतः राजदरबारी कवि रहे हैं। चारणों और क्षत्रियों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है—

> चारण क्षत्री भाइया जा घर खाग तियाग।
> खाग तियागा बाहिरा, तासु लाग न भाग ॥

३ ५। चारण कवि वीरों के प्रशंसक और कायरों के कटु आलोचक रहे हैं। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं अथवा अन्य शासकों में किसी प्रकार के अवगुण देखे अथवा उनके द्वारा कोई अनुचित कार्य होते देखे तो निडर होकर प्रभावशाली वाणी में उनकी भर्त्सना की है।[3] अनेक चारण कवियों ने सांसारिक सुखोपभोगों को तुच्छ समझते हुए यश-स्तवन के रूप में ही अपनी काव्य रचनाएं प्रस्तुत की। अनेक चारण कवि सरस्वती पुत्र होते हुए युद्ध भूमि में अपनी वीरता से महाकाल शिव को रिझाने वाले हुए हैं। चारण कवि शासकों के सेनापति, प्रधान परामर्शदाता और विद्यागुरु रहे हैं तथा अपनी गद्य-पद्य मय विविध विषयक रचनाओं से सत्य का प्रकट प्रभावशाली रूप में करते रहे हैं। इस प्रकार चारण कवियों की भाषा शैली का प्रभाव राजस्थान में अन्य कवि-वर्गों पर भी हुआ। अनेक

१—कविराजा श्यामलदास लिखित वीरविनोद, प्रथम भाग पृ० १६८।

२—महाकवि सूर्यमल कृत वंश भास्कर, भाग १, पृ० ८४।

३—श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्दकोष प्रस्तावना, पृ० १०७-११३।

राजपूत कवियों ने भी चारण शैली को पूर्ण रूप से अपनाया है और यही कारण है कि श्री कृष्ण रुक्मणी विवाह-सम्बन्धी चारण शैली की वेलियों को चारणों के साथ राजपूत कवियों ने भी सफलता पूर्वक लिखे हैं।

१—करमसी सांखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

४. ५। करमसी अर्थात् करमसिंह सांखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि चारण शैली में रचित श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह सम्बन्धी काव्यों में एक महत्वपूर्ण रचना है। कवि करमसी को 'रुणेचा' भी कहा गया है —

'सांखुला करमसी रुणेचा'[1]

५. ५। सम्भवतः इनके पूर्वज रुण नामक स्थान के निवासी थे इसीलिये ये रुणेचा कहे गये। करमसिंह उदयपुर के महाराणा उदयसिंह और बीकानेर के राव कल्याणमल के समकालीन थे। कवि का विशेष परिचय "वेलि" की पुष्पिका लेख में अथवा किसी अन्य स्रोत में प्राप्त नहीं होता है।

६. ५। 'श्रीकृष्णजी री वेलि' की एक मात्र प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में उपलब्ध है।[2] प्रति के पुष्पिका लेख से ज्ञात होता है कि इसका लेखन वि० सं० १६३४ वैशाख शुक्ला तृतीया रविवार को सांवलदास ने बीकानेर महाराजा श्री रायसिंह जी के सैनिक पड़ाव में बूसी नामक स्थान पर किया—

"इति सांखुला करमसी रुणेचा कृत श्रीकृस्न जी री वेलि। लिषित सांवलदास सांगावत। सांगो ससारचंदउत। ससारचंद वीदावत। वीदो महाराजाधिराज महाराय श्री जोधइ रो॥ लिषित ग्राम बूसी मध्य संवत् १६३४ वर्षे वैशाख शुदि ३ दिने रविवासरे घटी ८। ४१ मृगसिर नक्षत्रे घटी ४०। ४६ सुकरमनामयोग। घटी ५१। १६ महाराजाधिराइ महाराइ श्री राइसिंघ जी रइ साथि थकइ सांवलदासि पोथी लिषी कटक मांह।" २

७. ५। वेलि का लिपिकर्ता उक्त सांवलदास बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीका

१— अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति संख्या १६६, पुष्पिका।

२— क—हस्तलिखित प्रति संख्या १६६।

ख—बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना, ए डिस्क्रिप्टिव केटलग, खण्ड २, भाग १, डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, पृष्ठ ४५।

व भाई बादा के पौत्र सागाजी का पुत्र था। राव जैतसी ने द्रोणपुर पर चढ़ाई कर सागाजी को वहां पर नियुक्त किया था। वि० सं० १६३४ में वेलि को लिपिबद्ध किया जा चुका था, जिससे प्रकट होता है कि वेलि की रचना इससे पहले हो चुकी थी। वेलि की प्रति से यह नहीं ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिलिपि किसी प्राचीन प्रति के आधार पर हुई अथवा इसको मौखिक रूप में किसी से सुन कर लिपिबद्ध किया गया। यह भी सम्भव है कि इस कृति में इसके नाम के अनुसार कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन कुछ विस्तार से रहा हो। विद्वानों ने संवत् १६०० के लगभग इसका रचना काल अनुमानित किया है।[१]

८ ५। इस वेलि का नाम किसन जी री वेलि दिया गया है किन्तु पुष्पिका में इसका नाम श्री कृस्न जी री वेलि" उपलब्ध होता है। इस वेलि में 'वेलियां गीत' के बाईस दोहले ही उपलब्ध होते हैं। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने लिखा है, 'प्रतीत होता है कि जैसे सम्पूर्ण रचना का यह अन्तिमांश है।''[३] किन्तु नख शिख निरूपण सम्बन्धी अनेक दोहले अन्तिमांश न होकर रचना के प्रारम्भिक भाग के भी हो सकते हैं। महाराज पृथ्वीराज ने भी अपनी वेलि में रुक्मिणी का नख शिख वर्णन काव्य के प्रारम्भ में ही किया है। इस काव्य का प्रतिपाद्य प्रद्युम्न जन्म अथवा संयोग शृंगार युक्त षट्ऋतु वर्णन ही अधिक सम्भव है। यह भी सम्भव है कि लिपिकर्त्ता ने जिस क्रम से जितना इस रचना को सुना अथवा जिस क्रम से जितनी उसको याद रहा उसी क्रम से उतना उसको लिख लिया। 'इति सांखुल करमसी रूणेचा कृत श्री कृस्न जी री वेलि" से स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है कि इसकी रचना सांखला करमसिंह रूणेचा द्वारा हुई किन्तु इस विषय में डा० सावित्री सिन्हा ने बहुत भ्रामक मत प्रकट किया है – राव गांगा की सार वाली रानी-कृष्ण जी री वेली' के नाम से डिंगल काव्य में अनेक रचनाएं की गई। इसी नाम की एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री टेसी टोरी ने इस रानी को माना है जिसकी प्रथम पंक्ति है , " अनोपम रूप सिंगार अनोपम भूषण अंग।''[४]

९ ५। ज्ञात होता है कि डा० सावित्री सिन्हा ने न तो इस कृति की हस्तलिखित प्रति देखी है और न डा० टेसीटोरी के कथन को ही समझने का प्रयत्न किया है। वेलि के कर्त्ता सांखला करमसिंह का नाम टेसीटोरी की टिप्पणी में स्पष्टरूपेण लिखित है– ''क्रिसनजी री वेलि सांखला करमसी रूणेचा री कही"।[५]

१– डा० हीरालाल जी माहेश्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १६२।

२– वही, पृ० १६२ १६६।

३– वही, पृ० १६६।

४– मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां प्रथम संस्करण–१९५३ ई० पृ० ३५।

५– बार्डिक एण्ड हिस्टारिकल सर्वे आफ राजपूताना ए डिस्क्रिप्टिव केटलॉग, खण्ड २ भाग १, पृष्ठ ४५।

१० ५। डा० सावित्री सिन्हा ने छन्द की प्रथम पंक्ति भी अशुद्ध रूप में उद्धृत की है। उसका शुद्ध रूप इस प्रकार है– 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम अवल अ गि।'[1]

११। ५। वेलि के प्रारम्भ में कवि ने रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन करते हुए लिखा है कि चन्द्रमुखी रुक्मिणी अनुपम रूप, अनुपम शृंगार और अनुपम माणिक्य मलाग्रा से युक्त है। उसको श्रीकृष्ण के समीप पाणिग्रहणार्थ हेतु लाया गया—

> अनोपम रूप सिंगार अनोपम अबल अनोपम लपण अ गि।
> सहि एता आणिय ससि वदनी रे थीरंग माणिका रंगि ॥[2]

आगे कवि ने रुक्मिणी की पगतलियों में छनक पवन वासी लालिमा और दर्पण अथवा दीप पंक्ति की भांति चमकने वाले नखों का वर्णन किया है।[3]

तदुपरान्त कवि ने नूपुरों की झंकार को कामदेव के बाद्य यन्त्र के रूप में निरूपित किया है।[4]

कवि ने रुक्मिणी की पिंडलियों को कृष्ण से युद्ध करने हेतु गदावलि के रूप में बताया है।[5]

तदुपरान्त कवि ने युवती की युगल जंघाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके स्पर्श से कामदेव की उत्पत्ति होती है।[6]

कवि ने नायिका के रोम रहित कठिन नितम्ब हाथी के कुम्भस्थल के रूप में निरूपित करते हुए प्रकट किया है कि कामदेव को शिव ने भस्म कर दिया किन्तु वह इस स्थान को गहन जान कर यहाँ निवास करता है।[7]

कवि ने नायिका के नाभि मण्डल को रूप के कूप तथा रतिरस के कुम्भ के रूप में निरूपित किया है और रोमावली को जल सींचने वाले माली के रूप में बताया है।[8]

१–वही पृ० ४२।
२–अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति सं० १६६ छन्द सं० १।
३–वही, छन्द स० २।
४–वही छन्द स० ३।
५–वही, छन्द स० ४।
६–वही, छन्द स० ५।
७–वही, छन्द स० ६।
८–वही, छन्द संख्या ७।

कवि ने रुक्मिणी के नयनों का वर्णन करते हुए उन्हें अति चंचल 'काजल युक्त, रतनारे एवं कान्तिमान बताया है।[1]

नायिका सोलह श्रृंगार धारण कर शोभित है और वह झिलमिलाती ज्योति के समान शोभित मान है। कृष्ण का मन रूपी हिरण वश में करने के लिये उसने मानो जाल फैला दिया है।[2]

कवि ने रुक्मिणी का मस्तक आफर के समान बताते हुए लिखा है कि उसके भाल पर माला और सिंदूर भरा हुआ है। वह माना नक्षत्र माला के समान देदीप्यमान है और चन्दन का तिलक चन्द्रमा के समान है।[3]

नायिका के मुँह पर रत्न जड़ित रखड़ी सुशोभित है। उसकी वेणी सरलता से बल खाती हुई सर्प के समान है, जो अमृत का आहार करने के लिए मुख रूपी चन्द्रमा के समीप आयी है।[4]

लावण्य गुण पूरित लक्ष्मी राजहंस के समान चलकर कर्मसिंह के श्यामवर्ण स्वामी मदन मुरारी श्रीकृष्ण से सेज पर मिली।[5]

कवि ने अन्त में लिखा है कि रुक्मिणी के रूप, लक्षण और गुण वर्णन में कौन समर्थ हो सकता है। मैंने गोविन्द की रानी के गुण जान बस हो कहे हैं।[6]

१२ ५। रचना नाम के अनुसार इसमें श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह का प्रद्युम्न जन्म सहित वर्णन होना चाहिये किन्तु सम्बन्धित हस्तलिखित प्रति में रुक्मिणी का नख शिख निरूपणमात्र उपलब्ध होता है।[7]

१३ ५। प्रस्तुत छन्दों में वर्णित विषय से यह श्रृंगारिक रचना प्रतीत होती है। विषय के श्रृंगारिक होते हुए भी कवि ने जनोचित मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। 'वेली' की रचना 'वेलिया गीत' नामक छन्द में हुई है और यह भी एक कारण है कि यह रचना "वेलि" कही गई।

१—वही छंद सं० १७। २—वही, छंद सं० १८।
३—वही, छंद सं० १६। ४—वही, छंद सं० २०।
५—वही छंद सं० २१ ६—वही, छन्द सं० २२।
७—वही।

१४ ५। रचना में अलंकार सौन्दर्य सर्वत्र दर्शनीय है। यथा-अनुप्रास,[1] उत्प्रेक्षा[2] उपमा[3] व्यतिरेक,[4] रूपक[5] असंगति समास[6] स न्देह और वयणसगाई।[7]

१५ ५। आकार प्रकार का वर्णन करते हुए प्राप्त रचना का आकृष्ण जा री वलि के स्थान पर नख सिख निरूपण वलि कहना सर्वथा उपयुक्त है। नायिकाओं के नख शिख निरू पण करने की हमारे काव्यों में सुदीर्घ परम्परा रही है और 'नख शिख निरूपण' विषयक अनेक स्वतन्त्र रचनाएं भी उपलब्ध होती है।[8] राजस्थानी नख शिख निरूपण विषयक रचनाओं में प्रस्तुत वलि एक सर्वोत्कृष्ट रचना है।

७—महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री"

१६ ५। राठौड़ पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री" राजस्थानी साहित्य का अद्वितीय काव्य कृति मानी गई है। यह वेलि भक्त जनों के लिए 'मुगति तणी नीस रणी'[9] सरस्वती कंठभूषणी[10] और रसिकों हेतु रसमयी[11] है। वलि की लगभग एक सौ प्रतियाँ विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध हो चुकी है।[12] संस्कृत, ब्रज राजस्थानी और खड़ी बोली की अनेक टीकाएं हो चुकी है[14] तथा ६ विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्करण प्रकाशित हो चुके है।[15]

१—छन्द स० ९ १६ आदि। २—छन्द स० ३ ६ आदि।
३—छन्द स० ८ १२ आदि। ४—छन्द स० १५।
५—छन्द स० १६ १८ आदि। ६—छन्द स० १६।
७—छन्द स० २। ८—सभी छन्दों में।
६— क-नख-शिख केशव कृत।
ख—नख-शिख बलभद्र कृत, डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४६३, ४६६ और ५६३।
ग—नख-शिख, पृथ्वीराज राठोड़ कृत, प० नरोत्तमदासजी स्वामी द्वारा सम्पादित वैलि प्रस्तावना पृ० २८।
१० — वेलि छन्द स० २६४।
११ — वेलि छन्द स० २७६। १२—वेलि छन्द स० २९८।
१३ — राजस्थान भारती, बीकानेर पृथ्वीराज विशेषांक, भाग ७ अंक १-२ और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ग्रन्थ सूचियां।
१४ — राजस्थान भारती बीकानेर, मई १९६१।
१५-१— सम्पा० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता स० १९१९।
२— स० ठाकुर रामसिंहजी और सूर्यकरणजी पारीक हिन्दुस्तानी एकडमी, प्रयाग, १९३१ ई०।
३—स० डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९५३।
४—स० प० नरोत्तमदासजी स्वामी, श्री रामप्रेहरा एण्ड क० आगरा १९५३ ई०।
५—स० श्रीकृष्ण शंकर शुक्ल, साहित्य निकेतन, कानपुर १९५४ ई०।
६—स० श्री नटवरलाल इच्छाराम दसाई, फावस गुजराती सभा बम्बई,, गुजराती टीका सहित, १९५५ ई०।

(क) कथा समीक्षा—

१७ ५। महाराज पृथ्वीराज राठोड ने अपना 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' का प्रारम्भ मे मगलाचरण के अन्तर्गत परमेश्वर, सरस्वती सद्गुरु और मगलरूप माधव का स्मरण किया है।[1] कवि ने तदुपरान्त अपने असामर्थ्य और कथा की महत्ता का कलात्मक निरूपण करते हुए लिखा है कि वह गुणहीन होते हुए भी गुणनिधि का गान करना चाहता है, मानों काष्ठचित्रित पुतली अपने हाथ मे चित्रकार का चित्रण करना चाहती है अथवा किसी वाग्वि हीन व्यक्ति ने वागेश्वरी सरस्वती को विजित करने के लिए विवाद प्रारम्भ किया है। कवि अपने मन को कहता है कि, मूर्ख ! सरस्वती भी जिसका नहीं भेद पाती उसका तू देखना चाहता है तू वातरोग मे पीडित है अथवा पागल हो गया है। पगु चलकर पहाड पर कैसे पहु च सकता है ? [2] आगे कवि शेषनाग और अपनी तुलना करता हुआ कहता है कि शेषनाग ने भी परमेश्वर के चरित्र का पार नहीं पाया तो उस जैसे मेढक के बकना का क्या बस हो सकता है ? [3]

१८ ५। कवि ने काव्य मे निहित शृ गार की ओर सकेत भी प्रारम्भ म ही कर दिया है—

श्रीवरणण पहिलौ कीजै तिणि, गु थियै जेणि सिंगार ग्रन्थ ।। [4]

कवि ने काव्यगत शृ गार की ओर सकेत करते हुए उसकी मर्यादा का भी अनूठे रूप में चित्रण कर मातृत्व की महत्ता बताई है। महाकवि तुलसी ने जनकनन्दिनी सीता का शृ गार और सौन्दर्य का वर्णन मातृरूप में किया है उसी प्रकार महाराज पृथ्वीराज ने रुक्मिणी के मातृत्व की ओर सकेत किया है—

'पूत हेत पखता पिता प्रति, वली विसेसै मात वडी" ।। [5]

१९ ५। कवि ने विदर्भपति राजा भीष्मक और उसकी सन्तानों का सक्षिप्त वर्णन[6] करते हुए रुक्मिणी के बालरूप सौन्दर्य का और वय सधि का रमणीय, कल्पनारजित और कलापूर्ण चित्रण किया है।[7]

२० ५। रुक्मिणी बालहस के समान राजा के आगम में क्रीडा करती है, बत्तीस लक्षणों से युक्त है, गुडिया खेलती है और समान शील, कुल और अवस्था की सखियों में इस प्रकार शोभित होती है मानो तारामों में चन्द्र हो। उसकी बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकी है

१— छन्द सं० १। २— छन्द स० २–४।
३— छन्द सं० ५। ४— छन्द स० ८।
५— छन्द स० ६। ६— छन्द सं० १०–११।
७— छन्द स० १२–२८।

और युवावस्था प्रारम्भ हो रही है। अपने अंगों को छिपाने में वह लज्जा करती हुई भी लज्जित हो रही है।[1]

२१ ४। आगे कवि ने लिखा है कि रुक्मिणी का शैशव रूपी शिशिर व्यतीत हो गया है और युवावस्थारूपी ऋतुराज का अपने परिग्रह सहित आगमन हो गया है। इस प्रसंग में कवि ने सागरूपक के अन्तर्गत रुक्मिणी की युवावस्था का सरस चित्रण किया है। कवि का शिख नख वर्णन अनूठा है।[2]

२२ ४। रुक्मिणी ने पूर्ण शिक्षा प्राप्त की जिसके विषय में कवि ने लिखा है—

व्याकरण पुराण समृति सास्त्रि विधि, वेद च्यारि खट अंग विचार।
जाणि चनुरदस चौसठि जाणी, अनंत अनंत तसु मधि अधिकार।[3]

२३ ५। रुक्मिणी में गुणश्रवण के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और वह श्रीकृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने की इच्छा से गौरी और हर की वन्दना करती है।

२४ ५। राजा भीष्मक रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से करना चाहते हैं[4] किन्तु उनका पुत्र रुक्मया श्रीकृष्ण का विरोध करता हुआ शिशुपाल का विवाह निमंत्रण भेजता है।[5] रुक्मया कृष्ण को अहीर एवं ग्वाला कहता हुआ राजपरिवार में कृष्ण का विवाह सम्बन्ध करना उचित नहीं मानता है।

२५ ५। शिशुपाल लग्नपत्रिका प्राप्त कर अनेक राजाओं के साथ बरात सज्जित कर प्रसन्नतापूर्वक कुन्दनपुर आता है। कवि ने इस अवसर पर कुन्दनपुर की शोभा का विशेष वर्णन किया है।[6]

२६ ५। कवि ने शिशुपाल के कुन्दनपुर में आने पर रुक्मिणी की विकल दशा का चित्रण करते हुए श्रीकृष्ण के पास ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी का सन्देश भिजवाया है। ब्राह्मण मार्ग में रात होने पर सो जाता है और प्रातः जागने पर आपको द्वारिका में पाता है। कवि ने द्वारिका का मनोरम वर्णन किया है।[7]

२७ ५। सन्देशवाहक ब्राह्मण कृष्ण के पास पहुंचता है। कृष्ण उसका विधिपूर्वक स्वागत सत्कार करते हैं और फिर ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करता है।[8]

१—छंद सं० १८।	२—छंद सं० २०—२७।
३—छंद सं० २८।	४—छंद सं० ३०।
५—छंद सं० ३१—३८।	६—छंद सं० ४०—४१।
७—छंद संख्या ५०।	८—छंद सं० ५२—५६।

ग्रौर प्रियमिलन क लिए रुक्मिणी के शृगार करन ग्रौर दवदर्शन के लिए सखियों एवं सरक्षक सैनिकों सहित प्रस्थान करने का विस्तृत वर्णन किया है। [1] रुक्मिणी का ग्रार ■ एक मिलाई हुई माथो न रानी स ग्रम्बिका-पूजन की स्वीकृति ली ग्रौर स्वीकृति मिलने पर ही रुक्मिणी ने शृ गार प्रारम्भ किया। कवि ने रुक्मिणी क स्नान ग्रौर नख शिख सौन्दर्य का पूर्ण हार्दिकता क साथ निरूपण किया है।

३२ ४। श्रीकृष्ण ने अन्तरिक्ष मार्ग स ग्रम्बिकालय की ग्रौर रुक्मिणी का ग्रनुगमन किया। सैनिकों ने मन्दिर के चारों ग्रौर सुरक्षा के लिए डेरा डाल दिया। रुक्मिणी ने मंदिर में प्रवेश कर ग्रपने हाथों देवी का पूजन कर मनवाछित फल ग्रपने हाथ मे कर लिया। देवी पूजन के उपरा त रुक्मिणी ने जैसे ही सरक्षिका सेना पर दृष्टि फेरी वसे ही सेना मूर्छित हो गई। [2]

रुक्मिणी न कृष्ण को ग्राकर्षित करने वाली चितवन, मोहित एव वशीकरण करन वाली मुस्कान उन्माद उत्पन्न करन वाली ग्रगभगिमा हृदय को द्रवित करन वाली गति ग्रौर चलना हुए लेन वाले सकोच रूपी तावण के साथ लौटते समय मंदिर क द्वार मे प्रवेश किया। कवि ने उक्त वर्णन में कामदेव की शक्ति का पाच बाणों क रूप मे निरूपण किया है। कामदव क पाच बाण निम्नलिखित हैं—

समोहनोन्मादौ च शोषणस्तापनस्तथा।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पच बाणा प्रकीर्तिता ॥

३४ ४। कवि न सम्मोहन के स्थान पर वशीकरण, तापन के स्थान पर द्रविण ग्रौर स्तम्भन क स्थान पर ग्राकर्षण का विशेष प्रयोग किया है। कृष्ण न ग्राकाशमार्ग स मंदिर क समीप प्रवेश कर रुक्मिणी का हाथ पकड कर उसको ग्रपने रथ म बैठा लिया। [3] कवि ने ग्रागे वीरो द्वारा युद्ध क लिए तयार होने का ग्रौर युद्ध का वर्णन किया है। युद्ध वर्णन करत हुए कवि न साग रूपक ने ■ तमत वर्णरूपक का सफल प्रयोग किया है। कवि स्वय कुशल सनिक एव सेनापति था ग्रतएव मुगलकालीन युद्ध पद्धति की स्पष्ट झलक इस वर्णन में उपलब्ध होती है। वेली का यह युद्ध वर्णन ग्रपने ग्राप म पूर्ण है एव युद्धोपरान्त होन वाली वीभत्स स्थिति का भी निरूपण हुग्रा है। काव्य रचना की दृष्टि मे युद्ध वर्णन का ग्रश 'वेली' का प्रमुख भाग है। [4] कृष्ण ने ग्रागे रुक्मी को निरायुध कर रुक्मिणी को दुखयान समझते हुए उसक केश उतार कर मुक्त कर दिया। बलराम न कृष्ण को इस विषय ■ व्यगमय वचन कहे तो कृष्ण ने ग्रपना हाथ रुक्मैया क सिर पर फेर कर केश पुन लगा दिए। [5]

१–छद सं० ७१–१०५। २–छद स० १०६–११०।
३–छद स० ११३–११२। ४–छद स० ११३–१३३।
५–छद संख्या १३८।

३५ ५। आगे कवि ने द्वारिका के मार्ग में श्रीकृष्ण को मिलने वाली विजय की बधाई देने वालों का वर्णन भी किया है।[1]

विजयी श्रीकृष्ण व रुक्मिणी सहित द्वारिका में प्रवेश करने पर द्वारिका वासियों के आनन्दोत्साह, द्वारिका की सजावट और उत्सव का वर्णन कवि ने रुचिपूर्वक किया है।[2] द्वारिका नगर श्रीकृष्ण के स्वागत में इस प्रकार लहरें लेने लगा जैसे पूर्णिमा के दिन च[illegible] दर्शन से ज्वारयुक्त समुद्र लहरें लेता है।

३६ ५। ज्योतिषियों से विवाह का मुहूर्त पूछा गया तो उन्होंने कम्पित चित्त से कहा कि एक ही स्त्री के साथ पुनः दुबारा पाणिग्रहण कैसे हो सकता है? रुक्मिणी हरण के साथ ही पाणिग्रह हो गया, अतः यह निश्चय हुआ कि सब संस्कार ही आगे होना उचित है।[3]

३७ ५। कवि ने आगे विवाह संस्कार का वर्णन[4] करते हुए श्रीकृष्ण रुक्मिणी के शयनगृह प्रसंग का चित्रण किया है।[5] श्रीकृष्ण रुक्मिणी की मिलन रात्रि के पूर्व संध्या का और कृष्ण रुक्मिणी की मिलन सम्बन्धी आतुरता का कवि ने विशद वर्णन किया है।[6]

३८ ५। कृष्ण रुक्मिणी की रति क्रीड़ा का वर्णन मर्यादित हुआ है।[7] सुरतान्त वर्णन भी कवि ने किया है।[8] कवि ने आगे प्रभात वर्णन में लिखा है—

संयोगिणि चीर रई कैरव श्री,
घर हट ताल भमर गोघोष।
दिणयर ऊगि एतला दीधा
मानिया बंध वधिया मोख
वाणिजा वधू गो वाछ्र असइ विट
चोर चक्रव विप्र तीरथ वल।
सूर प्रगटि एतला समपिया,
मिलिया विरह विरहिया मेल॥[9]

---

१ – छन्द संख्या १३८।
२ – छन्द संख्या १३९–१४८।
३ – छन्द संख्या १४९–१५२।
४ – छन्द संख्या १५३–१५७।
५ – छन्द संख्या १५८–१६१।
६ – छन्द सं० १६२–१६५।
७ – छन्द संख्या १७३।
८ – छन्द सं० १७४–१८१।
९ – छन्द सं० १८५–१८६।

३६ ५। वेलि में षटऋतु वर्णन् भी कवि ने मनोयोग पूर्वक किया है। ग्रीष्म, वर्षा शरद, हेमन्त, शिशिर हम त और वस त का वर्णन् क्रमश किया गया है। वसन्त वर्णन् विस्तार से हुआ है।[1] आगे कवि ने प्रद्युम्न जन्म का वर्णन् किया है।[2] तदुपरान्त कवि ने वेलि का माहात्म्य वर्णन् किया है। [3] कवि ने श्रीमद्भागवत को वेलि का मूल स्रोत बताया है—

> बल्ली तसु बीज भागवत वायौ,
> महि थाणौ प्रिथुदास मुख।
> मूल ताळ जड अरथ मण्डह,
> सुथिर करणि चढि छाह सुख ॥
> पत्र अक्खर दळ द्वाळा जस परिमळ
> नव रस तन्तु विधि ग्रोहनिसि।
> मधुकर रसिक सु भगति मंजरी
> मुगति फूल फल भुगति मिसि ॥[4]

४० ५। अन्त में वेलि का रचनाकाल बताते हुए लिखा गया है कि वेलि का श्रवण करने वाले और कंठस्थ करने वाले मनुष्य श्री और भक्ति का फल प्राप्त करते हैं।[5]

(ख) वेलि का रचना काल—

४१ ५। वेलि के रचना काल के विषय में अनेक मत है। वेलि की प्राचीनतम प्रति वि० स० १६६६ में लिखित प्राप्त हुई है जिसका प्रशस्ति-लेख यह है— 'इति श्री कृष्ण वदे रुपमण वेलि सपूर्ण समाप्ता ॥ राठौड श्रीकिल्याणमल सुत प्रथिराज तत्त ॥ बधव सुरताणजी गागरोण गढ मध्ये ॥ स० १६६६ वष माह सुदी ४ दिन लिपत रामा॥ फूलखेडा मध्ये ॥ शुभ भवतु क्लियाण ॥[6]

४२ ५। उक्त प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह प्रति गागरोनगढ मे लिखित प्रति की प्रतिलिपि है। गागरोनगढ महाराज पृथ्वीराज को जागीर के रूप में मुगल सम्राट अकबर की ओर से मिला था और सभवत पृथ्वीराज की उपस्थिति में उनके भाई सुरताण की प्रेरणा से लिखित प्रति से ही उक्त प्रतिलिपि की गई है इसलिये विश्वसनीय है। इस प्रति में ३०१ पद्य ही हैं और रचना काल विषयक पद्य नहीं है। रचनाकाल सम्बन्धी पद्य पीछे से विभिन्न प्रतियों मे विभिन्न रूपो में जुड गये हैं। रचनाकाल सूचक पद्य सर्वप्रथम सारंग कृत सुबोधमंजरी नामक संस्कृत टीका की वि० स० १६८३ में लिखित प्रति में उपलब्ध होता है। उक्त टीका का रचनाकाल वि० स० १६७८ है।

१—छद स० २२६–२६८। २—छद स० २६६–२७६।
३—छद स० २७७–३०४। ४—छंद स० २६१–२६२।
५—स० ३०५।

४३ ५। वेलि का रचनाकाल 'वरसि अचल (७ या ८) गुण (३) अंग (६) ससि (१) संवति' (वि० सं० १६३७ या १६३८) अनेक प्रकाशित संस्करणों[1] और ह० लि० प्रतियों में सूचित किया गया है। यहाँ 'अचल' का अर्थ ७ और ८ दोनों ही किया जा सकता है। डा० तस्सीतोरी,[2] श्री सूर्यकरण पारीक,[3] मंजुलाल मजूमदार[4] डा० रामकुमार वर्मा[5] और डा० ओझा[6] आदि ने 'अचल' का अर्थ ७ मान कर वेलि का र० का० वि० सं० १६३७ लिखा है। इनके विपरीत [illegible][7] और [illegible][8] ने अचल का अर्थ ८ करते हुए वेलि का र० का० वि० सं० १६३८ माना है।

४४ ५। वेलि की कतिपय प्रतियों में रचनाकाल सूचक निम्नलिखित पद्य उपलब्ध होता है जिसमें स्पष्ट ही वि० सं० १६३८ सूचित किया गया है—

वसू (८) सिव नयन (३) रस (६) ससि (१) वच्छरि,
विजय-दसमी रवि दिन वरष उत।
क्रिसन रुक्मिणी वेलि कलप-तरु,
की कमधज कलियाण उत॥[9]

४५ ५। अनेक प्रतियों में वेलि का रचना काल वि० सं० १६३६ भी सूचित किया गया है—

१—प्रकाशित संस्करण—
- क–एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता सं० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी।
- ख–हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद सं० ठा० रामसिंहजी और पं० सूर्यकरणजी पारीक।
- ग–विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, सं० डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित।
- घ–श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी आगरा, सं० पं० श्री नरोत्तमदासजी स्वामी।

२—स्व सम्पादित वेलि, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, प्रस्तावना, पृ० ६।

३—स्व सम्पादित वेलि भूमिका, पृ० ६७—६६।

४—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, मध्यकाल पृ० ३७५।

५—हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० २५७।

६—बीकानेर राज्य का इतिहास भाग १ पृष्ठ १६१।

७—महिमा भक्ति जैन भण्डार' बीकानेर ह० प्र० सं० ३३। ४६०।

८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति, ग्रंथांक ३६४३।

९—क–वही ग्रंथांक १८३५ ३५५७। २, ३५४८, २०६६, २०७०, ४०७१ ४०७७, ४०७८, ४८१८ ८२५३ ६१४४ ६२५२, ११०६०।
- ख—आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भंडार लाल भवन, जयपुर की प्रति, क्रमांक २२२२।

सोलैसे सवत छत्रीसा वरखे, सोम त्रीज वैसाखे समधि ।
रुकमणि कृसन रहस रग रमता, कही वेलि पृथ्वीराज कमधि ॥[1]

४६ ५। प० नरोत्तमदासजी स्वामी के मतानुसार उक्त अंश क्षेपक है क्योंकि यह ग्रन्थ समाप्ति और प्रशस्ति लेख के बाद जोड़ा गया है ।[2]

४७ ५। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर शाखा के अंतर्गत सरस्वती भण्डार पुस्तकालय मे सुरक्षित वेलि की प्रतियों मे रचनाकाल वि० स० १६४४ लिखित है—

१ सोलह से सवत चमाले वरसे, सोम तीज वैसाख सुदि । (प्रति स० १७०१)

२ सोलह से सवत चमाले वरसे सोम तीज वसाख समधि । (प्रति स० १७२८)

३ सोलस से सवत चोमालीसे वरस, सोम तीज वसाख सुदि । (प्रति स० १७६५)

उक्त लेखों के आधार पर डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित [3] और डा० हीरालालजी माहेश्वरी[4] ने वेलि का रचनाकाल वि० स० १६४४ माना है । प० मोतीलालजी मेनारिया का यह अनुमान मात्र प्रतीत होता है कि वि० स० १६३७ वेलि का प्रारम्भ सवत् है और वि० स० १६४४ वेलि को पूर्ण करने का सवत् है ।[5]

४८ ५। वास्तव में गागरोनगढ वाली वि० स० १६६६ में लिखित उक्त प्राचीन तम प्रति मे रचनाकाल सम्बन्धी पद्य उपलब्ध नही होता इसलिए बिना किसी प्रमाण से समर्थित हुए वि० स० १६३६, १६३७ १६३८ और १६४४ मे से किसी एक सवत् के पक्ष में मत प्रकट करना उपयुक्त नही प्रतीत होता । इस विषय में अभी निश्चितरूपेण यही कहा जा सकता है कि वेलि की रचना १७ वी० शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है ।

(ग) रसव्यजना—

४६ ५। वेलि का अपर नाम "रुक्मिणी मगल" है—

१ मन सुद्धि जपन्ता रुकमिणि मगल, विधि सम्पत्ति थाई कुशल नित ।

२ मुख कहि कृसन रुकमिणी मगल, काइ र मन कृपण कृपणा ।[7]

१—क—बड़ा उपाश्रय बीकानेर क्रमाक ३५।५७७ ।
ख—अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर क्रमांक ७४०५ ।

२—वेलि की सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० ७७ ।

३—वेलि, सम्पादकीय भूमिका, पृ० ५१ ।

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६१ ।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२४ ।

६—छद स० २८६ । ७—छन्द सख्या २८६ ।

आधार श्रीमद्भागवत[1] को मानते हुए कवि ने कृष्ण को मंगलरूप,[2] कमलापति,[3] श्रीकंत,[4] श्रीपति,[5] जगतपति[6] अंतर्यामी[7] हरि[8] पुरुषोत्तम[9] त्रिभुवन पति[10] आदि तथा रुक्मिणी को रामा अवतार[11] और श्री आदि लिखा है। रुक्मिणी ने अपने पत्र में राम सीता, विष्णु लक्ष्मी और आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध के रूप में अपना और कृष्ण का सम्बन्ध बताया है।[12] द्वारिका का वर्णन अमरावती के रूप में है। वेलि को मंगल-काव्य[13] लिखते हुए इसकी पाठ विधि का भी वर्णन है।[14] वेलि का माहात्म्य एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में वर्णित है।[15]

५२ ५। वेलि में वीर रस का निरूपण भी यथोचित रूप में हुआ है। प्राचीन काल में विवाह शक्ति प्रदर्शन के अवसर होते थे और वीर पुरुष ही सुयोग्य सुन्दरी से विवाह करने का अधिकारी होता था। कवि ने सफलता पूर्वक युद्ध के हेतुओं की सृष्टि की है और युद्ध का सांगोपांग वर्णन युद्ध-कृषि रूपक के अन्तर्गत किया है। युद्ध में होने वाली मारकाट, अंग भंग और रक्त प्रवाह के दृश्य वीरों के लिए आनन्ददायक होते हैं। युद्ध में प्राप्त होने वाली मृत्यु तो महान मंगलकारिणी मानी गई है। इसलिए श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा उपस्थित रस विरोध[16] की स्थिति नहीं मानी जा सकती। वेलि में युद्धगत् ललकार[17] शस्त्र संचालन[18] और सैन्य संगठन[19] आदि का चित्रण वीर रस के सर्वथा अनुरूप हुआ है। वेलि के अनेक स्थलों में हास्य की सृष्टि भी हुई है।[20]

(घ) भाषा शैली—

५३ ५। वेलिकार का भाषा और शब्दों पर पूर्ण अधिकार है जिसके बल पर उसने काव्य के भावपक्ष और कला पक्ष में सफल संतुलन रखते हुए अपरिमित काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि की है। कवि ने संस्कृत के तत्सम तद्भव शब्द रूपों का राजस्थानी भाषा की

---

१ — पद्य सं० २९१ २९२।
२ — पद्य सं० १।
३ — पद्य सं० ३।
४ — पद्य सं० ५।
५ — पद्य सं० ६।
६ — पद्य सं० ५४।
७ — पद्य सं० ५४, ६१।
८ — पद्य सं० ६१।
९ — पद्य सं० ६६।
१० — पद्य सं० ६८।
११ — पद्य सं० १०।
१२ — पद्य सं० ५६ ६६।
१३ — पद्य सं० २८६।
१४ — पद्य सं० २८०।
१५ — पद्य सं० २७८।
१६ — वेलि हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, संपादकीय भूमिका, पृ० ७६–८७।
१७ — पद्य सं० ११२ ११४।
१८ — पद्य सं० ११८ ११९।
१९ — पद्य सं० ११४ ११७।
२० — पद्य सं० ११३–१३४।

मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसगो मे लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।[1] कवि ने रुक्म को सोनानामी,[2] मकर राशि के लिए काम वाहन[3] आदि लिख कर "कूट शैली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसग के अनुसार शृगार वर्णन मे कोमल कांत पदावली और वीरता वर्णन में ओजमयी शब्दावली का प्रयोग किया है। सिलह, हवाई, जोर, बरकाब, रुख जैसे अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इनसे भाषा की मर्यादा कही भग नही हुई है।

(ङ) वस्तु वर्णन–

५४ ः ५। कवि की वस्तु वर्णन में विशेष रुचि है। हरिमहिमा–वर्णन[4], नगर–वर्णन के अन्तर्गत कुन्दनपुर वर्णन[5] और द्वारिका वर्णन[6], नायिका का नख शिख और सौन्दर्य वर्णन[7], युद्ध वर्णन[8], प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत सन्ध्या[9], प्रभात[10], ग्रीष्म[11], वर्षा[12], शरद[13], शिशिर[14], हेमन्त[15] और वसन्त[16] में कवि ने अपने विशद् सासारिक अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। वेलियत प्रसगो से कवि के ज्योतिष और शकुन[17], वैद्यक[18], सगीत–नृत्य और नाट्य शास्त्र[19], योगशास्त्र[20], पुराण[21] काव्य[22], राजनीति[23], कर्मकाण्ड[24] भाषा[25], कृषि[26], बुनाई[27] लुहारी[28], सुनारी[29], सिकलीगरी[30], सामाजिक रीतियां[31], आभूषण[32], व्यापार[33], रग[34],

---

१ – पद्य स० ३, ४, ४५, १२६, १३० १६८।
२ – पद्य स० १३४।
३ – पद्य स० २२२।
४ – पद्य स० १–७।
५ – पद्य स० ३८–४०।
६ – पद्य स० ४८–५१।
७ – पद्य स० १२–२७।
८ – पद्य स० ११३–११३।
९ – पद्य स० १६२–१६४।
१० – पद्य स० १८२–१८६।
११ – पद्य स० १८७–१९४।
१२ – पद्य स० १२,१६४–२०४।
१३ – पद्य सं० २०६–२२५।
१४ – पद्य सं० २२६–२२८।
१५ – पद्य स० २२८।
१६ – पद्य सं २२९–२६८।
१७ – छन्द ७०, ६३, ६६ १८८ १९३, २१२ २२२ २२६ २८६।
१८ – छन्द २८४, २८५।
१९ – छन्द २४६ २४८।
२० – छन्द १५, १८०, १८४, २०८।
२१ – छन्द ८४, ६८, १०६, २१६, २६६।
२२ – छन्द २७३, २७४, २७५ २७६।
२३ – छन्द २४६ २५५।
२४ – छन्द २८०।
२५ – छन्द २६७।
२६ – छन्द १२३, १२८।
२७ – छन्द १७१।
२८ – छन्द १३२।
२९ – छन्द १७५।
३० – छन्द ८६।
३१ – पद्य १४०, १४२, १४३, १५८, २०९, २१२ २१३ २१४, २२७, २२६, २३८।
३२ – पद्य १६३, १६४, २०२ २१० २२६।
३३ – छन्द ८२ ६६।
३४ – छन्द १६५, २००,२०३, २५७।

आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। काव्यगत वर्णन कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं और इनमें काव्यगत सौन्दर्य की सफल सृष्टि हुई है।

(च) अलंकार सौन्दर्य—

५५ ५। वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में अलंकृत है। कवि के अलंकार निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और अलंकारों का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव-पक्ष को कहीं हानि नहीं हुई है। अलंकारों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास– १ तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हंस-सावक सस-हर हीर ? [1]

२ बहु विलम्बी वीछड़तइ बाला, बाल सघाती बालपण । [2]

३ कामणि कुच कठिण कपोल करी किरी,
वेस नवी विधि वाणी वखाणी। [3]

यमक– १ सिखर-सिखर मइ मन्दिर सिर। [4]

२ हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि। [5]

३ कलस सीस करि करि कमल। [6]

४ आदर करे जु आदरी। [7]

५ गुण-मोती मखतूल-गुण। [8]

श्लेष– १ कंत-राजोगणि किंमुख कहिया, विरहणि कहे पलास वण [9]।

संयोगिनी– (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—
(२) किं मुख ! कैसा सुख है ?

वियोगिनी– (१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली

(२) पलाश मास को खाने वाला राक्षस है।

२ सूरिज ही विख—आसरित[1]

---

१ – छन्द २७।
२ – छन्द १७।
३ – छन्द २४।
४ – छन्द सं० २०४।
५ – छन्द सं० २६।
६ – छन्द सं० ४६।
७ – छन्द सं० ३।
८ – छन्द सं० ८१।
९ – छन्द सं० २५६।
१० – छन्द सं० १८८।

मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसगो म लोकोक्तिया और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।[१] कवि ने रुक्म को सोनानामी,[२] मकर राशि के लिए काम वाहन[३] आदि लिख कर "कूट शैली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसग के अनुसार शृगार वर्णन म कोमल कांत पदावली और वीरता वर्णन मे ओजमयी श ावली का प्रयोग किया है। सिलह, हवाई जोर, वरकाव, इव गते अरबी फारसी के श ा का प्रयोग भी किया गया है कि तु इनसे भाषा की मर्यादा कही भग नही हुई है।

(ङ) वस्तु वर्णन–

५४ । ५ । कवि की वस्तु वर्णन में विशेष रुचि है। हरिमहिमा–वणन[४], नगर–वणन के अन्तर्गत कुन्दनपुर वणन[५] और द्वारिका वर्णन[६] नायिका का नख शिख और सौन्दर्य वर्णन[७], युद्ध वर्णन[८], प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत स ध्या[९] प्रभात[१०] ग्रीष्म[११], वर्षा[१२] शरद[१३], शिशिर[१४], हेम त[१५] और वस त[१६] मे कवि ने अपने विशद सासारिक अनुभव शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। वैसिगत प्रसगो से कवि क ज्योतिष और शकुन[१७], वैद्यक[१८], सगीत-नृत्य और नाटय शास्त्र[१९], योगशास्त्र[२०], पुराण[२१] काप[२२], राजनीति[२३], कर्मकाण्ड[२४], माया[२५], कृषि[२६], बुनाई[२७], लुहारी[२८], सुनारी[२९], सिक्लीगरी[३०] सामाजिक रीतिया[३१] आभूषण[३२], व्यापार[३३], रत्न[३४],

---

१ – पद्य स० ३, ४, ४५, १२६ १३० १६८।
२ – पद्य स० १३४।
३ – पद्य स० २२२।
४ – पद्य स० १–७।
५ – पद्य स० ३८–४०।
६ – पद्य स० ४८–५१।
७ – पद्य स० १२–२७।
८ – पद्य स० ११३–११३।
९ – पद्य स० १९२–१६४।
१० – पद्य स० १८२–१८६।
११ – पद्य स० १८७–१९४।
१२ – पद्य स० १२,१६४–२०१
१३ – पद्य स० २०६–२२५।
१४ – पद्य स० २२६–२२८।
१५ – पद्य स० २२८।
१६ – पद्य स० २२९–२६८।
१७ – छन्द ७०, ८१, ८६ १८८ १९३ २१२ २२२ २२६, २८६।
१८ – छन्द २८४, २८५।
१९ – छन्द २४६, २४८।
२० – छन्द १५, १८०, १८४, २०८।
२१ – छन्द ८४ ८८ १०६ २१६, २६६।
२२ – छन्द २७३, २७४, २७५, २७६।
२३ – छन्द २४६ २५५।
२४ – छन्द २१७।
२५ – छन्द २८०।
२७ – छन्द १७१।
२६ – छन्द १२३, १२४।
२९ – छन्द १७५।
२८ – छन्द १३२।
३० – छन्द ८६।
३१ – पद्य १४०, १४२ १४३ १४८ २०६, २१२ २१३ २१४, २२७ २२९, २३८।
३२ – पद्य १६३ १६४ २०६, २१० २२६।
३३ – छन्द ८२ ८६।
३४ – छन्द १६५ २००, २०३, २५७।

आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। काव्यगत वर्णन कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं और इनमे काव्यगत सौंदय की सफल सृष्टि हुई है।

(च) अलकार सौंदय—

५५ ५। वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में अलंकृत है। कवि के अलकार निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और अलकारों का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव पक्ष को कहीं हानि नही हुई है। अलकारो के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास– १ तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हस-सावक ससहर हीर ?[1]

२ बहु बिलखी बीछडतइ बाला, बाल सघातो बालपण।[2]

३ कामणि कुच कठिण कपोल करी किरि,
वेस नवी विधि वाणी वखाणी।[3]

रूपक– १ सिखर-सिखर मइ मन्दिर सिर।[4]

२ हरि-गुण मणि ऊपनो जिका हरि।[5]

३ कलस सीस करि करि कमल।[6]

४ आदर करे जु आदरी।[7]

५ गुण-मोती मखतूल-गुण।[8]

श्लेष– १ कत-साजोगणि किमुख कहिया, विरहणि कहे पलास वण[9]।

सयोगिनी– (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—
(२) कि सुख। कैसा सुख है?

वियोगिनी– (१) ढाक को देखकर तन मे क्षीण होकर बोली

(२) पलाश मास को खाने वाला राक्षस है।

२ मूरिज ही विख—आसरित[10]

---

१ – छन्द २७।
२ – छन्द १७।
३ – छन्द २४।
४ – छन्द स० २०४।
५ – छन्द स० २१।
६ – छन्द सं० ४१।
७ – छन्द स० ३।
८ – छन्द सं० ८१।
९ – छन्द सं० २३६।
१० – छन्द सं० १८८।

[सूरज ने (१) वृष राशि का आश्रय ले लिया है। मानों गर्मी से डर कर (२) वृक्ष का आश्रय ले लिया है।]

"वयण सगाई" शब्दालंकार का प्रयोग भी सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं —

साधारण– १ कस छूटी छुद्र घटिका। [1]

२ चल-पत्र-पत्र थिउ दुज देखे चित। [2]

३ जाणे सदनि-सदनि सजोयी। [3]

असाधारण–१ तिणी आप ही करायउ आवर। [4]

२ लाजवती अंगि अेह लाज विधि। [5]

३ हेक वडउ हित हुवइ पुरोहित। [6]

युद्ध, कृषि वसन्त यौवन लोहार कृष्ण-जुलाहा आदि वर्णन् रूपक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

५६ ५। पृथ्वीराज के अलंकार निरूपण के विषय में उल्लेखनीय है कि वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत् दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा—

सग सखी सील कुल वेस समाणी पेखि कली पदिमणी परि।

राजति राजकुअरि राय अंगण उडियण बीरज अम्बहरि ॥ [7]

यहां पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने काव्य की इतिश्री नहीं करदी है, वरन् रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आसपास के समूचे वातावरण का नम्र चित्र सामने ला रखा है। [8]

---

१ – छंद सं० १७८। २ – छंद सं० ७१।
३ – छंद सं० १०१। ४ – छंद सं० १६८।
५ – छंद सं० १८। ६ – छंद सं० ३५।
७ – छंद सं० १०।
८ – राजस्थानी भाषा और साहित्य द्वितीय संस्करण, पृ० १६६ १६७।

(छ) छन्द प्रयोग—

५७ ५। वेलि के आलोचकों ने वेलि के छन्द का 'वेलियो गीत' के आधार पर परीक्षा करते हुए पृथ्वीराज द्वारा नियम भंग होना लिखा है अथवा इसके विषय में मौन धारण किया है। स्वर्गीय सूर्यकरण जी पारीक ने स्व सम्पादित वेलि की भूमिका में लिखा है–

वेलि के सब छन्दों की सूक्ष्म छानबीन करने पर ज्ञात होगा कि कवि ने इस शास्त्ररीति के जटिल बन्धन को कई स्थानों पर भंग किया है।"[1] डा० आनन्द प्रकाश जी दीक्षित ने "रघुनाथ रूपक गीतारो" के अनुसार छोटा साणोर का लक्षण बताते हुए लिखा है— 'इसके प्रयोग में कवि ने पूरी स्वतन्त्रता बरती है। विषम चरण का नियम पालन करते हुए भी सम चरणों की १३–१४ तथा १५ मात्राओं का भी रखा है। किन्तु दूसरी और चौथी पंक्तियों की सम मात्रिकता कभी नष्ट नहीं होने दी है। भले ही १५ मात्राओं तथा अन्त में गुरु लघु के स्थान पर लघु लघु के साथ १३ मात्राएं तथा लघु गुरु के साथ १४ मात्राओं का प्रयोग करके स्वतन्त्रता प्रदर्शित की है।[2] श्री मोतीलाल जी मेनारिया ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसको वेलियो गीत में रचित बताया है।[3] श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने लिखा है— वेलि में गीत का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु गीत के आधार पर बने हुए छन्द का प्रयोग हुआ है।'[4] इस प्रकार श्री स्वामी जी ने वेलि में प्रयुक्त छन्द का नाम नहीं बताया है। डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने भी इसी प्रकार लिखा है—"इस वेलि में चारण साहित्य के 'छोटो साणोर' गीत के एक भेद 'वेलियो' के आधार पर बने हुए छन्दों का प्रयोग हुआ है।[5] श्री सीताराम जी लालस ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसमें प्रयुक्त छन्द के विषय में मौन धारण कर लिया है।[6] श्री मूलतिरामजी साकारिया ने लिखा है—"छोटा साणोर छन्द के मुख्य चार भेदों में से वेलियो और खुड़द साणोर दो भेद हैं। वेलि में दोनों छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है अतएव यह कहना गलत होगा कि वेलि केवल वेलियो छन्द में ही लिखी गई है। यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छन्द को हम छोटा साणोर ही माने।"[7] इस प्रकार श्री साकरियाजी का मत अस्पष्ट है।

---

१ – स्व सम्पादित वेलि हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद भूमिका पृ० १२०।

२ – स्व सम्पादित वेलि विश्व विद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका पृ० ६७-६८।

३ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२४।

४ – स्व सम्पादित वेलि, प्रस्तावना, पृ० ७१।

५ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६६।

६ – राजस्थानी हिन्दी शब्दकोष प्रस्तावना पृ० १३८ १४१।

७ – राजस्थान भारती बीकानेर भाग ७, अंक १, पृ० १२३ १२४।

५८ ५। चारण कवियों में 'गीत' नामक छन्द का अधिक प्रचलन है।[1] रघुवर जस प्रकास' नामक राजस्थानी के शास्त्रीय ग्रन्थ में गीत के ६४ प्रकारों का लक्षण और उदाहरण सहित वर्णन है[2] जिनमें एक प्रकार 'छोटा साणोर' भी है। छोटा साणोर नामक गीत चारण कवियों को बहुत प्रिय रहा है। छोटा साणोर के चार भेद माने गये हैं—

चार भेद तिण रा चवे, कवियण वड कोविद ।
समझ वेलियो सोहणो खुद्द, जांगडो, खूब ॥[1]

५९ ५। कवि किसना जी आढ़ा ने छोटा साणोर के लक्षण बताते हुए उसके भेद इस प्रकार कहे हैं—

दूहा– सहजे गुरु माहरा कठे, पण कठेक लघुवत ।
सुज छोटा साणोर सो, कवि मत ग्रन्थ कहत ॥
भेद च्यार जिणरा भणीं चाद वेलियो १ प्रसन्न ।
फवी सोहणो २ खुद्द ३ कहूं चल जांगडो ४ विसतन्न ॥[3]

किसना जी आढ़ा ने वेलियो गीत का एक भेद "मिस्र वेलियो" भी बताया है—

अथ गीत मिस्र वेलियो लक्षण

दूहा– समिल वेलियो सोहणा, खफ फिर खुद्द समेळ ।
मिस्र वेलियो कवि मुणे, मल जांगडो न मेळ ॥[4]

अरथ–वेलियो १। सोहणो २। खुद्द ३। तीन ही गीत भेला बणै जिण गीतरो नाम मिस्र वेलियो कहीजै। यां तीनां जांगडा रो दूहो बणै नहीं ने बणे तो जात विरोध दोष कहीज। यूं सारी समझ लेणी।

अथ गीत मिस्र वेलियो उदाहरण।

गीत– ध्रू इनो सरवर फील उबारे, गुण तै वेद उधारे गाय।
धना नामदे सदना उधारे, नेक जना तारे रघुनाथ ॥
गणका अजामेल सवरीगण, दुख अध ओघ मिटाय दिया ।
किता अनाथ सुनाथ कृपाकर, कोसलराज कुंवार किया ॥

---

१ – किसनाजी आढ़ा विरचित, सं० सीताराम जी लालस, प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर, पृ० १९६ ३२४।

२ – कवि मंछाराम कृत रघुनाथ रूपक गीतांरो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

३ – रघुवरजस प्रकास, पृ० १९८, छंद सं० ६४, ६५।

४ – वही, छन्द सं० ६६, पृ० १९८।

सीता हरण भभीखण रिवसुत, लख जटाय कोसिक मिथलेस।
हेर हेर लज रखी हुलासा, धणियप कर दासा अवधेस॥
रख जन अभै त्रास जमहरण, सुज ऊवरणा जगत सहै।
सू पी सरम चरण तो सरणा करणनिध किव 'किसन' कहै। [1]

६० ५। किसना आढा ने मिस्र वेलिया गीत म वेलिया, सोहणा और खुडद नामक साणोर के तीन उपभेदों का मिश्रण होना बताया है और जागडो के लिए लिखा है—"मल जागडो न भेळ।" इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी वेलि म जागडा साणोर का प्रयोग नही करते हुए वेलियो, सोहणा और खुडद साणोर के मिश्रण से बने 'मिस्र वेलियो' गीत का प्रयोग किया है। किसना जी आढा ने वेलियो, सोहणा और खुडद के लक्षण इस प्रकार दिये हैं —

दूहा—मुण धुर तुक अठार मत, बीजी पनरह बेख।
तीजी सोलह चतुरथी, पनरह मता पेख॥
सोलह पनरह अन दुहा गुरु लघु अंत बखाण।
कहै ऐम सुकवी सकल जिको वेलियो जाण॥ [2]

अरथ—जिण गीत र पहला तुक मात्रा १८ होय, दूजी तुक मात्रा १५ होय, तीजी तुक मात्रा १६ होय चौथी तुक मात्रा १५ होय। दूजा भारा दूहा मात्रा १६।१५।१६।१५। तुक के अंत पाछ गुरु अर लघु आवै जिण गीत रो नाम वेलियो साणोर कहीजै।

अथ चौथा सूहणा साणोर को लक्षण

दूहो—धुर तुक मह अठार मत, चवंद सोल चवदेण।
सोल चवद लघु गुरु मोहर, जाण सोहणो जेण॥ [3]

अरथ—धुर कहता पहली तुक मात्रा १८, अठारे होवै। दूजी तुक मात्रा १४, चवद, होय। तीजी तुक मात्रा १६ सोल, होवै। चौथी तुक मात्रा १४, चवद होवै। पछै दूजा दूहा मात्रा १६, सोले, १४, चवदे, ई क्रम होवै जी क अंत लघु अंत गुरु तुका होवै जा गीतको नाम सोहणो साणोर कहे छै।

अथ सातमो गीत खुडद छोटो सांणोर लक्षण।

दूहो—धुर मता अठार धर, त्रदस साल त्रदसेण।
दु लघु अंत माणोर लघु, जप खुडद किव जेण

---

१ – रघुवरजस प्रकास, छन्द सं० ६७, पृ० सं० २००।
२ – वही, छन्द सं० ६८ ६९, पृ० २००।
३ – वही, छन्द स० ७१, पृ० २०१।

५८ ५। चारण कवियों ने "गीत" नामक छंद को प्रसिद्ध बनाया है।" रघुवरजस प्रकास" नामक राजस्थानी भाषा के छंदशास्त्रीय ग्रंथ में गीत के ६४ प्रकारों का लक्षण और उदाहरण सहित वर्णन है[1] जिनमें एक 'प्रकार छोटा साणोर' भी है। छोटा साणोर नामक गीत चारण कवियों को बहुत प्रिय रहा है। छोटा साणोर के चार भेद माने गये हैं—

चार भेद तिण रा चवे कवियण वड ओपूब।
समझ वेलियो, सोहणो खुडद, जांगड़ा, खूब ॥[1]

५९ ५। कवि किसना जी आढ़ा ने छोटा साणोर के लक्षण बताते हुए उसके भेद इस प्रकार कहे हैं—

दूहा- कहजे गुरु माहरा कठे, वण कठैक लघुवंत।
सुज छोटा साणोर सो, कवि मत ग्रंथ कहंत ॥
भेद च्यार जिणरा भणो, आद वेलियो १ अक्ख।
कवी सोहणो २ खुडद ३ कह, वल जांगड़ो ४ विसक्ख ॥[3]

किसना जी आढ़ा ने वेलिया गीत का एक भेद "मिस्र वेलियो" भी बताया है—

अथ गीत मिस्र वेलियो लक्षण

दूहा- समिल वेलियो सोहणा, सझ फिर खुडद समेळ।
मिस्र वेलियो कवि मुणे, भल जांगड़ो न मेळ ॥[4]

अरथ-वेलियो १। सोहणो २। खुडद ३। तीन ही गीत भेला बणे जिण गीतरो नाम मिस्र वेलियो कहीजे। यां भेलो जांगड़ा रा दूहो बणे नहीं ने बणे तो जात विरोध दोष कहीज। यूं सारी समझ लेणो।

अथ गीत मिस्र वेलियो उदाहरण।

गीत- बूडतो सरवर फील उबारे, गुण ते वेद उचारे गाय।
धना नामदे सदना उधारे, नेक जना तारे रघुनाथ ॥
गणका अजामेल सबरीगण, दुख अघ ओघ मिटाय दिया।
किता अनाथ सुनाथ कृपाकर, कोसलराज कु वार किया ॥

---

१ – किसनाजी आढ़ा विरचित, सं० सीताराम जी लालस, प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० १६६ ३२४।

२ – कवि मछाराम कृत रघुनाथ रूपक गीतांरो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

३ – रघुवरजस प्रकास, पृ० १६८, छंद सं० ६४, ६५।

४ – वही छन्द सं० ६६, पृ० १६८।

सीता हरण भभीखण रिवसुत, लख जटाय कासिक मिथलेस।
हेर हेर लज रखी हुलासा, धणियप कर दासा अवधेस ॥
रख जन अमे त्रास जमहरण सुज ऊबरणा जगत सहै।
सू पी सरम चरण तो सरणा करणनिध किव 'किसन' कहै। [1]

६० ५। किसना जी आढा ने मिश्र वेलियो गीत मे वेलियो, सोहणा और खुड़ नामक साणोर के तीन उपभेदा का मिश्रण होना बताया है और जागडो के लिए लिखा है— "भल जागडो न भेळ'। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी वेलि म जागडा साणोर का प्रयोग नहीं करते हुए वेलियो, साहणा और खुड साणोर के मिश्रण म बने 'मिश्र वेलियो' गीत का प्रयाग किया है। किसना जी आढा ने वेलियो, साहणा और खुड के लक्षण इस प्रकार दिये है —

दूहा—सुण धुर तुक अठार मत, बीजी पनरह बेख।
तीजी सोलह चतुरथी, पनरह मता पेख ॥
सोलह पनरह अन दुहा गुरु लघु अ त अखाण।
कहै एम सुकवी सकल जिको वेलियो जाण ॥[2]

अरथ—जिण गीत र पेहली तुक मात्रा १८ होय, दूजी तुक मात्रा १५ होय, तीजी तुक मात्रा १६ होय चौथी तुक मात्रा १५ होय। दूजा सारा दूहा मात्रा १६।१५।१६।१५। तुक के अत मा गुरु अ त लघु आव जिण गीत रो नाम वेलियो साणोर कहीजे।

अथ चौथा सूहणा साणोर को लक्षण

दूहो—धुर तुक मह अठार मत, चवद सोल चवदेण।
सोल चवद लघु गुरु मोहर, जाण सोहणो जेण ॥[3]

अरथ—धुर कहता पहली तुक मात्रा १८, अठारे होवे। दूजी तुक मात्रा १४ चवद, होवे। तीजी तुक मात्रा १६ सोल, होवे। चौथी तुक मात्रा १४, चवद होवे। पछै दूजा दूहा मात्रा १६, साल १४, चवदे, ई क्रम होवै जी क आ लघु अ त गुरु तुका होवे जी गीतको नाम सोहणो साणोर कहे छै।

अथ सातमो गीत खुड्द छोटो साणोर लक्षण।

दूहो—धुर मता अठार धर, त्रदस साल त्रदसेण।
दु लघु अ त साणोर लघु जप खुड्द कित्र जेण

---

१ — रघुवर जस प्रकास, छन्द सं० ६७, पृ० सं० २००।
२ — वही, छद सं० ६८ ६९, पृ० २००।
३ — वही, छद स० ७१, पृ० २०१।
४ — वही छद सं० ७७ पृ० २०४।

अरथ–ओळै मां गुरु मात्रा पहारे होय । दूजी गुरु मात्रा तेरे होय । तीजी गुरु मात्रा सोल होय । चौथो गुरु मात्रा तेरे होय । पहलो दूहो पना सोल मात्रा । पछै तेरे मात्रा, ऐम ओळै, पर तरै ई क्रमगू होवे । गुरुांत ओप लगू होवे आ गीत का नाम छोटा साणोर इसमान बताय ।

६१ ५ । 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' मे "मिश्र वेलियो" नामक गीत के छ तगत वर्णित माहणी और सुद्ध साणोर नामक उपभेदों का विवरण इस प्रकार हुआ है—

१ वेलियो – जाइ जळद पटळ दळ सांवळ ऊजळ, [१८]
पुरइ निसाण साद पण पार । [१५]
प्रोळि प्रोळि तोरण परठीजइ, [१६]
मइइ किरी तइव गिरी मार [१५]॥ १

२ सोहणो – काळी करि वाठळि ऊजळि कारण, [१८]
धारे स्रावण धरहरिया । [१४]
गळि चालिया दसा दिसि जळग्रम, [१]
थमिन, विरहणि नइण थिया [१४] ॥ २

३ सुद्ध साणोर – जिणि सत सहस फण फणि फणि बि बि जिह । [१८]
जीह जीह नव नवउ जस । [११]
तिणि ही पार न पायउ त्रीकम, [१६]
वयण डेडरा किसउ वस ॥३ [१३]

६२ ५ । महाराज पृथ्वीराज जैसे काव्य मर्मज्ञ और शास्त्र रीति का सम्पूर्ण रूप में पालन करने वाले कवि अपनी 'वेलि' जैसी कृति में छन्द शास्त्र सम्बन्धी नियम का भंग कर स्वतंत्रता नहीं रख सकते थे । वेलि की प्राचीनतम प्रतियों के आधार पर प्रामाणिक शुद्ध पाठ प्रकाशित होने पर ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज ने "वेलि" में "मिस्र वलियो गीत" नामक छन्द का प्रयोग किया है जिसकी ओर अभी तक हमारे आलोचकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है । गीत" सम्बन्धी शास्त्रीय नियम के अनुसार गीत में न्यूनतम तीन "द्वाला' का प्रयोग होना चाहिये ४ और अधिकतम द्वालों की कोई सीमा नहीं है । 'वलि" के छन्द प्रयोग के विषय में उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य ३०५ द्वालों के एक ही छन्द "मिस्र वेलियो' में पूर्ण हुआ है ।

---

१ – पद्य स० ४० ।
२ – पद्य स० १६५ ।
३ – पद्य स० ५ ।
४ – श्री नरोत्तमदास जी स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि, प्रस्तावना, पृ० ७० ।

(ज) वेलि का काव्य रूप—

६३ ५। महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य दण्डी ने लिखा है कि अनेक सर्गों में निबद्ध काव्य को महाकाव्य कहा जाता है।[1] हेमचन्द्राचार्य ने इस विषय में लिखा है— महाकाव्य संस्कृत अपभ्रंश और ग्राम्य भाषाओं में होते हैं, यह सर्ग, आश्वास, संधि और अवस्कन्धक बद्ध होता है, इनमें सर्गों के अन्त में भिन्न वृत्त होते हैं और यह शब्दार्थ वैचित्र्य से युक्त होता है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य की विशेषताएं इस प्रकार बताई हैं—"जिसमें सर्गों का निबन्धन हो उसको महाकाव्य कहते हैं। इसमें नायक देवता अथवा सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुणों का समावेश हो। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। महाकाव्य में शृंगार, वीर अथवा शान्त रसों में से एक अंगीरस होता है और अन्य रसों का गौणरूप से समावेश होता है। महाकाव्य में नाटक की सन्धियां रखी जाती हैं। महाकाव्य का फल चतुर्वर्ग— धर्म अर्थ, काम और मोक्ष में से कोई एक होना चाहिए। महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार और वर्ण्य वस्तु का निर्देश होना चाहिए। इसमें कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन भी होता है। महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े कम से कम आठ सर्ग होते हैं। सर्ग में एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होना चाहिए। कहीं कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं। सर्गान्त में आगामी कथा का सूचन होना चाहिये। महाकाव्य में सन्ध्या सूर्य चन्द्र रात्रि प्रदोष, अन्धकार दिन प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, षट्ऋतुवर्णन समुद्र मिलन, वियोग मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह मन्त्र पुत्र अभ्युदय आदि का यथा तक सम्भव हो सांगोपांग वर्णन होना चाहिये। महाकाव्य का नामकरण कवि, चरित्र अथवा चरित्रनायक के आधार पर होना चाहिये। कहीं महाकाव्य का नाम इसके अतिरिक्त भी होता है। सर्ग का नामकरण सर्गगत कथा पर होता है। काव्य में सर्गों का नाम आश्वास भी होता है। प्राकृत काव्यों में सर्गों का नाम आश्वास होता है जिसमें स्कन्धक छन्द रहते हैं। अपभ्रंश काव्यों में सर्गों का नाम कुडवक होता है और छन्द भी अपभ्रंश के योग्य अनेक प्रकार के होते हैं।[3]

१ — सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते, १ १४।

२ — काव्यानुशासन, अध्याय ६।

३ — साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक सं० ३१५ ३२६।

६४ ५। आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है "खण्ड काव्य में एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।"[1]

६५ ५। पृथ्वीराज कृत वेलि में महाकाव्यगत सभी निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

१ नायक श्रीकृष्ण नायकोचित गुणों से सम्पन्न होते हुए पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं।

२ वेलि में शृंगार का विस्तृत निरूपण होते हुए भी भक्ति का प्राधान्य है और अन्य रसों का गौण रूप में समावेश हुआ है।

३ काव्य की शैली पूर्ण रूपेण अलंकृत है।

४ काव्य का नामकरण सम्बन्धित कथावस्तु के आधार पर हुआ है।

५ "मिस्र वेलियो गीत" नामक छन्द में रचा गया है।

६ वेलि के प्रारम्भ में मंगलाचरण, आशीर्वचन और वस्तु निर्देश आदि हैं।

७ वेलि की कथा वस्तु लोक प्रसिद्ध और सज्जनाश्रित है।

८ वेलि में मन्त्रणा, सन्देश, सेना युद्ध, यात्रा नगर, प्रात, सन्ध्या, विवाह आदि के वर्णन हैं। वेलि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति में सहायक मानी गई है।

६६ ५। वेलि में महाकाव्यगत उक्त प्रकार के लक्षण होते हुए भी महाकाव्य जैसा कथा विस्तार नहीं है और यह सर्गबद्ध भी नहीं है। अतएव आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्देशित लक्षणों के अनुसार वेलि को खण्डकाव्य कहना ही उचित होगा।

(झ) पृथ्वीराज रचित वेलि और करणसिंह सांखला रचित वेलि

६७ ५। पं० नरोत्तमदासजी स्वामी ने पृथ्वीराज रचित वेलि को डिंगल में लिखित

---

१ — साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, श्लोक ३२९।

बेलियों में प्राचीनतम माना है।[1] किन्तु पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व सादू रामा रचित वेलि राणा उग्रसिंह री[2] की रचना वि० सं० १६२८ अथवा इससे पूर्व मानी गई है।[3] पृथ्वीराज और कर्मसिंह की वेलियो की तुलना करते हुए डा० हीरालाल माहेश्वरी ने लिखा है— "महत्वपूर्ण बात यह है कि करमसी की वेलि का राठौड़ पृथ्वीराज ने अनुकरण किया है, उन्होंने सीधी प्रेरणा वही से पाई है। अपनी वेलि को लिखते समय, पृथ्वीराज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में यह वेलि अवश्य रही है।[4] पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उक्त दोनो ही वेलिया के रचनाकाल यथार्थ अप्राप्य है। प्रतिलिपि काल अवश्य ही कर्मसिंह कृत वेलि का वि० सं० १६३४ मिलता है[5] और यह प्रतिलिपि काल पृथ्वीराज कृत वेलि के उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिलिपि काल वि० सं० १६६६ से[6] प्राचीन है। प्रतिलिपि काल के आधार पर ही किसी कृति का रचनाकाल निर्धारित नही किया जा सकता और न इसी आधार पर किसी कृति को किसी अन्य कृति से पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में डा० हीरालाल माहेश्वरी द्वारा कर्मसिंह कृत वेलि का अनुकरण पृथ्वीराज कृत वेलि में निर्धारित करना[7] समीचीन नही ज्ञात होता। कर्मसिंह कृत वेलि का अंतिम २२ वा "द्वाला" पृथ्वीराज कृत वेलि के २०४ संख्यक "द्वाले" के रूप मे उपलब्ध होता है। यह द्वाला लेखक अथवा लिपिकर्ता की भूल प्रतीत होता है। उक्त दोनों ही वेलिया काव्य कला, भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

ज. क्रिसन रुक्मिणी री वेलि की टीकाएं

६८ ५। महाराजा पृथ्वीराज कृत "क्रिसन रुक्मिणी री वेलि" की लोक प्रियता और प्रसिद्धि का प्रमाण इस पर लिखी गई विभिन्न टीकाओं से मिलता है। वेलि का जैन धर्म से कोई सम्बन्ध नही है तथापि श्री अगरचन्द नाहटा के मतानुसार जैन कवियों द्वारा रचित दो संस्कृत और चार राजस्थानी टीकाएं उपलब्ध होती हैं।[8]

६९ ५। वेलि की प्रधान टीकाएँ इस प्रकार हैं—

१ – स्व संपादित वेलि, संपादकीय प्रस्तावना, पृ० २३।

२ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ बार्डिक लिटरेचर डा० तेस्सीतोरी, खण्ड २, भाग, १ पृष्ठ ६।

३ – डा० हीरालाल जी माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२।

४ – वही पृ० १६२।

५ – अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, ह० ग्र० सं० ९६।

६ – अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रति।

७ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६२ १६६।

८ – राजस्थान भारती, बीकानेर, पृथ्वीराज राठौड़ जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक, मई १९५१, पृ० २९।

१ लाखा जी चारण की टीका

लाखा जी चारण ने राजस्थान की ढू ढाडी बोली म वेलि की टीका सवत् १६७३ में लिखी थी। इस टीका का उल्लेख वाचक सारग ने सवत् १६७८ विक्रमी म पालनपुर म रचित अपनी सस्कृत टीका में भी किया है। साथ ही वाचनाचार्य जयकीर्ति ने सवत् १६८६ माघ मास म रचित अपनी टीका में भी लाखा चारण की टीका का उल्लेख किया है। किसी टीका मे लाखा चारण का नाम कर्त्ता रूप मे उपलब्ध नहीं था जिससे लाखा चारण की टीका अप्राप्य मानी जाती थी। श्री अगरच द नाहटा क प्रयत्न से लाखा जी चारण नाम सहित यह टीका उपलब्ध हो चुकी है।[1] इस टीका का प्रारम्भिक अ श निम्नलिखित है—

ध्यात्वा श्रीगुरुपादपद्मयुगल श्रीम मुरारे परां।
वल्या प्रारभत जनप्रियकरी टीकां ससाध्य कवि ॥

दृष्ट्वा हृत्सरसी बहुतर तोष कवीशा दधु ।
दोषो न प्रतियाति यत्र पटुता ता नदसूनुर्भृशम् ॥१॥

लाखाजी चारण की यह टीका प्रकाशित हो चुकी है।[2]

२ कवि सारगकृत सस्कृत—टीका

कवि सारग ने 'सुबोध मजरी'' नाम से वेलि की सस्कृत टीका वि० स० १६७८ म पालनपुर नामक स्थान म लिखी। टीकाकार के गुरु पद्मसु दर भी विद्वान और कुशल कवि थे जिनकी रचनाओं का परिचय जैन गुर्जर कविओ भाग १ ३ मे उपलब्ध होता है। सारग कवि कृत विल्हण पचाशिका चौपाइ, भाव छतीसी, सोवनमकृति (जालोर मे स० १६७५ मे रचित) और जगदम्बा छ द आदि उपल ध हो चुके हैं।[3]

सुबोध मजरी टीका के आद्यत अ श इस प्रकार हैं—

श्रीपार्श्वजिनमनम्य गोपेज्य दशाज भकम्।
पृथ्वीराज शुभावल्ली विवव्रे र्थफलाप्तये ॥१॥
गुणिनो बहव सति सस्कृतज्ञा महाशया ।
पर प्राकृतलोकोक्ति मापास्वल्पधियो बुधा ॥२॥

---

१ — लालभवन, जयपुर का हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रह।

२ — वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, हि दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, परिशिष्ट, क।

३ — अभय जैन ग्र थालय, बीकानेर।

अन्तिम अंश—

अथ प्रार्थन्ति मंगलार्थं स्वामिस्वामिन्योनमिग्रहणम् रुक्मिण्या रूप लक्षणानि गुणाश्च वक्तुं स्तोतुं क समर्थं तगेऽस्ति न कोऽपि पर मया स्वमत्यनुसारत यादृशा ज्ञाता गोविन्दस्य राज्ञी तस्या गुणा तादृशा अत्र ग्रंथे कथिता निबद्धा जल्पिता इति यावत्। तेन मुग्धस्यापि ममोपरि कृपा कर्तव्या इति यदुक्तम्—

दूहा— वेण विसम्मा केसवा के अमरम्भ मरम्म।
घाट न जोवइ जग घड़न जोवइ प्रम परम्म।

सुबोध मंजरी नाम्ना टीकोपक्रनिकारणम्
गुणिनामर्थवल्येषा चिरं नन्द्यात्सुसौख्यदा
इति सुबोधमंजरी टीका संपूर्ण (संपूर्णा) कृता वाचक सारंगेण।
संवत् १६८३ श्री वैशाखेमासे कृष्ण त्रयोदश्यां लिखित सम्पूर्णम्।

३ कवि कक्क लिखित संस्कृत टीका

वेलि पर एक अन्य संस्कृत टीका भी प्राप्त हुई है। इसका टीकाकार अज्ञात है। कल्पद्रुम में कवि 'कक्क' द्वारा सं० १७५० वि० में लिखित इस टीका की प्रति प्राप्त हुई है[1] जिससे प्रकट होता है कि इस समय से पूर्व इसकी रचना हुई अथवा स्वयं लिपिकार ने ही इस टीका की रचना की है। टीका की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कक्क स्वयं संस्कृत का विद्वान एवं कवि था।

४ श्रीसार रचित संस्कृत टीका

श्रीसार खरतरगच्छीय रत्नहर्ष के शिष्य थे। इनके रचित आनन्द संधि आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं।[2] श्री सार ने यह टीका शाहजहां के राज्यकाल में लाहौर में द्राविड कृष्णानन्द के लिये विजयादशमी सं० १७०३ वि० (?) में पूरी की थी। टीका का प्रारम्भिक और अन्तिम भाग इस प्रकार है।

आदि— सर्वज्ञमीश्वरमनंतमनेकमेकं निःस्त यमव्ययमनगमसंगमग्रय।
सिद्धार्थमर्थप्रतिमर्थारत समर्थं निर्माय करमोशमहं नमामि॥१॥

अन्त— कृष्णान दाज्ञया यज्ञे या कृष्णानन्ददायिनो।
वल्लीवृत्ति सका चन्द्रार्कीयाव जयताद् भुवि॥६॥

---

१ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर, ग्रंथ सं० ६१४।
२ – युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि, संपादक श्री अगरचन्द नाहटा, अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर पृ० ३०७

चित्रपति मन स्याणु महाराजसदस्युथे।
कुर्वंतु से कांचन् जतु मक्ता पंजिका हृदि ॥७॥

इति श्रेयसदा। संवत् १८१६ वर्षे मिति फागुण सुदि ५ दिनै ॥ लिखित। प०। अमय मंगल मुनि। श्री पुहकरण मध्य॥ श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु॥[1]

५ शिवनिधान कृत राजस्थानी टीका

उपाध्याय शिवनिधान खरतरगच्छीय जैन विद्वान थे। इनका रचनाकाल सं० १६५२ से १६६२ तक है और इनके रचित अनेक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं।[2] इस प्रकार इनकी प्रस्तुत टीका का समय भी सं० १६५२ से १६६२ वि० के मध्य मानना चाहिये। टीका का आदि और अंत इस प्रकार है —

आदि— श्री हर्षसार सद्गुरु चरण युगोपासित लब्धि विज्ञान
विदधाति शिवनिधानो अथ वल्ला बालावबोध कृते ॥१॥

टीका— राउ श्री कल्याणमल पुत्र राज श्री पृथ्वीराज जी राठौड़ कवी ग्रंथ नी आदि मंगल निमित्त (श्री कृष्ण रुक्मणी मंगल वेलिनी आदि इ अभीष्ट) इष्ट देवता ने नमस्कार करइ।

अंत— वल्ली विवरणमेतत् रचितखरतरशिवनिधाने।
दोषं सद्भि दृष्टा शिष्ट समा भवतीह॥ १॥

शिवनिधान कृत टीका की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं, यथा—

१ वेलि (बालावबोध), पत्र ८१, लेखन सं० १-२८, छन्द ३०४, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथांक ३६४२।

२ श्री सता (सटबार्थ) पत्र ३३, लेखन सं० १७६६, पद्य ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथांक २०६६।

---

१ – गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर।

२ – क – श्री अगरचन्द नाहटा, दादा श्री जिनदत्त सूरि।

ख – राजस्थान भारती, पृथ्वीराज राठौड़ जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, वर्ष [illegible]

३ वेलि (सस्तबक) पत्र २८, लेखन स० १७८६, पद्य ३०४, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ४०७७।

४ श्री कृष्ण रुक्मणी वेलि, पत्र २७ लेखन स० १७०६, सरस्वती भडार उदयपुर, ग्रन्थाक ८०२।

६ जयकीर्ति कृत टीका

जयकीर्ति कृत टीका का नाम "वनमाली वल्ली बालावबोध" दिया गया है। वाचनाचार्य जयकीर्ति खरतरगच्छीय महोपाध्याय समयसुन्दर के प्रशिष्य थे। इनकी अन्य रचनाए इस प्रकार हैं —

(१) जिनराज सूरी रास (स० १६८१),
(२) षडावश्यक बालावबोध (स० १६९३) और
(३) कालकाचार्य कथा।

जयकीर्ति ने अपनी टीका बाधमल के पुत्र पारस की प्रार्थना पर स० १६८६ वि० के माघ मास में बीकानेर के महाराज सूरसिंह जी के राज्यकाल में की। टीका के आदि और अन्त के अश इस प्रकार हैं —

आदि— सरसति माता समरि नइ प्रणमी सद् गुरु पाय।
वनमाली वल्ली तणी, बात कहु विगताय ॥१॥
भावउ जाँ भाषा चतुर, चारण लालउ चग।
कीधउ पहिली वारतिक, अरथि न उपजई रग ॥२॥
स्वामेरी भाषा मुघिन, मद अरथ मनि भाव।
बात जय किय भाषा-विनु, समझण तिय सम भाव ॥३॥

अन्त— युग प्रधान जिणचद, इद परि दीप्पउ दीवउ।
शीश प्रथम तसु सकलचन्द इण नामई चावउ ॥
बड भागी उमकाय शीश मुनिवरे शिरोमणि।
समयसुन्दर सिरदार मही प्रतपइ जउ दिनमणि ॥
वादिया राय वाचक प्रवर हरखनदन धण काय चे।
सुविनीत वेलि विवरण सुगम वाणारिस जयकीरति वदइ ॥१॥

॥ इति श्री वनमाली वल्ली बालावबोध सपूर्ण ॥

कवि जयकीर्ति कृत टीकाओं की अन्य प्रतियां इस प्रकार हैं —

१ वेली (बालावबोध), पत्र ३५, लेखन स० १७६८, छद ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ३६४३।

२ वेल (बालावबोध) पत्र ७३, लेखन स० १७९६, पद्य ३१२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थाक ३५४८।

३ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र ३६, लेखन स० १६८३, छन्द ३०५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक १८।१६०।

७ कुशलधीर कृत टीका

कुशलधीर खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य सूरि की परम्परा मे कल्याणलाभ के शिष्य थे। इन्होंने वेलि की बालावबोध टीका अपने शिष्य भावसिंह के लिए विक्रमाब्दी सवत् १६९६ विक्रमी मे बनाई थी। इस टीका का सवत् १६९८ में लिखित प्रति स्वर्गीय पूरणचन्द नाहर सग्रह, कलकत्ता मे सुरक्षित है। कुशलधीर रचित टीका के आदि और अन्त के उद्धरण इस प्रकार है—

आदि—प्रणिपत्याऽन्तिम (?) सरस्वती सद्गुरुश्च सस्मृत्य।
कुर्वे मुरारिवल्ल्या वार्तिक मति सुगममखिलगुण ॥१॥
प्रतिपदमनुरमयति गुणमर्थ या वेलि तस्य शोभा स्यात्।
सत्वेति सकल सुखद निरुपमाश्चर्यमाक्षेपात् ॥२॥

अन्त — श्रीकृष्ण वेलि विवरण सकल कुशलधीर वाचक कहइ।
जे भणइ गुणइ मन सुधि सुणइ लीला लखमी ते लहइ ॥५॥
इति श्रीकृष्ण वेलि बालावबोध प्रशस्ति ॥

सवत् सोल अठाणवे वर्ष फागुन वदी ६ दिने गुरुवारे। श्री खरतर गच्छाधीश्वर भट्टारक श्री जिनमाणिक्यसूरि राजान शिष्य वाचक वर श्री कल्याणधीर गणि शिष्य वाचनाचार्य श्री कल्याणलाभगणि शिष्य पंडित कुशलधीर-गणिना राठउड़ कुलावतस पृथ्वीराज कृत श्री नारायण वल्ली बालावबोध कृत शिष्य पडित भावसिंह मुनिना लेखि पडित तत्वमो प्रमुख मुनि अनेकाध्ययनार्थ चिर नंदतु ॥ शुभमस्तु ॥

कुशलधीर कृत टीका की कतिपय प्रतियाँ इस प्रकार हैं—

१ वल्ली, (सविवरण) पत्र ४३, लेखन स० १८२६, पद्य १०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ४०७६।

२ श्रीकृष्ण वेलि, पत्र ५३ लेखन स० १७१८, छद ३०५, बड़ा उपाश्रय, रांगड़ी चौक बीकानेर ग्रन्थाक ३३।४८०।

८ सुदारग कवि की कुछ टीकाए इस प्रकार है —

१ क्रिसनरुक्मणी री वेली (सटीक), पत्र ४१, लेखन स० १६८३, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ६ । १३ ।

२ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, पत्र १६१ १८३, लेखन स० १७१८ अनूप सस्कृत लाईब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ७८ । ७८ ।

६ महेश सूरदास द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलो (मूल) अपूर्ण, रचना काल सं० १६६६, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ३८ । ३८ ।

१० सारग कवि की अन्य टीका—

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), रचनाकाल १६८३ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, ग्रथाक ६ । १३ ।

११ मथेण गुदड द्वारा मु हता मुकुन्ददास पठनार्थ लिखी गई —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि पत्र १०–११८, रचनाकाल १७१२, अनूप सस्कृत लाईब्रेरी, लालगढ़ बीकानेर ग्र थाक ४५ । ४६ ।

१२ मोहकमसिंघ द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (मूल) पत्र ६१–११३, रचना काल १७२४, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़, बीकानेर, ग्रथाक ६ । ६ ।

१३ पेमराज द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुकमणी री वेली (मूल), पत्र ६६–१२० रचना काल स० १७२४, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर, ग्रथाक ७ । ७ ।

१४ मोहनलाल द्वारा हनुमानगढ़ (भटनेर) मे लिखित टीका —

क्रिसन रुक्मणी री वेली, पत्र १६, रचनाकाल १७४०, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर ग्रथाक ५ । ५ ।

१५ परिव्राजक विष्णुगिरि द्वारा बीकानेर में लिखित टीका —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेली (मूल), पत्र २०, रचनाकाल १७७८, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थांक ४ । ४ ।

१६ कुशलसिंह द्वारा चूरू में लिखित टीका —

१ क्रिसन रुकमणी री वेलि, पत्र ३७ (४६–६४), अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थांक ६ । ६ ।

१७ वरमलपुर में टीकाकार पुरोहित लखमण द्वारा लिखित —

१ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक), अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थांक २० । २० ।

१८ टीकाकार लक्ष्मीवल्लभ द्वारा रचित टीका —

१ वेलि (बालावबोध), पत्र ३०, पद्य ३०५, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

१९ पं० दानचन्द्र द्वारा रचित राजस्थानी में टबार्थ टीका —

१ पृथ्वीराज वेलि (सटबार्थ), पत्र ५१, प० ३०५ महिमा भक्ति जैन-ज्ञान भंडार, बड़ा उपाश्रय, रांगड़ी चौक, बीकानेर, रचनाकाल १७२७, ग्रन्थांक ३३ । ४८५ ।

२० अज्ञात कर्तृक टीकाएँ —

वेलि की ऐसी टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं जिनके साथ रचनाकारों के नाम नहीं दिये गये हैं । वेलि की कतिपय प्रतियों का विवरण निम्नलिखित है —

१ वल्ली संस्कृत टिप्पण सहित पत्र २०, पद्य ३०१, लेखन सं० १७६०, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रन्थांक, ६१४ ।

२ वेलि (मूल), पत्र १४, पद्य ३०४, रचनाकाल १६३७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लिपि १६ वी शती, ग्रन्थांक ८८० ।

३ वेलि (मूल) पत्र ३४, पद्य ३०६, लिपि सं० १८२७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना सं० १६३७, ग्रन्थांक ८९४ ।

४ वेलि (रस-विलास टीका पत्र बद्ध) पद्य २०, पद्य ३०६, लिपि १८ वी शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना सं० १६३८, ग्रन्थांक १८३५ ।

५ वेल (सटीक), पत्र ६६, पद्य ३०४, रचनाकाल १६३८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लिपि स० १७९१, ग्रन्थाक ३५५७।२।

६ वेलि (साथ), पत्र ६७, पद्य स० ३१३, लिपि १७९२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३७, ग्रन्थाक १८६८।४।

७ वेल (साथ), पत्र ४६, पद्य ३०२, लिपि स० १७२२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३८, ग्रन्थाक २०७०।

८ वेल (साथ) पत्र २७ पद्य ३६६, लेखन १८ वीं शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, रचना स० १६३८ ग्रन्थाक ४०७८।

९ वेल (साथ), पत्र १६, छन्द ३०१, लेखन स० १८१७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ४४५२।

१० वेल (सटीक), पत्र २४ पद्य ३०४, लेखन स० १७४५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ४८३८।

११ वेल कृष्ण रुक्मणी जसवाद (सटीक), पत्र ४०, पद्य ३०६, लेखन स० १८००, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ८२५३।

१२ हरिवेल (सार्थ), पत्र १२, पद्य ३०१, लेखन स० १७४७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ६१४४।

१३ वेलि राधाकृष्ण चरित्र (मूल), पत्र ११ छन्द ३०६, लेखन स० १७८१, राजस्थान प्राच्य, विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ६२५२।

१४ वेलि (मूल), पत्र ४२, (३६–८०), छन्द ३०९, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लेखन स० १७३७ ग्रन्थाक ६२६६।

१५ कृष्ण रुक्मणी गुण मंगलाचार वेल (सटीक, सचित्र), पत्र ९२, छन्द ३०५, लेखन १८ वी शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर,ग्रन्थाक ६४२०।

१६ वेलि (सबालावबोध) पत्र ३०, पद्य ३०६, लेखन स० १७११, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ११०६०।

१७ वल्ली मूल, पत्र २१ (५६–७६), छन्द ३०२, लेखन स० १७१४, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ११५८४।

१८ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), पद्य १०८, लेखन सं० १७४५, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर।

१९ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र २६४, लिपि सं० १६७३, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक १८।१८।

२० क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक, सचित्र) पत्र, ३८, लिपि सं० १६९७, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक ८।७।

२१ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक), पत्र १४१ लिपि सं० १९९९, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ बीकानेर, ग्रंथांक ६।१४।

२२ क्रिसन रुकमणी री वेलि, लिपि सं० १७५३, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, १६।१६।

२३ क्रिसन रुकमणी री वेल (सटीक, सचित्र) छंद ३००, लिपि सं० १८०८, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, ग्रंथांक ११।११।

२४ क्रिसन रुकमणी री वेली (सटीक), पत्र ८१, लिपि सं० १८२९ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक १०।१०।

२५ क्रिसन रुकमणी री वेली (सटीक), पत्र २३-४६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक १२।१२।

२६ क्रिसन रुकमणी री वेलि, पत्र ११५, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ बीकानेर, ग्रंथांक १५।१५।

२७ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र १३५, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक १६।१६।

२८ क्रिसन रुकमणी री वेलि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रंथांक ५२।५२।

२९ श्रीकृष्ण देव रुकमणी वेल (मूल), पत्र २१८ से २२७, लिपि सं० १६९६, पद्य सं० ३०१, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

३० वेलि रुकमणीजी कृष्णजी री (सटीक) पत्र ४२ से १२३, पद्य २८७, लिपि सं० १७०५, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

३१ क्रिसन रुकमणीजी री वेल, पत्र ३०, पद्य ३०३, लिपि सं० १७४१, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, रचनाकाल १६३६, ग्रंथांक ७४०५।

३२ प्रथीराज कृत वेलि (सटीक, सचित्र), पत्र ८२, लिपि स० १८०७ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३३ वेलि (सटीक, बालावबोध) पत्र २४, पद्य २९६ लिपि स० १८१६, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थाक ७४०६।

३४ श्री क्रिसन जी री वेलि, पत्र २१, पद्य ३०४, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थाक ७४०४।

३५ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, पद्य ३०२, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३६ श्री कृष्ण वेलि (मूल) पत्र ३५ पद्य ३००, लिपि स० १७१६, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर, ग्रन्थाक २८।

३७ क्रिसन रुकमणी री वेल (सटीक) पत्र ३८, छन्द ३०५ लिपि स० १७४,५ खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

३८ श्रीकृष्ण वेलि (सटीक) पत्र २२, पद्य ३०६, लिपि स० १७७२, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

३९ श्री प्रथीराज वेल (मूल), पद्य २९५, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर।

४० क्रिसन रुकमणी री वेल (मूल), पद्य १२०, (अपूर्ण) खजाञ्ची कलाभवन पुस्तकालय, बीकानेर।

४१ श्रीकृष्ण रुकमणीजी री वेल, पत्र ३१ पद्य ३०३ लिपि सं० १७२२, बड़ा उपाश्रय रागडी चौक बीकानेर, ग्रन्थाक ३६। ५७७।

४२ श्री प्रथिराज जी री वेलि (सटीक), पत्र ८२ (१५३ २३४), पद्य ३०१, लेखन स० १७९५, सरस्वती भण्डार उदयपुर, रचना स० १६५४, ग्रन्थाक ४१९।

४३ वेलि प्रथीराज री (मूल), पत्र ५४ (७३ १२६) पद्य ३०४, लेखन स० १९९६ सरस्वती भण्डार, उदयपुर ग्रन्थाक ५६५।

४४ क्रिसन रुकमणी री वेलि (मूल), पत्र ७ (२२४ २३०), पद्य ३००, लेखन स० १७२७ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रन्थाक ५३२।

४५ वेलि (सचित्र सटीक) पत्र ५४ [illegible] भण्डार उदयपुर, ग्रन्थाक ६४५।

४६ वेलि कृष्ण रुकमणी री, लेखन सं० १७०१, सरस्वती भण्डार उदयपुर, ग्रन्थांक २६३।

४७ कृष्ण रुकमणी गुण वेल (सटीक), पत्र ३८, पद्य १०७, लेखन सं० १८०० सरस्वती भण्डार, कोटा, ग्रन्थांक १४३ । १७।

४८ क्रिसन रुकमणी वेलि (सटबा सचित्र), पत्र ३६, पद्य ३०४, रचना सं० १६३७, मुनि श्री पुण्य विजयजी संग्रह, अहमदाबाद।

८—वेलि की संस्तुति

७० पृ. ३ कविवर पृथ्वीराज कृत "वेली क्रिसन रुकमणी री" एक भक्त कवि की उत्कृष्ट और सरस रचना है जिसकी प्रशंसा में देश-विदेश के अनेक विद्वानों और भक्तजनों ने अपने उद्गार प्रगट किये हैं। पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुरसा जी आढा ने वेलि को पंचमवेद और उन्नीसवां पुराण लिखते हुए पृथ्वीराज के वचनों को व्यास के समान बताया है—

गीत

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करे वखाण।
पांचमो वेद भाखियो पीथळ, पुणियो उगणीसमो पुराण ॥ १ ॥
केवल भगत सवाह कलायत, तै जु क्रिसन श्रीगुण तवियो।
चिहुं पांचमो वेद चालवियो, नव दूणम गति नीगमियो ॥ २ ॥
मैं कहियो हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड़।
व्यास तणा भाखिया समोवड़, ब्रह्मा तणा भाखिया बड़ ॥ ३ ॥ [1]

पं० नरोत्तमदास जी स्वामी के लेखानुसार एक ह० प्र० में उक्त गीत गाडण रामसिंह कृत लिखा गया है। [2]

७१ पृ. ३ कवि मोहनराम जी ने वेलि और पृथ्वीराज की संस्तुति में लिखा है कि वेलि की रचना में पृथ्वीराज को समस्त देवी-देवताओं की प्रेरणा-शक्ति रही है—

गीत

रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधो उदरि।
बुधि गजमुख बोलिवे विदुखा, पुणिया वाद्दक व्यास परि ॥ १ ॥

१— राजस्थान भारती बीकानेर, भाग ७, अंक १–२, पृ० ५७।
२— स्व सम्पादित वेलि, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० २१।

श्रवणे ब्रह्म सबद तणो संचरियो, नयण श्ररक इंद उभै निवास।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, श्रग्नि दोख तणो उजास ॥ २॥
विस जागण ब्रह्म उछनि ताइ बखो, बाहु हणू मणिया तो बीर।
रति रवट श्र गि उर मा ( ) मुरतो, धरणो श्रखिर मेर स धीर ॥ ३ ॥
पढिवे गंग प्रवाह प्रवाणा, सुणता श्रंम्रित पान समय।
माइ प्रभु रो मार ग्रथ मांडण, परगट कायो लता प्रथ ॥ ४ ॥ [1]

७२ ४। भाजक जात्व ने पृथ्वीराजें कृत वेलि का प्रमृत वेलि लिखा है—

वे्ल बीज जल वयण, सुकवि जडमडी सत्तर।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वड लिखमीवर॥
पसरी दोप पदोप, अधिक गहिरई आडम्बर।
जे अपई मन सुधि, श्रव फल पामैं श्र तर॥
विस्तार कीध जुग जुग विमन घणो किमन कहिणार धन।
श्रमृत वेलि पायल श्रवल, तई रोपो किन्राण तन ॥ १ ॥
इति कलस उपादव कृनम् ॥ भोजक जादव कृनम वेलि को छई ॥१॥
श्री राम सत्य [2]

७३ ५। भक्त कवि नाभादास जी ने अपने भक्तमाल नामक ग्रंथ में पृथ्वीराज को नर और देव दोनों भाषाओं में निपुण बताते हुए श्लोक, सवैया, गीत, दोहा और वेलि के रूप में नव रसों का निभाना लिखा है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने नाभादास कृत पद के आधार पर पृथ्वीराज की अलौकिक लीलाओं का वर्णन किया है —

मूल — (नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव।)

सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस।
पिंगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायो हरिजस।
पर दुख विदुख श्लाघ्य, वचन रचना जु विचारै।
ग्ररथ कवित निरमोल, सबे सारंग उर धारै।
रुक्मिनीलता बरनन अनूप वागीश वदन कल्याण सुव।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव॥

दोहा — मारवाड देस बीकानेर को नरेस बर्णों,
पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज हैं।

---

१ – राजस्थान भारती, भाग ७, अंक १–२, पृष्ठ ५८।

२ – अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, सं० १६९९ वाली प्रति के अनुसार २।

सेवा अनुराग और विषै वैराग यशो,
रानो हूँ पहिचानो नाहि मानो देखि आजु हैं।
गयो हो विदेश तहाँ मानसी प्रवश कियो,
या नही घुठै कैसे सरैन काजु है।
बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठ परे,
पीछे हरि देखि भयो सुख को समाजु हैं।
लिखि के पठायो देश सुन्दर सन्देश इहै,
मन्दिर न देखे हरि बीते दिन तीन हैं।
लिख्यो आयो साच बाचि मनि ही प्रसन्न भयो,
लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन हैं।
सुनो एक आउ यो प्रतिज्ञा करी हिये धरी,
मथुरा शरीर त्याग करें रस लीन हैं।
पृथ्वीपति जानि के मुहिम दई काबिल की,
बल अधिकाई नही कालके अधीन हैं।
जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन,
कलप समान बीते पल न बिहात हैं।
आगम जनाय दियो चाहे इन्हें साचो कियो,
लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात हैं।
चल्यो चढि साढनी पै लई मथुरी आनी,
करिके सनान प्रान तजे सुनी बात हैं।
जै जै धुनि भई व्यापि गई चहु ओर,
अहो भूपति चकोर जस चंद दिन रात हैं।[1]

७४ २। मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि कतिपय लोगों ने वेली के पृथ्वीराज रचित होने में सन्देह प्रगट किया अतएव इस विषय में निर्णय के लिए समकालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो को आमन्त्रित किया गया — (१) दुरसा आढा, (२) सादु माला (३) केसो दास गाडण, और (४) माधोदास दधवाडिया। इनमें से दुरसा आढा और सादु माला ने पृथ्वीराजके विरोध मे और केसोदास तथा माधोदास ने पृथ्वीराज के पक्ष में निर्णय दिया। कहते हैं कि पृथ्वीराज ने दोनों विरोधी कविया की निन्दा में एवं और समर्थन करने वाले कवियों की प्रशसा में दो दोहे लिखे[2]। दोहे इस प्रकार हैं —

बाई बारे खाळिया, काई कही न जाय।
ऊंदे मालो ऊपनो मेहे दुरसा थाय ॥१॥

---

१ — भक्तिरत्न-बोधिनी टीका र० का० संवत् १७६९, फागुन बदी १०, प्रकाशक राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर।

२ — राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १५९।

बेग्गो गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार।
सिधरूपी रहता सबद,गाडण गुणा भडार ॥१॥
चू हे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास ।
चारण जीवो चार जुग,मरो न माधोदास ॥२॥

७५ ५। कहत हैं कि दुरसा जी आढा भी बाद मे पृथ्वीराज क और वेलि क प्रशसक हो गये। पृथ्वीराज, तानसेन और बीरबल की मृत्यु पर कहत है कि मुगल सम्राट अकबर ने यह दोहा कहा —

पीथळ सो मजलिस गई तानसेन सो राग।
रीझ बोल हस खेलबो गयो बीरबल साथ ॥

७६ ५। कनल जम्स टॉड ने पृथ्वीराज की प्रशसा ■ लिखा है— पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तो में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रुवडार राजकुमारो की भाति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी बात का पक्ष उन्नत कर सकत थे तथा स्वय तलवार लकर लड भी सकते थे"।[१] साथ ही कनल टाड न पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोडा का बल बताया है। श्री सूयकरण पारीक न वेलि क पद्य सख्या ११३–१३७ को इस कथन के प्रमाण में प्रस्तुत किया है।[२]

७७ ५। वेली के प्रथम सपादक डॉ० एल० पी० तस्सीतारी न लिखा है —

राठौड पृथ्वीराज बीकानेर द्वारा रचित, 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' राजस्थानी साहित्य रुपी रत्नगर्भा खान के अत्यत देदीप्यमान रत्नों में एक श्रेष्ठ रत्न है। डिंगल साहित्य की यह सर्वांग सम्पूर्ण कृति है। काव्य कला की दक्षता का एक विचक्षण नमूना है, जिसम आगरे के ताजमहल की तरह, भावो की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जो रस तथा भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य और काव्य के वाह्य आकार की निष्कलक शुद्धता को जाज्वल्यमान रुप में प्रदर्शित करता है।"[३]

७८ ५। वेली के काव्य सौष्ठव और धार्मिक माहात्मय पर कवि स्वय मुग्ध है। कवि ने वेलि का माहात्म्य विस्तार स वर्णित किया है।[४]

---

१ – क–एनल्स एण्ड एन्टीक्विटिज आफ राजस्थान।
ख–राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० १२१।
२ – स्व सपादित वेलि, भूमिका पृ० १६।
३ – वही, पृ० ५०।
४ – वेलि क्रिसन रुकिमणी री, पद्य सख्या २७५–२८८।

कवि ने यहां आत्म प्रशंसा नहीं कर भारतीय धार्मिक काव्यों की माहात्म्य वर्णन परम्परा का अनुसरण मात्र किया है। कवि ने प्रारम्भ में अपना अहम्मन्द[1] और अन्त में विनय पूर्वक अपने दोष[2] भी स्वीकार किये हैं। डॉ० तैस्सितोरी ने वेली में कवि की आत्म श्लाघा को स्वीकार करते हुए भी उसको प्रशंसनीय कहा है- यह जानकर कि महाराज पृथ्वीराज का ग्रन्थ सब प्रकार से अदूषित है हम उनके आत्म विश्वास के उत्साह को क्षन्तव्य समझते हैं। सचेष्ट और दूसरे आकार में यह वही आत्म-गौरव का भाव है जिसने माइकल एंजेलो[3] नामक प्राचीन पाश्चात्य कलाविद को अपनी बनाई हुई संगमरमर की मोजिज[4] की मूर्ति के घुटने पर प्रहार कर आवेग पूर्वक यह कहने को प्रेरित किया, 'बोल'। [5]

७६ ५। वेलि के प्रत्येक सम्पादक और आलोचक ने इसके काव्य सौष्ठव पर मुग्ध होकर मुक्त कंठ से प्रशंसा की है—

श्री सूर्यकरण पारीक ने लिखा है- 'जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में महाकवि भवभूति ने वीर, श्रृंगार और करुण, तीन पृथक पृथक रसों और शालिया मे महावीर चरित्र मालती माधव और उत्तर-रामचरित जैसे उत्तम दृश्य-काव्यों की रचना करके अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया और जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के वर्तमान काल की प्रगतियों के विधायक और आचार्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने साहित्य के सब अंगों को भरे पूरे करके साहित्य में अमर यश कमाया, उसी प्रकार महाराजा पृथ्वीराज ने भी पृथक पृथक शैलियों, विषयों और रसों में काव्य रचना करके राजस्थानी और हिन्दी साहित्य का मुख उज्ज्वल किया।' [6]

८० ५। डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित का मत है- वेलि की यह अपनी विशेषता है कि पुरातन प्रसंगों पर भी कवि ने नवीन काव्य प्रासाद के निर्माण की अपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित की है। नये प्रसंगों और कल्पनाओं के साथ साथ कवि ने पुरानी वस्तु को भी अपनी नवनवोन्मेषशालिनी काव्य प्रतिभा से भास्वर कर दिया है, उज्जवल बना दिया है। अस्तु वेलि अपनी बाह्य तथा आन्तरिक छवि में ऐसी छविमय है कि इतर भाषाओं के श्रेष्ठ काव्यों के साथ इसकी भी गणना की जा सकती है।'[7]

---

१ — पद्य संख्या २-६।

२ — पद्य संख्या ३०१-३०३।

३ — एक इतालवी कलाकार (मार्च १४७५-फरवरी १५६४) एनसाइक्लोपीडिया आफ अमेरिका पृ० १४-१७।

४ — विंकोली (रोम) की सेनपेट्रो चर्च में स्थापित मूर्ति वही पृ० १६।

५ — डॉ० तैस्सितोरी की सम्पादित वेलि भूमिका से श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा अनुदित, वेलि का हिन्दुस्तानी एकेडमी संस्करण, भूमिका, पृ० संख्या १००।

६ — स्व सम्पादित वेलि की भूमिका, पृ० ४।

७ — [illegible] सम्पादित वेलि भूमिका, पृ० १७३।

८१ ५। प० नरोत्तम दास जी स्वामी ने इस विषय में लिखा है — "कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वह उसको चाहे जिस प्रकार सहज ही मोड़ सकता है। शब्द मानो उसकी जिह्वा पर खेलते हैं जो आवश्यकता होते ही तुरंत उपस्थित हो जाते हैं।"[1]

८२ ५। वस्तुतः कविवर पृथ्वीराज की अबाध भाव धारा एवं काव्य चातुर्य से प्रसारित "वेलि" हमारे साहित्योद्यान में अद्वितीय है और भक्ति शृंगार तथा वीरता के सफल समन्वय के साथ ही कला पक्ष का पूर्ण रूपेण निर्वाह करते हुए भाव सौन्दर्य की चरम परिणति ही इसकी प्रधान विशेषता है।

(३) सायांजी झूला कृत "रुखमणी हरण"

८३ ५। भक्त कवि साया जी झूला की काव्यात्मक रचनाएं मुख्यतः दो हैं — 'नागदमण' और 'रुखमणी हरण'। इनकी कतिपय स्फुट पद्य रचनाएं भी बताई जाती हैं।[2] नागदमण और रुखमणी हरण दोनों ही काव्य कृष्णाख्यान पर आधारित हैं। नागदमण में श्रीकृष्ण की बाल लीला कालीय दमन का और रुखमणी हरण में प्रसंगानुसार समस्त बाल लीलाओं के संक्षिप्त वर्णन के साथ रुखमणी हरण प्रसंग का काव्यात्मक निरूपण हुआ है। नागदमण और रुखमणी हरण के विषय में आलोचकों के मत परस्पर विरोधी हैं। अधिकांश आलोचकों ने रुखमणी हरण में नागदमण को श्रेष्ठ माना है—

" 'रुकमणी हरण' एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है। साया जी का दूसरा ग्रन्थ 'नागदमण' है। ग्रन्थ में विषयों के वर्णन की जो शैली कवि ने अपनाई है, उसमें इसकी विशेषता अधिक बढ़ गई है। कवि ने कृष्ण की बाल लीला का वर्णन नागणी के साथ संवाद तथा कालिय मर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है"।[3]

" 'रुखमणी हरण' में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है। यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है। रुखमणी हरण की अपेक्षा साया जी का नाग दमण पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिए हुए है"।

डिंगल की प्रासादिकता और ओज का यह ग्रन्थ एक अच्छा नमूना है।"[4]

'नागदमण का विशेष महत्व उसके वर्णनों और संवादों के कारण है। ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं। वर्णन ऐसे हैं कि जिनसे सारा का सारा दृश्य अपने

---

१ – स्व सम्पादित वेलि, भूमिका पृ० ५६।

२ – श्री हनुवन्तसिंह देवड़ा, "संयुक्त राजस्थान", अगस्त १९५६, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय जयपुर।

३ – श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्द कोष, भाग १, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४।

४ – श्री मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० संख्या १३३।

प्राय रास के वातावरण से भार भाकार हो जाता है। रुक्मणी हरण धार रसपूर्ण एक भक्त्यात्मक काव्य है, गौण रूप से कोमल रस का वर्णन भी मिलता है। इसमें रसानुकूल पद-योजना और विनमय वर्णन स्थान स्थान पर पाये जाते हैं।"

"यह (रुक्मणी हरण) और वेलि दोनों ग्रन्थ एक साथ बादशाह अकबर को निरीक्षणार्थ भेजे गए। बादशाह ने पहले वेलि को सुनकर हरण को सुना। अन्त में हरण की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके स्नेह और व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा 'पृथ्वीराज! तुम्हारी वेल को चारण बाबा का हरण चर गया'[1]।

८४ ५। इस प्रकार 'रुक्मणी हरण' एक ओर तो अकबर सम्बन्धी प्रसंग के अनुसार महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुकमणी री" से भी श्रेष्ठ कहा गया और दूसरी ओर विद्वानों ने इसे सामान्य भक्त्यात्मक कृति माना। हमारे ग्रन्थ भण्डारों में सायांजी कृत "रुक्मणी-हरण" की प्रतियां बहुत कम मिलती हैं इसलिये आलोचकों की धारणाएं इस विषय में स्पष्ट नहीं हो सकी। नागदमण' और 'रुक्मणी-हरण' की रचना में कवि को समान रूप से सफलता मिली है। 'नागदमण" की अनेक प्रतियां ग्रन्थ भण्डारों में मिलती हैं और इसका प्रकाशन भी बहुत पहले हो चुका है।[2] सायां जी कृत 'रुक्मणी हरण' का प्रकाशन भी प्राप्य पाठों सहित लेखक के सम्पादन में हो चुका है।[3]

८५ ५। कवि ने प्रारम्भ में मंगलाचरण देते हुए ही अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दे दिया है। कवि ने अपने काव्य कथन को भव सागर तरने हेतु तुम्बा जाना कहा है। कवि भक्त के नाते ईश्वर से याचना करता है कि अन्य कवियों ने तो नन्दलाल रूपी जहाजों का आश्रय लेकर भवसागर पार किया किन्तु उसने तो एक तुम्बा नावों का ही निर्माण किया है। ईश्वर समुद्र में डाले गये पत्थरों को तराने और उस पर से सेना पार उतारने में भी समर्थ हैं तो तुम्बे पर बैठे हुए को क्या नहीं तारेगा? इस प्रकार कवि ने प्रारम्भ में ही अपनी विनम्रता उक्ति वैचित्र्य, मार्मिक अभिव्यंजना एवं काव्यगत कौशल का परिचय देते हुए सच्चे भक्त के नाते ईश्वर के प्रति अपना अधिकार प्रकट करते हुए विश्वास सहित लिखा है— "तु बे बठा केम न तारे?"[4] तदुपरान्त श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन है। कवि ने राजा भीष्मक और रुक्मणी के संवाद में श्रीकृष्ण के प्रति अनूठे भाव व्यक्त किये हैं। कवि ने अपनी ओर से श्रीकृष्ण को उपालम्भ न देते हुए रुक्मणी द्वारा 'खरी खोटी' सुनाई हैं। इस प्रकार कवि ने अपनी भक्ति की एक विचित्रता प्रकट की है।[5]

---

१ — वेलि क्रिसन रुकिमणी री, सम्पा० डॉ० आनन्द प्रकाश जी दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर भूमिका पृ० ३५।

२ —क— सम्पादक श्री हमीरदान जी मोतीसर पालणपुर, सन् १९३३ ई०।
ख—सम्पादक मूलचन्द 'प्राणेश' भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर।

३ — प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थांक ७४।

४ — पद्य सं० १-३। ५ — पद्य सं० ५-५१।

८६ ५। वेलि कर्ता महाराज पृथ्वीराज ने उक्त प्रसंग के स्थान पर रुक्मिणी के नख शिख वर्णन और वय संधि वर्णन की आयोजना की है। पृथ्वीराज और सायांजी की काव्य रचना में उद्देश्य भिन्नता स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होती है। वेलिकार का ध्यान भक्तिमय शृंगार की ओर है किन्तु सायांजी का लक्ष्य श्रीकृष्ण चरित्र निरूपण और वीर रस की अभिव्यक्ति है।

८७ ५। सायांजी ने रुक्मया के कथन में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की आलोचना भी की है —

> लखण बत्रीस तेत्रीसमो ए लखण।
> धरा पर चारेउ पसू नवेनन वण।
> प्रथम दही दूध मापण तणी पत गली।
> आगळी आपना बाह एणे गली।
> तात ने मात बोवाह पड मड टली।
> मलया घणा घरबाम आया मली।
> साफ सूर उगमण तात महतारीया।
> पुत्र सोभयो मने घाट पगहारीया॥ [1]

कवि को इस विषय में प्रसंग भी सर्वथा अनुकूल प्राप्त हुआ है क्योंकि रुक्मया श्रीकृष्ण को कुरूप बता कर उससे रुक्मिणी का विवाह नहीं करने के लिए अपने पिता को सहमत करना चाहता है और पिता श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए रुक्मया को समझाना चाहते हैं।

८८ ५। कविवर सायांजी ने प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का निरूपण किया है। यथा— पूतना वध [2], चीर हरण लीला [3], दान लीला [4], भोजन व वध [5] नागदमन [6] और गोवर्द्धन धारण [7] आदि। श्रीकृष्ण के परब्रह्म विष्णु रूप की ओर संकेत करते हुए कवि ने क्षीर शयन और लक्ष्मी चरण का भी उल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने राम और कृष्ण की एकता भी युग के अनुरूप अनूठे रूप में प्रतिपादित की है।[8] कवि ने राजा भीष्मक के कथनों में तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा और नर्मदा का अवतरण भी श्रीकृष्ण के चरणों से बताया है।[9]

८९ ५। रुक्मया राजा भीष्मक की बातों की ओर ध्यान नहीं देता हुआ रुक्मिणी के विवाह हेतु शिशुपाल को लग्नपत्रिका प्रेषित कर देता है।[10] आगे कवि ने शिशुपाल द्वारा विवाह हेतु प्रस्थान करते समय के और मार्ग के अपशकुनों का वर्णन किया है, [11] जिससे

---

१ – पद्य सं० ७–८। २ – पद्य सं० ६। ३ – पद्य सं० ९।
४ – पद्य सं० १०। ५ – पद्य सं० १७। ६ – पद्य सं० १९।
७ – पद्य सं० ३६। ८ – पद्य सं० ४०। ९ – पद्य सं० ४६।
१० – छन्द सं० ५२। ११ – छन्द सं० ५३–६७।

प्रकट है कि कवि को शकुन शास्त्र का विशेष ज्ञान था। तदुपरान्त कवि ने रुक्मिणी की विरहावस्था बताते हुए रुक्मिणी की ओर से ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण को पत्रिका भेजने का वर्णन किया है।[1] ब्राह्मण द्वारिका जाता हुआ रास्ते में सो जाता है और जागने पर अपने आपको द्वारिका में पाता है तो उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहता। इस प्रसंग में देव अर्थात् ब्राह्मण को देवाधिदेव अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा दर्शन देने का उक्ति सौन्दर्य दृष्टव्य है।[2] आगे कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का विनती पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें श्रीकृष्ण के परम ब्रह्म स्वरूप का वर्णन भी है।[3]

६० ५। कृष्ण रुक्मिणी के पत्र में 'निमपरो बिलवरो नाथ अवसर नथी' पढ़ते ही रथ मंगवा कर कुन्दनपुर की ओर चल दिये।[4] ब्राह्मण का श्रीकृष्ण सहित आगमन जान कर रुक्मिणी प्रसन्न हुई। रुक्मिणी ने लक्ष्मी के रूप में ब्राह्मण के आगे नमन किया तो ब्राह्मण को किस बात की कमी हो सकती थी।[5]

६१ ५। बलदेव को श्रीकृष्ण के जाने की सूचना मिली तो वे पूर्ण सैनिक तैयारी के साथ श्री कृष्ण की सहायता हेतु पहुंचे। थोड़े समय के लिए भी अलग नहीं होने वाले हलधर और गिरिधर कुन्दनपुर में पुनः मिले तथा इनका आगमन सुनकर राजा भीष्मक को प्रसन्नता हुई।[6] आगे कवि ने श्रीकृष्ण के कुन्दनपुर में स्वागत सत्कार और विभिन्न पक्षों की चित्तवृत्तियों का वर्णन किया है। कुन्दनपुर में एक रुक्मैया के बिना सभी श्रीकृष्ण के आगमन से प्रसन्न हुए और उनके दर्शन हेतु लालायित हुए।[7] श्रीकृष्ण के स्वागत में सज्जनों के मुख 'राजीव जिम सरद ऋतु'' की भांति विकसित हो गये, और कृष्ण रुक्मिणी परिणय की कामना हेतु अपने सुकृत अर्पित करने लगे।[8] राजा भीष्मक ने कृष्ण को भक्तिपूर्वक सात खण्डे महल में ठहराया।[9] इस अवसर पर शिशुपाल भी अपने सहयोगी राजाओं और सैनिकों सहित रुक्मिणी से विवाह करने हेतु पहुंच जाता है। 'कन्या हेक नै घर दोय वडीया कडे।'' के कारण दोनों पक्षों की ओर से युद्ध की तैयारी होती है क्योंकि अब युद्ध अवश्यंभावी हो चुका था।

६२ ५। रुक्मिणी अपनी सहेलियों के साथ अम्बिका पूजन के लिए जाती है तो शिशुपाल और जरासंध पूर्ण सावधानी से रुक्मिणी की रत्न के समान रक्षा का प्रबंध करते हैं—

> अपे जरासिंघ ए घात औ सेंघणी।
> राषीये रतन जिम जतन कर रुपमणी ॥[10]

---

१ – छंद सं० ६३ से ६६। २ – छंद सं० ६६। ३ – छंद सं० ७४।
४ – छंद सं० ७७। ५ – छंद सं० ७८ ८०।
६ – छन्द सं० ८१ से ९०। ७ – पद्य सं० ९१।
८ – पद्य सं० ९३। ९ – पद्य सं० ९८। १० – पद्य सं० १०६।

६३ ५। शिशुपाल के सैनिकों ने सुरक्षा हेतु रुक्मिणी और सहेलियों सहित मन्दिर के चारों ओर घेरा डाल दिया और — 'चालतो कोट चौफेर लीधो चुणी।'

रुक्मिणी ने ज्योंही अम्बिका का पूजन कर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा की तो आकाश मार्ग से श्रीकृष्ण ने पहुंच कर रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा लिया और समस्त सैनिक मूर्छित हो गये।[1]

६४ ५। रुक्मिणी हरण का एक प्रमुख अंग युद्ध वर्णन है। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर ज्योंही शंख नाद किया, समस्त सैनिक लड़ने हेतु उद्यत हो गये।[2] कविवर सायां जी भक्त होने के साथ ही एक कुशल योद्धा भी थे इसलिए 'रुक्मणी हरण' में मध्य कालीन भारतीय युद्ध पद्धति का विस्तृत एवं यथार्थ वर्णन उपलब्ध होता है।[3] युद्ध-वर्णन प्रस्तुत काव्य का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण भाग है, जिससे काव्य वीर रस प्रधान हो गया है। इस युद्ध वर्णन के अन्तर्गत शत्रु सेना के युद्ध प्रयाण का, विभिन्न प्रकार के मध्यकालीन आयुधों का, विविध वाहनों का वीरों के सिंहनाद का, कायरों का भाग दौड़ और घायलों की कराहट का हृदयस्पर्शी चित्रण है।

६५ ५। सेना प्रयाण से आकाश मंडल धूल से आच्छादित हो गया जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

> चक्कवे चक्कवी पूर रयणी चिया।
> गेहणी छोड भरथार दूरें गिया॥
> मेंघ पुड ऊपडी पेह पेहा मली।
> आपरा वछा ने ना उलखे अनली॥[4]

६६ ५। युद्ध सम्बन्धी बाजों और आयुधों की गर्जना का प्रभाव भी कवि ने व्यक्त किया है।[5] युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा किये गये शस्त्र प्रभाव और उसके प्रहार का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है।[6]

६७ ३। श्रीकृष्ण और बलदेव के सामने युद्ध में शिशुपाल, जरासंध और रुक्मया तीनों ही पराजित हुए। श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को बांध लिया किन्तु फिर रुक्मिणी के निवेदन पर उसकी आधी मूंछ और मस्तक मुण्डित करवा कर मुक्त कर दिया। तदुपरान्त कवि ने युद्ध स्थल में प्रवाहित होने वाली लोहू की धाराओं, हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं की कटी हुई लोथों और पलचरों की प्रसन्नता आदि का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की विजय सूचित की है।

---

१ – पद्य सं० ११८–११६।
२ – छन्द सं० १२०–१२२।
३ – छन्द सं० १२३–१६४।
४ – छन्द सं० १३०।
५ – पद्य सं० १५०, १५१, १५४
६ – पद्य सं० १७३, १७४।

द्रष्टव्य है कि कवि ने श्रीकृष्ण को पूर्णब्रह्म परमेश्वर और दुष्टों का विनाश कर पृथ्वी का भार उतारने वाले लिखा है एवं रुक्मिणी को सीता अथवा लक्ष्मी कहा है।[१]

कवि ने आगे श्रीकृष्ण के रुक्मिणी सहित द्वारिका लौटने, द्वारिका की सजावट और जनता द्वारा किये गये उनके स्वागत का चित्रण किया है।[२] तदुपरान्त कवि ने ज्योतिषियों द्वारा श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह की लग्न वेला निश्चित करने, श्रीकृष्ण के वस्त्राभूषणों द्वारा सज्जित होने और विधि पूर्वक विवाह होने का वर्णन किया है।[३] कवि ने विवाह वर्णन के बाद श्रीकृष्ण रुक्मिणी की रति क्रीडा के विषय में यही लिख कर मौन धारण कर लिया है—

> रुपमणी किसन रे रग पूगा रयण।
> रग रम कहत जो सेस देतो रसण॥[४]

९८ ५। कवि ने काव्य की पूर्णता के समय श्रीकृष्ण की राज्य सभा का वर्णन करते हुए उनकी महानता, उदारता, कलाप्रियता, दास भावना और दुष्ट अहंकता की ओर संकेत किया है।[५]

९९ ५। हरण में वीर रस का प्राधान्य है। इसके कर्ता एक चारण कवि हैं जिससे काव्य में वीर रस का होना सर्वथा उचित है।

हरण' का वीर रस युद्ध विषयक है, जिसके आलम्बन शिशुपाल, रुकमैया और जरासिंध आदि शत्रु, उद्दीपन इन शत्रुओं की शक्ति, ललकार और ललकार, अनुभाव श्रीकृष्ण बलदेवादि की युद्ध में स्थिरता और रोमांचादि तथा संचारी भाव युद्ध में विभिन्न योद्धाओं का गर्व, धृति, तर्क और आवेग आदि हैं जिनका निरूपण काव्य में यथास्थान सफलता पूर्वक हुआ है। शान्त, शृंगार और वीभत्सादि रसों का भी कतिपय स्थलों में वर्णन हुआ है। हरण' के कर्ता एक सिद्ध महात्मा माने गए है जिनकी दास्य भक्ति का निरूपण मुख्यत काव्य के प्रारम्भ में और अन्त में हुआ है। "हरण काव्य में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है इसलिए शृंगार वर्णन का कवि के लिये पर्याप्त अवसर था किन्तु कवि ने रुक्मिणी के बाल रूप वर्णन वय सन्धि वर्णन शृंगार वर्णन, संयोग षट्ऋतु वर्णन छोड दिया है। सम्बन्धित कथानक में शृंगार रस के अनुकूल अनेक तत्व उपलब्ध है किन्तु कवि ने इनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा है। इसके विपरीत युद्ध वर्णन में जैसी पूर्णता और विस्तार हरण" में है, उसका वेलि' में अभाव है। वेलि में शृंगार, शान्त और वीर रसों की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है तो हरण में शान्त और वीर रस का सफल समन्वय हुआ है।

१०० ५। शान्त रस के अन्तर्गत हरण' में कवि का भक्त स्वरूप निराला ही है क्योंकि इसमें दास्य भक्तिजनित विनम्रता, बालरूप चित्रण और माधुर्य के साथ ही श्रीकृष्ण की कटु आलोचना का भी समावेश हुआ है।

---

१ – पद्य संख्या १६४। २ – पद्य सं० १६७। ३ – छन्द सं० २०३—२१४।
४ – पद्य सं० २१५। ५ – पद्य सं० २१८—२१९।

अनुप्रास, श्लेष, यमक और रूपकादि सामान्य प्रचलित अलकार तो इस काव्य में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते ही हैं किन्तु मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में प्रचलित 'वैण सगाई' अलकार का निर्वाह प्राय समस्त छन्दो में हुआ है। मध्यकालीन राजस्थानी कवियों की ऐसी मान्यता रही है कि 'वैणसगाई" का निर्वाह होने पर काव्य में किसी प्रकार का दोष नही रहता —

आवे इण भापा अमल वैण सगाई वेस।
दग्ध अगण वद दुगुण रा लागे नह लवलेस ॥

पारस्परिक वैर अथवा दोष मिटाने हेतु परिवारो में विवाह सम्बन्ध निश्चित कर लिये जाते थे अर्थात् आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। 'वयण सगाई" का अर्थ आत्मीय और वैण सम्बन्ध दोनों से ही है। इस विषय मे लिखा गया है —

वयण सगाई वेस, मिल्या सान्च दोषण मिटे।
किण हिक समे कवेस, थपियो सगपण उथपे ॥
खून किया जाणे खलक, हाड वैर जो होय।
वैण सगाई वेस तो कलपत रहै न कोय ॥
—रघुनाथ रूपक गीता रो।

इस प्रकार मध्यकालीन राजस्थानी काव्य मे वयण सगाई' अलकार का निर्वाह छन्द के प्रत्येक चरण में अनिवार्य हो गया था। इसके अभाव में का य कलापूर्ण बहुत से छन्द भी स्वय कर्ताओ द्वारा ही नष्ट कर दिये गये। सर्व प्रथम राजस्थानी भाषा के समर्थ कवि महाकवि सूर्यमल ने 'वयण सगाई" के ब धनो को शिथिल करते हुए लिखा —

वैण सगाई वाळिया पपीजे रस-पोस।
वीर हुतासण बोल म, दीपै हेक न दोस ॥ —वीर सतसई

सूर्यमल का मत था कि वयण सगाई के प्रयोग से रस का पोषण देखा जाता है किन्तु वीर रस पूर्ण काव्य में कोई दोष नहीं होता।

१०१ ५। 'वयण सगाई" तीन प्रकार की मानी गई है —

वरण-मित्र जू धरण विध, वखियण तीन कहत।
आद अधिक सममध अवर न्यून अक सो अत ॥

उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार मे उत्तम वैण सगाई के तीन उपभेद हैं जिनके उदाहरण रुक्मिणी हरण में इस प्रकार हैं —

१ आदिमल— चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण में अन्तिम शब्द के आदि में हो, यथा —

भल भला राय हर राय कु अरी भली। २२
वात बोमाहरो साच कोज वली। २४

२ मध्यमेन– चरण मे प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अंतिम शब्द के मध्य म हो —

वमल पत मात कुल छात जणावियो। १२
चोहटे चाल ज्यु वहूं ये राचना। १२५

३ अंतमेन– चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अंतिम शब्द के अंत मे हो —

दूसरा दुरमठ तत्काल कीआ तम। २८
तवें जरासंध समपाल रहू सावतो। १३६ ४३

मध्यम कोटि की वयण सगाई असमान स्वरा, स्वर और 'य' अथवा 'व' का मेल होने पर कही जाता है जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

अरज अवगोग यथा राजवस एतला।
ऊपजे आहीर मन बुधपण आवए।
ओलपीआ चरण वावरण वेवसा ॥

अधम कोट की वैण सगाई विभिन्न वर्गों जैसे 'ट' वर्ग और 'त' वर्ग अथवा अल्प प्राण और महा प्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है। यथा —

सात ने मात वीवाह पड भड टलो। ८४
चोकरा आय कुमर गा छोडीया। १७७[1]

'हरण' के अनेक छन्दों में 'वेण सगाई' का निर्वाह नही भी देखा जाता, है जिसका कारण यही हो सकता है कि तब तक वयण सगाई की राजस्थानी काव्य म विशेषता अवश्य हो गई थी किन्तु उसका निर्वाह अनिवार्य नही हो पाया था। हरण की प्राप्त सभी प्रतियों में काव्य में प्रयुक्त प्रमुख छन्द का नाम भरताल मिलता है। झरताल का प्रयोग ३ गाहा चोसर और दूहे के पश्चात् अंत तक हुआ है।

सवाद और सूक्तिया

१०२ ५। 'हरण' में सवाद और सूक्तियां की छटा अनेक प्रसंगों में विशेष रुचिकर हो गई है। सवादों म सम्बन्धित पात्रों के चरित्र चित्रण और प्रसग निरूपण में चमत्कारपूर्ण

---

१ – प्रथम अंक छन्द संख्या का और द्वितीय अंक पृष्ठ संख्या का सूचक है।

स्वभाविकता का समावेश हो जाता है, प्रस्तुत काव्य में मुख्यत निम्नलिखित संवाद दर्शनीय हैं —

१ भीष्मक और रुक्मैया सवाद, छन्द स० ३५१।

२ श्री कृष्ण और विप्र (सन्देश वाहक) संवाद छन्द स० ७०–७१।

३ जरासन्ध और शिशुपाल सवाद छन्द स० १३९, १४०।

४ जरासन्ध और बलदेव सवाद, छन्द म० १७६, १७६।

१०३ ५। काव्यगत अनेक सूक्तिया सम्बन्धित वातावरण के सर्वथा अनुकूल होती हुई पाठको का ध्यान आकर्षित करने मे सफल हुई हैं। ऐसी सूक्तियों से काव्यगत प्रसग, प्रभाव पूर्ण बन गये हैं। हरण का कतिपय सूक्तिया निम्नलिखित हैं —

१ आगली आपता बाह एणे गली। —छन्द स० ७ पृ० स० ४

२ हेतरा जुगत सु जगत वैकुण्ठ हुवे। —छन्द स० ६७, पृ० २२

३ कन्या हुवा ने वर टोय चढीया कहे। — छन्द स० १०३, पृ० ३२

४ हरि तणो जाणीयो सोह आपर हुसे। —१०४ ३३

५ रावीये रतन जिम जतन कर रुपमणी। — १०६ ३३

६ चालतो कोट चोफेर लीधो चुणी। —११७ ४०

७ कूद ग्या कायरा बाजता काहली। —१५१ ४७

८ किसन कारज बने पथ हेकण कीया। —१८४ ५५ आदि।

१०४ ५। भक्त कवि सायाजा भूला का 'रुक्मणी हरण' राजस्थानी साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। 'हरण' की रचना म कवि का लक्ष्य भक्ति और वीरता का समन्वय रहा हैं। कवि द्वारा प्रदर्शित भक्ति का स्वरूप भी अनूठा है। हरण' क प्रकाशन से सदियो से प्रवाद रूप में प्रचलित मुगल सम्राट की उक्ति पृथ्वीराज! तुम्हारी वेल को चारण बाबा का 'हरण' चर गया'[१] के सत्य का निर्णय भी सुविज्ञ पाठक कर सकेंगे। 'हरण' का युद्ध वर्णन वेलि से अधिक विस्तृत और सम्पूर्ण है, कि तु वेलि की अनुपम भाव व्यंजना, अनूठे उक्ति वैचित्र्य और मौलिक कल्पनाओं की ऊंचाई तक हरण छलाग नही लगा सका है।

१–क– कृष्ण रुक्मणी री वेलि, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४६।

ख– राजस्थानी भाषा और साहित्य प० मोतीलाल जी मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद पृ० १७६।

ग– डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित, स्व-सपादित वेलि की भूमिका, पृ० १४ और राजस्थान-भारती बीकानेर, भाग ६ अक १–२, पृ० ६।

घ– राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४।

भल भला राय हर राय कुअरो भलो । २२
वात बोमाहरो साच कोज वलो । २४

२ मध्यमेल– चरण मे प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृति उसी चरण के अंतिम शब्द के मध्य मे हो —

वमल पत मात कुल छात जणावियो । १२
चोहटे चाल ज्यु कहै ये राचना । १२५

३ अंतमेल– चरण मे प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृति उसी चरण के अंतिम शब्द के अंत में हो —

दूसरा दुरमड तलकाल कीधा तबे । २६६
तवे जरासन समपाल रहे सावतो । १३६४३

मध्यम कोटि की 'वण सगाई' असमान स्वरा, स्वर और 'य' अथवा 'व' का मेल होने पर कही जाती है जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

अजर अपरोग यथा राजवस एकला ।
ऊपजे आहीन मन बुधपण आवए ।
ओलपोआ चरण आवरण वेवसा ॥

अधम कोट की वण सगाई विभिन्न वर्गों जैसे 'ट' वर्ग और 'त' वर्ग अथवा अल्प प्राण और महा प्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है । यथा —

तात ने मात वीवाह पड भड टली । ८४
चोकरा आय कुमेर रा छोडीया । १७७[1]

'हरण' के अनेक छन्दों में 'वण सगाई' का निर्वाह नहीं भी देखा जाता, है जिसका कारण यही हो सकता है कि तब तक "वण सगाई" की राजस्थानी काव्य म विशेषता अवश्य हो गई था किन्तु उसका निर्वाह अनिवार्य नहीं हो पाया था । हरण की प्राप्त सभी प्रतियां में काव्य में प्रयुक्त प्रमुख छन्द का नाम 'भरवाल' मिलता है । भरवाल का प्रयोग ३ पाहा चोसर और दूहे के पश्चात् अंत तक हुआ है ।

सवाद और सूक्तियां

१०२ ५ । 'हरण' मे सवादों और सूक्तियों की छटा अनेक प्रसंगों म विशेष रुचिकर हो गई है । सवादों से सम्बन्धित पात्रों के चरित्र चित्रण और प्रसंग निरूपण में चमत्कारपूर्ण

---

१ – प्रथम अंक छन्द संख्या का और द्वितीय अंक पृष्ठ संख्या का सूचक है ।

स्वभाविकता का समावेश हो जाता है, प्रस्तुत काव्य में मुख्यत निम्नलिखित सवाद दर्शनीय हैं —

१ भीष्मक और रुक्मैया सवाद छन्द स० ३५१।

२ श्री कृष्ण और विप्र (सन्देश वाहक) सवाद, छन्द स० ७०–७१।

३ जरासन्ध और शिशुपाल सवाद छन्द स० १३६, १४०।

४ जरासन्ध और बलदेव सवाद, छन्द स० १७९, १७६।

१०३ ५। काव्यगत अनेक सूक्तिया सम्बन्धित वातावरण के सर्वथा अनुकूल होती हुई पाठको का ध्यान आकर्षित करने मे सफल हुई हैं। ऐसी सूक्तियों मे काव्यगत प्रसग, प्रभाव पूर्ण बन गये हैं। हरण का कतिपय सूक्तिया निम्नलिखित हैं —

१ आगली आपता बाह एणी गली। —छन्द स० ७, पृ० स० ४

२ हेतरा जुगत सु जगत बैकुण्ठ हुवे। —छन्द स० ६७, पृ० २२

३ कन्या हेक ने वर दोय चढीया कहे। — छन्द स० १०३, पृ० ३२

४ हरि तणो जाणीयो सोह आपर हुसे। —१०४ ३३

५ रापीये रतन जिम जतन कर रुपमणी। —१०६ ३३

६ चालतो कोट चोफेर लीधो चुणी। —११७ ४७

७ छूद स्या कायरा बाजला काहली। —१२१ ४७

८ किसन कारज वने पथ हेकण कीया। —१६४ ५५ आदि।

१०४ ६। भक्त कवि सायाजी झूला का 'रुक्मणी हरण' राजस्थानी साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। 'हरण' की रचना मे कवि का लक्ष्य भक्ति और वीरता का समन्वय रहा है। कवि द्वारा प्रदर्शित भक्ति का स्वरूप भी अनूठा है। 'हरण' के प्रकाशन से सदियो से प्रवाद रूप में प्रचलित मुगल सम्राट की उक्ति "पृथ्वीराज। तुम्हारी बेल को सायरा झूला का 'हरण' चर गया," [१] के सत्य का निर्णय भी सुविज्ञ पाठक कर सकेंगे। 'हरण' का युद्ध वर्णन वेलि से अधिक विस्तृत और सम्पूर्ण है, किन्तु वेलि की अनुपम भाव व्यजना, अनूठे उक्ति वैचित्र्य और मौलिक कल्पनाओं की ऊचाई तक 'हरण' छलाग नहीं लगा सका है।

१–क– कृष्ण रुक्मिणी री वेलि, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४६।

ख– राजस्थानी भाषा और साहित्य प० मोतीलाल जी मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद पृ० १७६।

ग– डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित, रुद्र–सपादित वेलि की भूमिका, पृ० १४ और राजस्थान–भारती, बीकानेर, भाग ६ अक १–२, पृ० ६।

घ– राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी,

(४) सूर कृत–रुक्मणी-हरण

१०५ ५। सूर कृत 'रुक्मणी हरण' ९८ छन्दों में पूर्ण हुआ है। इसमें कवित, छप्पय दूहा और वेमप्परी नामक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संग्रहालय में है।[1] यह प्रति संवत् १६०४ में चैत्र सुदी सोमवार को प० कोर्तिकुशल गणि द्वारा गुनानंद और रचना के लिए मातृभूमि नामक स्थान मे लिखी गई है। रचना के तीसरे छंद से प्रकट होता है कि यह रचना सूर कृत है। कवि ने प्रारम्भ मे सरस्वती-वन्दना की है —

॥ कवित्त छप्पय ॥

तो प्रसाद सरसति मात पूरण गुणमाला,
तो परसाद सरसति कोमा काइब कवि काला।
तो प्रसाद सरसति माध गम ग्रगम विचार
ता प्रसाद सरसति सुमति सुखदेव समारे।
हरि कहण सोभ समरथ होग्रो व्याकरण जैन वाणी वणी
लघु हक ग्रपर दधि पलवे तो प्रसाद ब्रह्मा तणो।

१०६ ५। कवि ने द्वारका वर्णन प्रसंग में रचना के प्रारम्भ में ही अपने उक्ति वैचित्र्य और काव्य कौशल का परिचय दिया है —

बसहिं घर घर वेहल वाहि हरि दीध वहेलो,
हुकम ग्राप जदि हुग्रा हलाकरि करो हवेलो।
कनक धात कट्टाइ नाम घट्टोइ निहचवल,
पटसारा पट्टोइ तग जट्टोइ ग्रति निरमल।
मलीइ उलि समरण महो घभे थभ पलेपीइ,
सूर कहे नरलोक मे दूजो देपीइ ॥३॥

१०७ ५। तदुपरान्त कवि ने बताया है कि एक दिन श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ रथ में बैठकर नरकासुर के द्वार पर गये कृष्ण और नरकासुर दोनों ही लडे किंतु किसी की हार जीत नहीं हुई।[2] तब सत्यभामा ने 'कान मार जो वाना' कहा और नरकासुर के प्राण उड गये।[3] कृष्ण ने इस प्रकार नरकासुर का सहार कर सोलह हजार नारियों का उद्धार किया और उन्हें अपने महल मे ले आये।[4] आगे कवि ने राजा भीष्मक उसकी राजधानी कुन्दनपुर और राजकुमारी रुक्मिणी का वर्णन किया है।[5] राजा, रानी और राजकुमार रुक्मया रुक्मिणी

---

१ — प्र थाक ८७५। २ — छंद स० ६। ३ — छंद स० ६।
४ — छंद स० ७। ५ — छंद स० ९।

के विवाह की चिंता करते हुए योग्य वर के विषय मे विचार करते हैं।[१] राजा भीष्मक कृष्ण को रुक्मिणी के योग्य वर बताते हुए कृष्ण का महत्व बताते है।[२]

१०८ ५। रुक्मैया ने उतर देते हुए राजा से कहा 'हे राजा! वृद्धावस्था मे आपकी बुद्धि नष्ट हो गई है। कृष्ण जाति का अहीर है। कंधे पर कंबल डालकर पराई स्त्रियों के साथ दही का स्वाद लेता रहा है। वह काले वर्ण का है और दो पिताओं का पुत्र है। आपकी बुद्धि चली गई है जो आप उसको अपना जामाता बनाना चाहते हो'।[३] राजा ने अपने पुत्र को समझाते हुए कहा— "शिव, इंद्र और ब्रह्मा भी परमेश्वर श्री कृष्ण की चरण सेवा की इच्छा करते हैं। इसलिये कृष्ण को ही तारण वर लाना चाहिये।[४] श्री कृष्ण वास्तव मे नारायण हैं। तू शनि की तरह बैठा है, इसलिए अज्ञान की बातें करता है"।[५] रुक्मैया क्रोधित होता हुआ राजा के सामने से उठ गया। रुक्मैया ने शिशुपाल को रुक्मिणी के विवाह हेतु लग्न पत्रिका भेजी।[६] शिशुपाल की बरात रवाना हुई तब अनेक प्रकार के अपशकुन हुए जिसका वर्णन कवि ने विस्तार पूर्वक किया है।[७]

१०९ ५। कवि ने रुक्मिणी विवाह के अवसर पर कुन्दनपुर की हुई सजावट का वर्णन करते हुए सखियों के उत्साह और रुक्मिणी के रुदन का उल्लेख किया है। इसी अवसर पर एक ब्राह्मण रुक्मिणी के पास आया जिसको रुक्मिणी ने भाई कहकर सम्बोधित किया।[८] रुक्मिणी ने अपने काजलयुक्त आँसुओं की स्याही और नख की लेखनी द्वारा कृष्ण के नाम पत्र लिखा। रुक्मिणी ने लिखा 'हे कृष्ण! मैं एक क्षण नहीं भूल सकती हूं किंतु आपने मुझे भुला रखा है। जब कोई मुझे हाथ पकड़ विवाह कर ले जायेगा तो आपका क्या सम्मान रहेगा।'[९] ब्राह्मण ने कुन्दनपुर से द्वारका के लिए प्रस्थान किया। रात होने पर मार्ग में सो रहा। प्रात काल जागने पर द्वारका में उठा।[१०] ब्राह्मण ने प्रसन्नता पूर्वक कृष्ण के पास पहुँच कर रुक्मिणी का पत्र समर्पित किया और कहा— "राजा भीष्मक की राजकुमारी ने मुझे भेजा है, उसने महादुखित होकर पत्र लिखा है। यह पढ़िये!"[११] रुक्मिणी का पत्र देखकर कृष्ण की आँखों में आंसू आ गये तब कृष्ण ने पढ़कर सुनाने के लिए पत्र ब्राह्मण को दिया —

अपर देपि अपिथा आप आसू भराया,
तदि कागद तिहां दीधा सबद द्विज वाँचि सुणाया।
हूँ बाद राउली राज साहिब मा हुंदा,
हूं सदा सुहागण नारि साप भरे नाग सुरिंदा।
ससपाल जान सजी आ थका कहो आइ चडीओ कडे।
कोई न कहे आज आवे कृसन प्राण छोडि रुपमणि पड़े॥[१२]

---

१ — छंद स० १०–१२। २ — छंद स० १३। ३ — छंद स० १४।
४ — छंद स० १५। ५ — छंद स० १७। ६ — [illegible]

नाग तणी नागिणी परणि नें जाइ परउ को,
सीह तणी सीहणी जोर ले जाइ जबु को।
हंसी तणी हंसीणी मयन लेवा श्रो मपे,
जोर श्रा हदी जोडि राह लीतर किम रवे।
महाराज जुद्ध करता मेहर कहां भडक्क न करो कही।
महणार मथन न मलो मुनें तो तिमप प्राण रष्णु नही।[1]

११० ५। कृष्ण न मेघ-पवन रथ मगा कर उसमे वेगवान घोडे जुतवाये। ब्राह्मण को साथ बैठाया। धनुष बाण सजाया और कुण्डनपुर में आकर डेरा डहराव किया।[2] ब्राह्मण ने रथ से उतर कर रुक्मिणी को कृष्ण क आगमन की सूचना दी। राजा भीष्मक न कृष्ण का आगमन जानकर प्रसन्नता प्रकट की और ब्राह्मण को दक्षिणा दी।[3] बलदेव भी कृष्ण से आ मिले। भीष्मक को बहुत सुख हुआ।[4]

१११ ५। रुक्मिणी क लिए देवी पूजन के अवसर पर ही श्रीकृष्ण स मिलने का अवसर था इसलिए रुक्मिणी न अपने माता पिता से देवी पूजन क लिए आज्ञा मांगी।[5] प्रस्तुत काव्य क इस प्रसंग म एक विलक्षणता है कि राजा भीष्मक देव पूजन क विषय में शिशुपाल से भी अनुमति प्राप्त कर लेते हैं —

भीमक चाकर भेजीउ पूछेजा ससवाल।
देवी पूजण दीकरी करि आवे ततकाल ॥ ३४ ॥

११२ ५। रुक्मिणी अम्बिका-पूजन के लिए चली तो शिशुपाल ने सुरक्षा का भारी प्रबन्ध किया।[6] सुरक्षा का ऐसा प्रबन्ध देखकर रुक्मिणी चिन्तित हुई कि इतने योद्धा कब मारे जावेंगे और कब यह कृष्ण का वरण कर सकेगी।[7] कृष्ण न सेना के बीच में से होकर रुक्मिणी का हाथ पकड कर उसको अपने रथ में ले लिया।[8] शिशुपाल देखता ही रह गया और दुलहिन को यादव ले गये। बरात में हडबडी मच गई और कन्या पक्ष मे खलबली मच गई।[9]

आगे युद्ध का वर्णन मुख्यत बेअख्खरी छन्द के अन्तर्गत किया गया है। यह वर्णन रूढ़िगत होने हुए भी यथार्थ लगता है।

---

१ – छन्द सं० १७।
२ – छन्द सं० २८–२९।
३ – छन्द सं० ३०–३१।
४ – छन्द सं० ३३।
५ – छन्द सं० ३६।
६ – छन्द सं० ३७।
७ – छन्द सं० ४०।
८ – छन्द सं० ४२ ४३।
९ – छन्द सं० ४७ ५५।

॥ कवित छप्पय ॥

भले लोह घमसाण पाण असुरा पहाड ।
जोगाण डाहण जरप असप मप लेग्रण आहार ।
यु का काल जकूरू मून मेरज इम मावे ।
सामल पुत्र जे मग पम आमीम ज आवे ।
गिरजा अंत ले गई गगन लगस पवन वागो लरत ।
सुण तान तणा सामलि सवद गिवरी कय हुउ गिरत ॥ [१]

११३ ५ । श्री कृष्ण ने रुक्मया का उसके सिर के वस्त्र से रथ में बाध लिया । शिशुपाल और जरासंध भी कृष्ण से परास्त हो गये ।[२] रुक्मिणी ने अपने भाई की बंधना वस्था में दुःख प्रकट किया और बलभद्र ने श्रीकृष्ण को इस विषय में उपालम्भ दिया तो श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को मुक्त कर दिया ।[३]

११४ ५ । रुक्मिणी के साथ माधव द्वारिका पहुँचे ।[४] कवि ने श्रीकृष्ण के लिए रघुराई शब्द का भी प्रयोग किया है । द्वारिका में श्रीकृष्ण सेनिका सहित पहुँच और वसुदेव देवकी से मिले । [५] देवकी ने ब्राह्मणों को बुलाकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह का मुहूर्त पूछा तो ब्राह्मणों ने कहा "हरि ने रुक्मिणी का हाथ पकड़ा तभी पाणिग्रहण-संस्कार हो गया ।"[६]

११५ ५ । विवाह में कई प्रसंग में हुए हैं । ब्राह्मणों ने पाणिग्रहण मंत्र की उत्तर के बिना ही पुनः पाणिग्रहण संस्कार करवाया है ।[७] विवाह के बाद रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन इस प्रकार किया है ।

कुसन मलण कारणें कीआ आभ्रपण वेहा,
भमरा भामिया भमर अधर प्रवाली एहा ।
हरीआ लङ्क गति हंस कमल ज्यु कमल विकासे,
दसण बीज दाडिम्म सीस मंझि चंद प्रकासे ।
नासिका कीर सोभे विकट वेणी सेस विराजियो ।
सिणगार हार सुन्दर सझे सेज रमेवा सझीयो ॥[८]

---

१ – छंद सं० ५७ ।
२ – छंद सं० ५८ ।
३ – छंद सं० ५९ ।
४ – छंद सं० ६० ।
५ – छंद सं० ६१ ।
६ – छंद सं० ६२–६४ ।
७ – छंद सं० ६५ ।
८ – छंद सं० ६७ ।

११६ ५। काव्य के अन्त में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का समागम वर्णन किया गया है जिसमें कवि ने मर्यादा का पूर्ण रूपेण पालन किया है —

> बिहुँ मोटोला छांड वणो वणो नद नदन वागा,
> महा रूप रुकमणी आइ ऊभी मुख आगा।
> जदि आप उठिया तूठाआ दिखण दिलापा,
> एक रूप होइ अधिक विरुद्ध अल करग मिलाया।
> सास्त्र गरथ जायो सहो कहो सुणो दीठा कवी,
> चतुर स नाम सजा चढै एह सुख जाणै तु ही ॥ [1]

इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

इति श्री रुकमणी हरण सपूरण ॥ १८०४। चैत्र सुदि सोम लिखत पं० कीर्ति कुशल गणि वाचनार्थ चिरंजीवी गुलाबचंद तथा रंग जी श्री मानकूआ मध्ये। श्री ॥

(५) मुरारीदान बारहठ कृत "विजय-विनोद"

११७ ५। कवि ने प्रारम्भ में गणेश स्तवन करते हुए सरस्वती की वन्दना की है [2] तदुपरान्त कवि ने रुक्मणी हरण सम्बन्धी कथा का महत्व बताया है। [3] कवि ने कुन्दनपुर का वर्णन विस्तार से किया है। जिसमें कवि की वस्तु वर्णन प्रतिभा प्रकट होती है। वाटिका वर्णन में पेड़ पौधों के नाम भी विस्तार से बताये गये हैं —

> कुनणापुर भीसम राज करै। धर सारीय ऊपर छत्र धरै ॥
> तिणारै सह मिंदर हेम तणा। घणा मोलाय नग जडाव घणा ॥
> जालिया विच हीर पना जडिया। परदा जरियाफ तणा पडिया ॥
> अन गंध सुगंध रा बी अतरा। कसतूर कपूर कुम कुमरा ॥
> बिच बाग बडा रसता बणिया। इस ऊजल सोनल ऊफणिया ॥
> छडकाव कुम कुमरा छडकै। कुसमाद गुलाब कला तडकै ॥
> राय बेल चबेलिय मालसरी। केवडा केतकी मचकियाँ केसरी ॥
> जिहा पाडल चंपका जाय जुही। सोया गुल नोरंग रंग सही ॥ [4]

११८ ५। कवि ने राजा भीष्मक के ऐश्वर्य न्याय दण्डविधान और काव्य प्रेम आदि का भी वर्णन किया है। [5] तदुपरान्त कवि ने भीष्मक की सन्तानों का संक्षिप्त वर्णन

---

१ – छंद सं० ६८।
२ – छंद सं० १–२।
३ – छंद सं० ४।
४ – छंद सं० ६–६।
५ – छंद सं० १४–२३।

करते हुए रुक्मिणी का वर्णन किया है। रुक्मिणी के वर्णन को कवि ने थोड़े ही शब्दों मे लिखा है।[1] राजा भीष्मक श्रीकृष्ण से रुक्मिणी का विवाह करना चाहते हैं तो रुक्मैया स्पष्ट शब्दों मे उनकी निंदा करता है—

> किण भात अहीर सगा करिये। ओछो मत नीच तो आदरिय॥
> माय जेणा जसोदाय बृज म। है नंदराय पिता नृप जाणत है॥[2]
> कहिसा पण तात खिमा करजो। घर धीरत ग्यान हिंदे धरजो॥
> आणिया ओलमा उण ज्वान इसा। दुख दायक मा पिता बाल दिसा॥[3]

राजा श्रीकृष्ण की महिमा बखानते हुए रुक्मैया को समझाने का प्रयत्न करते हैं कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और सच्चे क्षत्रिय के रूप मे द्विजा और दीनों के सहायक हैं। रुक्मैया अहंकार में अपना ज्ञान को भूल गया है।[4] यदुपति कृष्ण के समान अन्य कोई वीर नहीं है।[5] आगे रुक्मैया कहता है, कृष्ण ने अपने मामा कंस को मार कर उसके वंश का उच्छेद कर दिया, दासी की ओर चित लगाया इनकी बहिन ने एक साथ पाच पुरुषों से विवाह किया और लोक लज्जा का कोई विचार नहीं किया। ऐसे कृष्ण से राजकुमारी का विवाह करना सर्वथा अनुचित होगा।

११६ ५। भीष्मक श्रीकृष्ण के परम ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते है कि कृष्ण वास्तव में विष्णु हैं और रुक्मिणी के रूप में साक्षात् लक्ष्मी ने अवतार लिया है[6] जिसने अघासुर शकटासुर धेनकासुर जैसे दैत्यों का विनाश किया, कालिय नाग का दमन किया गोवर्धन पर्वत को धारण किया वह कृष्ण साक्षात विष्णु ही है।[7] राजा ने अनेकों अवतारों का वर्णन करते हुए कृष्णावतार की महिमा बताई है।[8] रुक्मैया ने शिशुपाल जैसे राजा से ही रुक्मिणी के विवाह का निश्चय प्रकट करते हुए एक ब्राह्मण के द्वारा विवाह का मुहूर्त निश्चित कर शिशुपाल के पास लग्नपत्रिका भेज दी।[9] ब्राह्मण ने ■ देरी पहुँच कर लग्नपत्रिका शिशुपाल को दी।[10] शिशुपाल ने उत्साहपूर्वक विवाह की तैयारी की और यथासमय कुन्दनपुर के लिए प्रस्थान किया। कवि ने शिशुपाल के मार्ग में होने वाले अपशकुनों का भी वर्णन किया है।[11]

---

१ — छंद सं० २५–२६।
२ — छंद सं० ३१।
३ — छंद सं० ३६।
४ — छंद सं० ४०–४१।
५ — छंद सं० ४२।
६ — छंद सं० ४८–५०।
७ — छंद सं० ५२ ५३।
८ — छंद सं० ५५–५६।
९ — छंद सं० ६१–६२।
१० — छंद सं० ६५–६६।
११ — छन्द सं० ७२–७४।

१२० ५। कुन्दनपुर में उत्साहपूर्वक रुक्मिणी के विवाह की तैयारी होती है। रुक्मिणी की सखियां प्रसन्न हैं किन्तु उनके बीच रुक्मिणी खिन्न रहती है। रुक्मिणी ने किसी तरह पत्र लिख कर ब्राह्मण को दिया और कहा कृष्ण को मेरा दुःख कहना। ब्राह्मण ने विचार किया, दूर जाना है और सूर्य अस्त हो गया है —

सह ग्यत करे इण भात सखी, बिच हेत जाय रुक्मा बिनती ॥
लिखमी किण भात सू लिखिया, दिज हेवण कागद हाथ दीयौ ॥
जगपति जदूपति जाहि जठे, अति आतुर वेग लै आय घटे ॥
कर कागद लै दुज सोच कीयौ, अलगो घर सुरज आथमीयौ ॥ [1]

१२१ ५। ब्राह्मण रात में सो रहा किन्तु प्रातःकाल होते ही उसको द्वारका के दर्शन हुए। कवि ने रुचि पूर्वक द्वारका का वर्णन किया है। [2] श्रीकृष्ण की उदारता राजसी रूप और सुन्दरता का वर्णन भी कवि ने विस्तार से किया है। [3] ब्राह्मण ने आशीर्वाद दे कर रुक्मिणी का पत्र श्रीकृष्ण को समर्पित किया। रुक्मिणी का पत्र [4] पढ़ते ही हरि कुन्दनपुर के लिए रवाना हो गये। श्रीकृष्ण धनुष बाण सजा कर और कुन्दनपुर का मार्ग जानने वाले पुरोहित को साथ लेकर अपने रथ के घोड़ों को तेजी से चलाते हुए तुरंत ही कुन्दनपुर में पहुँचे गए। [5]

१२२ ५। बलदेव ने श्रीकृष्ण को ब्राह्मण सहित कुन्दनपुर की ओर गया हुआ सुना तो वे भी सैनिकों सहित युद्ध की तैयारी कर श्रीकृष्ण से जा मिले। श्रीकृष्ण और बलदेव ने सैनिकों सहित कुन्दनपुर के नर नारियों को बहुत प्रभावित किया। नर नारियों ने यही मनोकामना की कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से हो। [6]

१२३ ५। राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण बलदेव का पूर्णरूपेण स्वागत-सत्कार किया। श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर शत्रु दहल गये। रुक्मिणी ने अपने परिवार वालों से पूछकर देवी मन्दिर में पूजन के लिए अपनी सहेलियों सहित प्रस्थान किया। [7]

१२४ ५। अन्य काव्यों से प्रस्तुत काव्य में दुर्गा पूजन के प्रसंग में एक भिन्नता है कि मन्दिर में मिलने का संकेत रुक्मिणी के पत्र में नहीं दिया गया है। विरोधी पक्ष ने रुक्मिणी की सुरक्षा का पूरा प्रबंध किया। [8] किन्तु कृष्ण ने इसी अवसर को हरण के

---

१ – छन्द सं० ७८–७९।
२ – छन्द सं० ८०–९०।
३ – छन्द सं० १०१–१०७।
४ – छन्द सं० ११०–११३।
५ – छन्द सं० ११४–११५।
६ – छन्द सं० ११९–१२१।
७ – छन्द सं० १२२।
८ – छन्द सं० १२६–१२९।

लिए सर्वथा उपयुक्त जान कर रुक्मिणी का हरण कर लिया " हरि आप री लख हरि रे हरि "।[1]

१२५ ५। कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का हरण जानकर शिशुपाल युद्ध के लिए तत्पर हो गया।[2]

कवि ने युद्ध का वर्णन विस्तार से किया है।[3] युद्ध मे शिशुपाल और रुक्मैयादि की पराजय हुई। श्रीकृष्ण ने रुक्मया को बाध लिया तब रुक्मैया ने दसो ऊंगलिया मुह में देते हुए क्षमा प्रार्थना की। राजस्थान में दसो ऊंगलिया मुह में देकर क्षमा प्रार्थना करने की प्राचीन प्रथा है जिसको 'आडिया खाना' कहा जाता है। रुक्मया ने मृगया के बहाने जगल में ही निवास किया और कुदनपुर मे नही जा कर एक नया नगर बसाया।[4]

१२६ ५। कृष्ण द्वारा हुई विजय का समाचार जानकर द्वारका वासियो मे उत्साह और आनन्द की लहर दौड गई और वे आगे जा कर श्रीकृष्ण से मिले।[5] पार्वती और कमला आरती करती हुई आई।[6] श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने वसुदेव और देवकी के समीप जाकर अभिवादन किया।[7]

१२७ ५। कवि ने आगे कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन किया है।[8] तदुपरात कवि ने रुक्मिणी के शिख-नख शृगार का वर्णन करते हुए लिखा है[9] जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार है —

> त्रिवली त्रिव प्राण वणी वनिता लहरी महरी रसरी सलता ॥
> कटि केहर जाण जघा जुगली कबिया तिक उलट भोणाफली ॥
> महगात तजे हुद एम लसे मण सौटीय मगल धाम भसे ॥
> वनिता इम नूपरीया वणीया, जाणे जेहडीया बचडा जणीया ॥
> पद पकज वालचलै पगरा, मडी पग मह प्रभू मगरा ॥
> अण वट निपट अनोप मय, नख चलता हूत मय नमय ॥[1]

१२८ ५। कवि ने रुक्मिणी के प्रद्युम्न नामक महाराजकुमार को उत्पन्न होने और पटरानी होने का एव कृष्ण रुक्मिणी की रति क्रीडा का भी सक्षेप मे वर्णन किया है —

---

१ — छद स० १३२।
२ — छद स० १३४।
३ — छद स० १३५–१७०।
४ — छद स० १८०।
५ — छद स० १८६।
६ — छद स० १८८।
७ — छद स० १८६।
८ — छद स० १६३–१६६।
६ — छद स० २०१–२१६।
१० — छद स० २१७-२१६।

रमराग सुणे अनुराग रता, तर जाण तजाल कनक लता ॥
नित रति करे रट रित नई, मन तन हुआ मिल एक मई ॥
निज पूत हुआ प्रद्मन जिसा पातरा प्रकटे अनुरध इसा ॥
महराणीय पाटतणा रुगमा, मुख बद रटे भरतार रमा ॥ [1]

१२६ ५। कवि ने अंत में श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमेश्वर रूप का और सबल करते हुए उनकी महिमा का वर्णन किया है। [2]

विजय विवाह' का अपर नाम 'गुण विजे व्याह' है [3] प्रस्तुत रचना २४२ छंदों में है जिनमें गाहा, त्रोटक और छप्पय कविता का समावेश हुआ है। इस रचना का परिचय डा० आनंद प्रकाशजी दीक्षित के एक निबंध में प्राप्त होता है। [4] इस कृति का र० का० वि० सं० १७७५ है। श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा प्रेषित जिस प्रति के आधार पर श्री दीक्षित जी ने अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है उसमें कर्ता का नाम उपलब्ध नहीं है किन्तु अन्य प्रतियों में कर्ता का नाम स्पष्ट है। स्व० रामकरणजी आसोपा, जोधपुर के संग्रह में प्राप्त प्रति में रचना के अंत में कर्ता मुरारदान जी का नाम इस प्रकार है —

कवित्त

तू गुण सागर परम तुही निरगुण परमेश्वर ॥
तू अकरण अन करण करम तु ही करुणाकर ॥
तू निरजण निराकार तु ही रजन रुखमा रे ॥
तू निकलक निरधार तु ही आधार हमारे ॥
वृजराज कवर हिक विनना, अरज राज सामल दूती ॥
मुरार देत मुरारि दिस प्रेम भगती द्यो जगपती ॥ [5]

सम्पूर्ण विजे व्याह मुरारदान कृत

१३० ५ रचना में पृथ्वीराज कृत 'वेलि' जैसा काव्यसौष्ठव नहीं है किन्तु युद्ध, विरह नख शिख निरूपण और नगर वर्णन आदि की दृष्टि से कवि ने अपने मनोयोग और स्वतंत्र विचारों का परिचय दिया है।

---

१ – छंद सं० २२१–२२४। २ – छंद सं० २२७–२३४।

३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान और राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर की प्रतियां।

४ – गुण विजे व्याह, मरुभारती, पिलानी, वर्ष ८ अंक २, पृ० १९।

५ – छन्द सं० २३५।

(६) विठ्ठलदास कृत रुक्मिणी-हरण

१३१ ५। विठ्ठलदास कृत रुक्मिणी हरण के प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण में सरस्वती वन्दना की है।[1] मंगलाचरण के उपरान्त कवि ने कृष्णप्रसाद की रचना का उद्देश्य बताते हुए विदर्भदेश राजा भीष्मक और राजकुमारी रुक्मिणी का उल्लेख किया है। रुक्मिणी के विवाह के सम्बन्ध में राजा चिन्ता प्रकट करता हुआ कृष्ण को वर बनाने का प्रस्ताव रखता है। राजकुमार रुक्मैया के विरोध प्रकट करने पर भी भीष्मक विभिन्न अवतारों का वर्णन करता हुआ श्री कृष्ण को साक्षात् विष्णु का अवतार बताता है। रुक्मैया शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है तो रुक्मिणी रोती हुई खान-पान छोड़ देती है।

१३२ ५। शिशुपाल विवाह के लिए तैयारी करता है। बारात में अनेक म्लेच्छ और दानव एकत्रित हो जाते हैं—

छन्द-भुजंगी

मिले म्लेच्छ घोर जिके अंग मोटा मिले दाणवा वस दाठीक दोटा।
मिले ग्रन अनेक अनेक खेमा मिले, काल वाणा जिके लंक वेसा ॥२९॥
मिले भाभड़ा भूत भाइंग भला मिले माण मयद एकल मला।
मिले साहजादा जिके साथ सूरा, मिल्लगेह बाणी जिके अग्र पूरा ॥३०॥
मिले कोटि नाद मिले कोड ध्यादी मिले कोड बाजा मिले कोडवादी।
मिले कोड पैखवरा कोड बाजी, मिले कोड गोरवश कोड गाजी ॥३१॥

१३३ ५। विठ्ठलदास के रुक्मिणी हरण में राजा भीष्मक स्वयं ब्राह्मण को बुला कर उसके द्वारा कृष्ण के नाम पत्र भेजते हैं।[2] पत्र में कृष्ण रुक्मिणी का सम्बन्ध मीन और जल, चन्द्र और चकोर तथा चातक और मेघ का बताया गया है।[3]

१३४ ५। कवि ने ब्राह्मण के मार्ग में सो जाने और द्वारका में जागने द्वारका के दृश्यों से चकित होने और कृष्ण के पास पहुंचने आदि का संक्षिप्त वर्णन करते हुए कृष्ण के प्रति विप्र द्वारा रुक्मिणी के विषय में विस्तृत प्रार्थना करवाई है।

१३५ ५। कृष्ण और बलदेव सैनिक तैयारी कर विदर्भ पहुंचते हैं। इस प्रसंग में कवि ने यह ध्यान नहीं रखा कि कृष्ण के पास सेना सम्बन्धी तैयारी का समय नहीं था।

---

१ – छन्द सं० १–४।
२ – डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित "रुक्मणी हरण विठ्ठलदास रो कह्यो" शोध पत्रिका उदयपुर, भाग ११, अंक १।
– वही, छन्द सं० ४८, ४९।

विदर्भ पहुंचने पर कृष्ण का स्वागत हुआ और ब्राह्मण को दक्षिणा प्राप्त हुई। कवि ने तदुपरान्त कृष्ण और शिशुपाल की तुलना करते हुए दोनों को क्रमशः सागर और निशा, समुद्र और सरोवर तथा देव और असुर बताया है।[1]

१३६ ५। अम्बिका पूजन के अवसर पर कृष्ण से भेंट होने की सम्भावना निश्चित मानती हुई रुक्मिणी शृंगार धारण करती है।[2]

१३७ ५। श्री कृष्ण अम्बिका पूजन के पश्चात् रुक्मिणी का हरण करते हैं। हरण का समाचार शिशुपाल को मिलता है। नगर में और शिशुपाल के शिविर में व्याकुलता व्याप्त हो जाती है। युद्ध अवश्यम्भावी हो जाता है।[3]

कवि ने युद्ध वर्णन में अपनी विशेष रुचि प्रकट की है। युद्ध वाद्यों का नाद कायरों का कंपन शस्त्रों का चलना, वीरों का ललकारना आदि चित्रण आकर्षक हुए हैं। शिशुपाल पक्ष के असुर 'अल्ला'' का उच्चारण करते हुए बताये गये हैं।[4]

१३८ ५। कृष्ण के आगे शिशुपाल, जरासन्ध और रुक्मया की सेनाएं परास्त हो जाती हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मैया को विरूप कर रथ से बांध लेते हैं।[5]

१३९ ५। विवाह वर्णन में भोजन, नृत्य और संगीत का चित्रण है। ज्ञात होता है कि कवि को संगीत और नृत्यादि का विशेष ज्ञान था।[6] कवि ने अन्त में रुक्मिणी हरण के पाठ का माहात्म्य बताया है।[7]

१४० ५ विट्ठलदास कृत "रुक्मिणी हरण" में दूहा, गाहा कुण्डलिया, मोतियदाम नाराच, भुजंगी, त्रोटक गाहा चौसर मुडेल, अडिल्ल कवित्त, पद्धरी, दमलाद, अर्द्धनाराच हणूफाल कामली, कामली मोहन, मेणावला, डोढो मोतियदाम रसावली वे अक्षरी, चौपाई साटक तथा पाल्गत नामक १६८ छंदों का समावेश हुआ है। कवि ने शिशुपाल के पक्ष वालों को स्पष्ट रूपेण मुसलमान लिखते हुए उनके विरोध में कृष्ण की विजय बताई है। कवि का लक्ष्य रुक्मिणी के रूप में भारत लक्ष्मी का दुष्ट दल संहारक श्री कृष्ण द्वारा उद्धार की ओर रहा है।

---

१ – डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, 'रुक्मिणी हरण विट्ठलदास रो कह्यो," शोध पत्रिका, उदयपुर, भाग ११, अंक १।

२ – वही, छन्द सं० १०४–१०५।

३ – छन्द सं० ११२–११३।

४ – छन्द सं० १२३।

५ – छन्द सं० १७६–१७६।

६ – छन्द सं० १६०।

७ – छन्द सं० १६८।

७ किशन-किलोल

१४१ ५। कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक 'किशन किलोल' नामक काव्य राजकीय अभिलेखागार बीकानेर में पुराने रिकार्ड के साथ उपलब्ध हुआ है।[1] इस काव्य की रचना वि० सं० १७८७ द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ११ शुक्रवार को हुई है और इस काव्य का कर्ता श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा आसदास लिखा गया है।[2] किन्तु काव्य कर्ता का नाम रूपराम भी संभव है—

> रूपराम हिरदे रटौ रटो धरम सू रंग।
> आस दास यू उच्चरै सदा मिले सतसग ॥[3]

१४२ ५। ग्रन्थ का रचना काल इस प्रकार बताया है—

अथ ग्रन्थ संवत् वरणण—

> संमत १८८७ रा भाद्रवा दुतीक सुद ११ शुक्रवार
> सतरा से सितियासिये दुती भाद्रवो रेख।
> दिवस शुक एकादशी पख उजवालो पेख ॥[4]

१४३ ५। कवि ने काव्य में छन्द संख्या का परिमाण बताते हुए लिखा है—

अथ दोहा गुण संख्या वरणण—

> छहु छन्द माहो गिणो, तथ दोहा इकतीस।
> कवित एक अटकल कह्या कीजा माफ कवीस ॥

१४४ ५। कवि ने राजस्थानी गद्य में वर्ण्य विषयों के शीर्षक भी लिखे हैं—

१ अथ ससिपाल नु लगन लिखियो तिण वेला ग्रह वरणण, पद्य ४।
२ अथ ससिपाल नु अपशकुन हुवा सु लिख्यते।
३ श्रीकृष्ण रथ असवार हुआ ने शुभ शकुन हुआ-ते लिख्यते छन्द झूपताली।
४ अथ ऊठा रो वरणण रंग, रूप गुण अवगुण रोग आदि।
५ अथ सावत वरणण, सावाना रा सिणगार।
६ अथ छतीस आवध वरणण।

---

१ – डिंगल का एक अज्ञात कृष्ण काव्य, किशन किलोल, श्री अगरचन्द नाहटा, मरु भारती, वर्ष १०, अंक २ पृ० ७२-७५।
२ – वही। ३ – वही। ४ – वही।

७ अथ अक्षोहिणी सेना तत्र चतुरग सेना वरणण।
८ अथ कुन्दनपुर रे गोरवें पैसता शुभ शुकुन हुवा सो लिख्यते।
९ अथ कृष्णजी रो श्रृंगार वरणण।
१० अथ श्रीरुकमणी जी सोलह सिणगार करे सो वरणण।
११ अथ किसनजी सू रुकमणीजी वु मिलण रा शुभ शकुन हुआसो लिखे छै।
१२ अथ सिसपाल जुध समे अपसुगुन आपरी हार रा सुणिया पर मानिया नही सु
    लिख्यते।
१३ अथ रुकमणी विवाह वरणण जुध सम छै।
१४ इति श्री छन्द भपताल युद्ध कथन सम्पूर्ण पद्यांक १२० तक।
१५ अथ द्वारका से सामेलो वरणण।
१६ अथ वाजा छतीस जात रो विगत छद जात भुजगी।
१७ अथ छतीस राग रागणी वरणण।
१८ अथ कवर प्रद्युमन। वार्ता सेवा करे छे प्रद्युम्न जिसा मास ४ सम्व इतरे धरे
    रसा जीवन अवस्था नु प्राप्त हुआ छै।
१९ अथ बतीस लक्षण वरणण छद मोती दाम।
२० अथ चवदह विद्या वरणण।
२१ अथ कवर प्रद्युमन विवाह वरणण।
२२ अथ छन्न ऋतु वरणण।

१४८ ५। कवि न कथा निर्वाह क साथ ही का यगत अनेक विषयो का वर्णन मनायोग पूर्वक किया है। वस्तु वर्णन मे कवि को सफल कहा जा सकता है —

अथ उटां रो वरण

तनावाल आवियार आरी रथ का पु जालें सभालें प्रीत कर पाधका।
प जानग नट पाकेट वट पिडरा मोरचा मुचे नह मारकी मडरा ॥१॥
बेवडे बाहुव गुडाना मिघरा, कूनर कथ ज्यों कसे यघ कधरा।
टामकी कमन नें चुवे मद चावडो कदेई न थाके न चाहे कावडी, ॥२॥
निपोडी नली म ताकडो तलोरा, यूथ गिरमेर ज्यू नोपना पलोरा।
भाक नव हाय करडो निजर भाकता, नेस कढ़ गाढ गढ शोस पह
    माखता ॥३॥

अथ छतीस आवध वरणण—

रजरा वा क बाघी खगा खत्रिया, धूठ ठाला पडी जडी लोह पत्रिया ।
भूवालो भोड भूयाण पिण भीडिया, बाघ बुगदा छुरा राछरा वीडिया ॥१॥

अथ रुक्मिणी जी सोलह शृ गार कर सो वरणण—

मजिया मजने अगो अग आजरा ओपिया आगणी जाण रितराजरे ।
पगा रा नगा जिम इसा नख ओपीया, रूपरी रूखडी लाल फल रोपिया ॥
तुपरे ऊपरे सनूरे नाम रा जग घर जाणिया काम रै काम रा ।
पान पग ऊपरे ओंगुलो पचरे, सोभारे सरोवर काछवा सचरे ॥
जाभरा हू जगत पगा लै पागरे कूकिया मोरिया काम * कागरे ।
रग रा रग ले गाघरे घेग्गिया, फरहरा कामरे कामरे आगले फेरिया ॥
ओपिया मुहारा ओपमा अकिया बिराजे कामरै रत्थ रा बाकिया ।
रुकमी बिदका मध भ्रू हो कयो, सोहियो रूप रा रथ रो सारथी ॥
नासका नथ पर कीर भरीर नागियो, आपरो पास ले काम उपामियो ।
ऊजली बतीसी मोह भाले इसी, हम रा बच्चा री पात हुसे इसी ॥
नेहणी धरा हू नाग मन नीसरे बेसता पालकी कालकी बीसरे
हीडोलो पालकी कहार ले हालिया । महादल पायदल वे वली हालिया ॥

१४६ ४ । प्रस्तुत काव्य में नाम की हो नहीं वर्णन की भी विनेपता है । किशन किशोर के वर्णन मे प्रत्येक विषय की पूर्णता है । प्रति म वर्णित विषयो के शीर्षका से ज्ञात होता है कि इसमें २२ विषयो का वर्णन है । सम्बन्धित विषय के अध्ययन हेतु काव्य की पूर्ण प्रति की प्रतीक्षा रहेगी ।

१४७ ५ । श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त चारण अथवा चारण ग्रन्थो से प्रभावित कवियो के स्फुट छद भी उपलब्ध होते हैं । चारण गीत नामक छ द का एक भेद व्याहलो भी है ।[१] व्याहलो गीत के उदाहरण में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह वर्णन दिया गया है । लक्षण सहित व्याहलो गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ – पिंगल शिरोमणि म० श्री नारायण सिंह भाटी, पृ० १६२ ।

अथ व्याहलो (गीत)

दोहा— कल नल मित तिथ करो, विसम व्रत प्रस्तार ।
सो भणिये कवि व्याहलो, वरणा चरण विचार ॥

वार्ता—

इस भावन रा ने व्याहला रा च्यार द्वाला होई तद पूरा गीत कहीज । छ द्वाला दाने कहीजे भाठा दूणो, सोला द्वाला री होई सो सोहलो गीत कहीज । यथा —

विच वैठी रुकमणि नारी, हथलेवे राजकु वारी,
आए कार्तिकेय गरा ईसो, आए ब्रहमा सहित महेसो ।
दीनी हो ब्रहमा गाठ खुलाई, डोरडो नही छूटे,
वसुदेव थारो पिता बुलाई, याने कह्यॆ न छूटसी ॥१॥
देवकी हो थारी माई बुलाई, नदजी थारो बाबो बुलाई,
जसोदा थारो धाई बुलाई, व्रजवासी लोक बुलाई ।
गोकुल का सहि ग्वाल बुलाई, थारे कह्यॆ न छूटसी,
जीत्यो जीत्यो द्वारका रो राव, वसुदेव घरा बधामणी ॥२॥

इति व्याहुलो

षष्ट अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य

प्रारम्भिक परिचय

१. पद्मदास कृत "रुक्मिणी मगल"

२ रुलीराम पुजारी कृत "रुक्मिणी नारा मामा"

३. करुणा रुक्मिणी जी

४ धमीधर शर्मा कृत ख्याल रुक्मिणी मगल

५. श्री कृष्ण जी रो विनाहलो

६ कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास

७. रुक्मिणी हरण (बडा)

८. रुक्मिणी हरण (छोटा)

९. रुक्मिणी विनाहलो

१०. कान्ह जी विवाहलो

षष्ठ–अध्याय

श्री कृष्ण–रुक्मिणी–विवाह–सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य

१ ६। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्यकर्ताओं में मुख्यत दो वर्ग हैं — १ जैन कवि और २ जैनेतर कवि। दोनों ही वर्गों ने अपनी रचनाएं गेय रूप में और पूर्णत धार्मिक दृष्टि से की है। इस प्रकार की रचनाओं का आधार लोक प्रचलित आख्यान हैं जिनको कवियों ने अपनी कवि और धार्मिक मान्यतानुसार गेय रूप प्रदान कर दिया है। लोक प्रचलित रीति व्यवहारों, विचार धाराओं वेषभूषा और खान-पान आदि का इन रचनाओं में विस्तृत निरूपण हुआ है। इस प्रकार की रचनाएं जनता में मौखिक परम्परानुसार प्रचलित रही हैं फलस्वरूप इनमें परिवर्तन भी होते रहे हैं।

(१) पद्मदास कृत रुक्मिणी–मंगल

२ ६। राजस्थानी जनता में पद्मदास कृत रुक्मिणी मंगल बड़े चाव से गाया और सुना जाता है। रुक्मिणी-मंगल का अपर नाम "किसनजी रो व्यावलो" है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का सप्ताह आयोजित होता है उसी प्रकार 'व्यावलो' का भी भक्तों द्वारा सप्ताह आयोजित किया जाता है। राजस्थान में अनेक ब्राह्मण और जोगी आदि व्यावला गाने का कार्य करते हैं। व्यावले के प्रधान गायक के प्रति जनता में बहुत सम्मान होता है। वह भक्ति पूर्वक उच्च स्वर में व्यावला गाता है। उसके सहयोगी सारंगी, ढोलक और करताल आदि बजाते हुए गाने में उसकी सहायता करते हैं। जैसे २ व्यावले की कथा चलती है जनता की उपस्थिति भी उत्साहपूर्वक परिवर्द्धित होती है। जनता व्यावले की पूर्णता पर यथाशक्ति अन्न, वस्त्र और धन प्रधान गायक एवं व्यावले की पुस्तक को भेंट कर अपने आपको उऋण समझती है।

३ ६। पद्म भक्त के 'रुक्मिणी मंगल' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति संवत्

विषय में रुक्मैया रानी के समीप विचार करने पहुँचा तब रानी ने भी शिशुपाल का ही समर्थन किया। रुक्मैया ने अपनी माता की आज्ञा से गुप्त रूप से ब्राह्मण के द्वारा शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज दी।

९ ६। कवि ने रुक्मिणी के सरोवर स्नान नामक प्रसंग का समावेश करते हुए बताया है कि कृष्ण ने जल में डूबती हुई रुक्मिणी का उद्धार किया और स्वयं रुक्मिणी से विवाह करने का वचन दिया।[1]

१० ६। महल में लौटकर रुक्मिणी ने सरोवर स्नान का वृत्तान्त अपनी माता से कह सुनाया। माता ने कहा — राजा भीष्मक की कन्या होकर तुमने अहीर से बातचीत कर उचित नहीं किया। रुक्मिणी ने कहा कि उन्होंने मुझे जल में डूबते हुए बचाया है।

११ ६। रुक्मिणी ने शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेजने का समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई। ब्राह्मण और भाट लग्न पत्रिका लेकर चन्देरी रवाना हुए तो मार्ग में अनेक प्रकार के अपशकुन हुए[2]। शिशुपाल के दरबार में रुक्मिणी की लग्न पत्रिका पहुँची तो शिशुपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। शिशुपाल ने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। शिशुपाल के ज्ञानी पीपा ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से होगा तुम यह सम्बन्ध स्वीकार मत करो।[3] शिशुपाल ने दूसरे "गरजू" ज्ञानी को बुलाकर इस विषय में पूछा तब उसने विवाह का समर्थन कर दिया। गरजू ज्ञानी ने सोचा "यदि मैं शिशुपाल की इच्छा के विरुद्ध कहूँगा तो शिशुपाल मुझे नगरी से बाहर निकलवा देगा और मेरी प्राई दक्षिणा चली जावेगी"।[4] शिशुपाल की भाभी ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी लक्ष्मी की अवतार हैं। उसका विवाह कृष्ण से ही होना उचित है। तुम यह सम्बन्ध मत स्वीकार करो।[5] शिशुपाल ने भाभी की बात नहीं मानी।

१२ ६। शिशुपाल जरासंध के पास गया और कुन्दनपुर से आये हुए टीके के विषय में बातचीत की। जरासंध ने कहा कि यह सम्बन्ध अवश्य स्वीकार करो और मित्र राजाओं को सेना सहित बरात में आने का निमन्त्रण भेज दो। शिशुपाल ने बंगाल, बंगाला, कच्छभुज, मरहठा, मारू मेवाड़, मालव, सिंध, तारातम्बोल ठाठ काबुल, बुखारा, उज्जवक, दिल्ली काशी, नवल और हस्तिनापुर देशों के राजाओं को निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी देशों के राजा अपनी सेनाओं सहित चन्देरी में एकत्रित हो गये। शिशुपाल उत्साहपूर्वक विवाह की तैयारी करने लगा।[6] शिशुपाल की भाभी और अन्य रानियों ने रुक्मिणी से विवाह के लिए

---

१ — पत्र सं० ७, पद सं० १। २ — पत्र सं० २०।
३ — पत्र सं० २२ पद सं० ३। ४ — पत्र सं० २२।
५ — पत्र सं० २४। ६ — पत्र सं० ३५ ३६।

१६६१ फाल्गुन कृष्णा दशम को लिखित उपलब्ध हुई है।[1] यह रुक्मिणी मंगल गेय होने से कालान्तर में परिवर्तित होता रहा। रुक्मिणी मंगल के परिवर्तित रूप प्रकाशित हो गए हैं।[2]

४ : ६ । पद्मभगत कृत 'रुक्मिणी मंगल' का प्रारम्भ गणपति वन्दना से किया गया है।[3] मंगल लिखने का कारण कवि ने यह लिखा है कि रुक्मिणी ने कवि को मंगल लिखकर प्रकट करने की आज्ञा दी थी।[4]

५ ६ । कवि ने आगे पुनः गणपति वन्दना लिखी है। तदुपरान्त सरस्वती-वन्दना लिखते हुए गुरु वन्दना की है।[5] तदुपरान्त कवि ने तैंतीस करोड़ देवताओं का स्मरण करते हुए ब्रह्मा, विष्णु और महेश की वन्दना की है। सभी देवताओं से रुक्मिणी मंगल के निर्माण में कृपापूर्ण सहयोग की याचना की है। कवि ने मूल कथा का प्रारम्भ कुन्दनपुर नगर वर्णन से किया है। तदुपरान्त राजा भीष्मक और उनकी सन्तानों का वर्णन है।

६ ६ । एक समय नारद मुनि कुन्दनपुर में आए। राजा भीष्मक ने उनका स्वागत सत्कार किया। रुक्मिणी ने इस अवसर पर नारद की वन्दना की। नारद जी ने नन्दनन्दन कृष्ण को वर के रूप में प्राप्त करने का वरदान दिया। राजा भीष्मक ने नारदजी से रुक्मिणी के योग्य वर बताने के लिए निवेदन किया। तब नारद जी ने श्रीकृष्ण का सुझाव दिया।[6]

७ ६ । राजा भीष्मक की रानी ने रुक्मिणी के वर के विषय में नारद जी से जिज्ञासा प्रकट की तब नारद जी ने शिशुपाल को ही रुक्मिणी के योग्य वर बताया। इस प्रकार नारदजी ने राजा, रानी और रुक्मिणी के हृदय में विरोधी विचारों को जन्म देकर काव्यगत संघर्ष को जन्म दिया।

८ ६ । राजा भीष्मक और उनके राजकुमार रुक्मिणी के योग्य वर निश्चित करने हेतु विचार करने लगे तो राजा ने कृष्ण का प्रस्ताव रखा। इसके विपरीत रुक्मैया ने शिशुपाल की प्रशंसा करते हुए एकमात्र शिशुपाल को ही रुक्मिणी के योग्य वर बताया। इस

---

१ – (क)–नागरी प्रचारिणी सभा, वार्षिक खोज रिपोर्ट, १६०० ईस्वी।
(ख)–अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में सुरक्षित प्रति।
(ग)–राजस्थानी साहित्य समिति बिसाऊ द्वारा प्रकाशित।

२ – (क)–हरिप्रसाद भागीरथ जी कालका देवी रोड रामवाडी, बम्बई।
(ख)–शाह शिवकरण रामरतन दरक, इन्दौर।
(ग)–श्याम लाल हीरा लाल, श्यामकाशी प्रेस मथुरा।

३ – पद सं० १ प्रका० हरिप्रसाद भागीरथ जी बम्बई पत्र सं० १।

४ – वही। ५ – पद सं० ४, पत्र सं० २।

६ – पद सं० १, पत्र सं० ६।

पथ में रुक्मैया रानी के समीप विचार करने पहुँचा तब रानी ने भी शिशुपाल का ही समर्थन किया। रुक्मैया ने अपनी माता की आज्ञा से गुप्त रूप से ब्राह्मण के द्वारा शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज दी।

६ ६। कवि ने रुक्मिणी के सरोवर स्नान नामक प्रसंग का समावेश करते हुए बताया है कि कृष्ण ने जल में डूबती हुई रुक्मिणी का उद्धार किया और स्वयं रुक्मिणी से विवाह करने का वचन दिया।[1]

१० ६। महल में लौटकर रुक्मिणी ने सरोवर स्नान का वृत्तान्त अपनी माता से कह सुनाया। माता ने कहा — राजा भीष्मक की कन्या हो कर तुमने अहीर से बातचीत कर उचित नहीं किया। रुक्मिणी ने कहा कि उन्होंने मुझे जल में डूबते हुए बचाया है।

११ ६। रुक्मिणी ने शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेजने का समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई। ब्राह्मण और भाट लग्न पत्रिका लेकर चन्देरी रवाना हुए तो मार्ग में अनेक प्रकार के अपशकुन हुए[2]। शिशुपाल के दरबार में रुक्मिणी की लग्न पत्रिका पहुँची तो शिशुपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। शिशुपाल ने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। शिशुपाल के ज्योतिषी ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से होगा तुम यह सम्बन्ध स्वीकार मत करो।[3] शिशुपाल ने दूसरे "गरजू" जोशी को बुलाकर इस विषय में पूछा तब उसने विवाह का समर्थन कर दिया। गरजू' जोशी ने सोचा "यदि मैं शिशुपाल की इच्छा के विरुद्ध कहूँगा तो शिशुपाल मुझे नगरी से बाहर निकलवा देगा और मेरी आई दक्षिणा चली जावेगी"।[4] शिशुपाल की भाभी ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी लक्ष्मी की अवतार हैं। उसका विवाह कृष्ण से ही होना उचित है। तुम यह सम्बन्ध मत स्वीकार करो।[5] शिशुपाल ने भाभी की बात नहीं मानी।

१२ ६। शिशुपाल जरासंध के पास गया और कुन्दनपुर से आये हुए टीके के विषय में बातचीत की। जरासंध ने कहा कि यह सम्बन्ध अवश्य स्वीकार करो और मित्र राजाओं को सेना सहित बरात में आने का निमन्त्रण भेज दो। शिशुपाल ने कंकण, बंगाला, कन्नौज, मरहठा, मारू मेवाड़, मालव, सिंध तारातम्बोल लाठ काबुल बुखारा, उज्जयक मिश्र काशी, नरवल और हस्तिनापुर देशों के राजाओं को निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी देशों के राजा अपनी सेनाओं सहित चन्देरी में एकत्रित हो गये। शिशुपाल उत्साहपूर्वक विवाह की तैयारी करने लगा।[6] शिशुपाल की भाभी और अन्य रानियों ने रुक्मिणी से विवाह के लिए

---

१ – पत्र सं० ७, पद्य सं० १।
२ – पत्र सं० २०।
३ – पत्र सं० २२, पद्य सं० ३।
४ – पत्र सं० २२।
५ – पत्र सं० २४।
६ – पत्र सं० २५ ३६।

शिशुपाल का पता दिया।[1]

१३ ६। शिशुपाल की बरात रवाना होते ही अनेक अपशकुन होने लगे, उसकी माता ने बहुत समझाया, लेकिन वह नहीं माना। उसकी बरात ने कुन्दनपुर पहुँचकर नगर के पास डेरा दिया। रुक्मैया ने शिशुपाल की बरात का भली प्रकार से आदर सत्कार किया।[2] रुक्मिणी की माता 'गावडे' कहकर रुक्मिणी से बोली —

दोहा — गोरे घडी दल जोवनी, राजा भीम री नार।
घर दिखालाऊ बाई थारा, आयो म्हारो राजकुमार॥

१४ ६। रुक्मिणी ने कृष्ण को पत्र लिखने का विचार किया और पत्र लिखने बैठी[3]। रुक्मिणी कृष्ण के सिवाय किसी का नाम तक भी सुनना नहीं चाहती थी। माता ने आकर उसको शृंगार करने और तैयार होने के लिए कहा तो दुःख पर अँसुवा बहने लगी और वह कहने लगी —

मरू मरणी विस खाय कर, मुखडा न देखूं दुष्ट का।
दुष्ट का मुखडा नहीं देखूं, दुख सहा न जाय री।।

१५ ६। माता के बहुत समझाने पर भी रुक्मिणी नहीं मानी तब रुक्मैया ने शिशुपाल को बुलाया और वहां फेरे की सब तैयारी करी।[4] रुक्मैया अपने घोडे पर सवार होकर और पाँच लाख सवारों को अपने साथ लेकर शिशुपाल के डेरे की ओर रवाना हुआ।[5] इधर रुक्मणी ने सपने मे देखा कि कृष्ण उससे विवाह करने नहीं आये हैं। उसने सुदेव विप्र को बुलाया और पत्र लेकर द्वारका जाने को कहा।[6]

१६ ६। पत्रिका लेकर ब्राह्मण द्वारका की ओर रवाना हो गया। रास्ते में अच्छे शकुन हुए विप्र थक कर एक स्फटिक शिला पर सो गया।[7] जब विप्र की आँख खुली तो उसने स्वयं को द्वारका में पाया। कृष्ण उसको बालक रूप धारण कर महल तक ले गये। यहां पर कवि द्वारका की सुन्दरता का वर्णन करता है। विप्र सभा मे पहुँचकर कृष्ण के हाथ मे पत्र देता है। कृष्ण रुक्मिणी का और आदि पूछते हैं। ब्राह्मण का स्वागत सत्कार किया जाता है। भांति भांति के पकवान परोसे जाते हैं नारियां मंगलाचार गाती हैं। कृष्ण का भी शृंगार होता है। पीठी आदि होती है। द्वारका में नौबत नगाडे आदि बजने लगते हैं। कृष्ण की आरती उतारी जाती है। पाण्डवों ने भी नियत समय पर पदार्पण किया। कृष्ण

---

१ — पत्र सं० ३८–३९।
२ — पृष्ठ सं० ४४।
३ — पत्र सं० ४६–४७ छंद सं० ४, ५।
४ — पत्र संख्या ४८, छंद संख्या १५।
५ — पत्र संख्या ४९, पद संख्या ६।
६ — पत्र संख्या ५३ ५४, पद संख्या ८।
७ — पत्र संख्या ६१, पद संख्या ६।

को कुन्ती ने आशीर्वाद दिया। असंख्य करोड़ यादव इकट्ठे हो गये। बरात सजने लगी। द्वारका में मंगलगान होने लगे। शहनाईयां बजने लगी [1]। शिव इन्द्र, ब्रह्मा, दुर्गा, सब देवी देवता अपने गणों सहित आ गये लेकिन गणेशजी का कहीं पता न था। तब नारदजी ने जाकर गणेशजी को बुलाया [2]।

१७ ६। कृष्ण ने गणपति जी से कहा कि आप वहां जाकर क्या करेंगे, आप तो गढ़ की रखवाली करिये। गणेश जी बहुत प्रसन्न हुए कहा आगे जाकर क्या करेंगे, वहां तो बहुत लड़ाईयां होंगी। नारदजी ने जाकर गणपतिजी को भड़काया [3]।

कृष्ण ने बलराम को भेज कर गणेश जी को मनाया। बलराम ने कहा कि पहले आप की शादी होगी बाद में कृष्ण की। बरात सजाकर गणेश जी ऋद्धि सिद्धि से ब्याह कर ले आये। अब बरात कुन्दनपुर पहुँची। नगरवासियों ने कहा यह दूसरी बरात फिर कौन सी आई है। लेकिन जब उन्होंने देखा कि यह तो कृष्ण की बरात है तब सब नगरवासी बहुत प्रसन्न हुए। कृष्ण ब्राह्मण को रथ में बैठाकर नगर में चले। ब्राह्मण रथ से उतरकर सीधा महल में रुक्मिणी के पास गया। जब शिशुपाल और जरासंध को मालूम हुआ तो वे मन ही मन में बहुत डर गये रुक्मैया ने उनको धीरज बंधाया और कहा कि शिशुपाल की शादी रुक्मिणी से ही होगी। इधर माता ने कुल परम्परा के अनुसार रुक्मिणी को गौरी पूजन के लिए भेजा।[4]

शिशुपाल और जरासंध ने अपनी सशस्त्र सेना को रुक्मिणी की रक्षा हेतु भेजा। रथ में बैठते ही रुक्मिणी के शुभ अंग फड़कने लगे। वह मन ही मन भगवान् कृष्ण से विनती करने लगी कि मुझे आकर इस विपत्ति से उबारो।[5]

१८ ६। श्रीकृष्ण धनुष बाण हाथ में लेकर रथ में बैठे हुए आए और भरी सेना के बीच में से रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर रथ में बैठा लिया। जब यह सूचना शिशुपाल और जरासंध को मिली तो वे सेना सहित कृष्ण का पीछा करने लगे। इतने में ही बलराम भी सेना सहित आकर कृष्ण से मिल गये। भयंकर युद्ध होने लगा [6]। शिशुपाल और जरासंध युद्ध के मैदान से अपने प्राण बचा कर भाग गये। रुक्मैया क्रोध में भरकर अपनी सेना सजा कर कृष्ण के ऊपर चढ़ आया तब बलरामजी को क्रोध आया। उन्होंने कहा कि आप कहें तो मैं इसको हल से पकड़ मूसलों से मारूं। तब कृष्ण ने रुक्मैया को पकड़ उसकी मूंछें और मस्तक मूंड कर छोड़ दिया [7] रुक्मैया ने उनसे क्षमा मांगी।

---

१ — पत्र सं० ७३, पद सं० ३। २ — पत्र सं० ७५, पद सं० ३।
३ — पत्र सं० ७६, पद सं० १०। ४ — पत्र सं० ६०, पद सं० ४।
५ — पत्र सं० ६४ पद सं० १७। ६ — पत्र सं० ६७, पद सं० १८।
७ — पत्र सं० १०८, पद सं० २३।

उधर जब शिशुपाल खाली हाथ उदास मुंह घर री पहुंचा तो उसकी भाभी ने उसका मजाक उड़ाया। जब कुन्दनपुर यह खबर पहुंची कि कृष्ण रुक्मिणी का हरण करके ले गये है तब राजा भाष्मक और उसकी रानी ने अपने पुत्र को सजा और बरात की अगवानी की [1]। नगर में कलश और तोरण बजने लगे। नगर की स्त्रियां मंगलाचार के गीत गाने लगी। कृष्ण घोड़े पर चढ़कर आये और तोरण का छूकर अन्दर प्रवेश किया। फेरे आरम्भ होने के दृश्य का चित्रण कवि ने रूचि पूर्वक किया है।[2]

१९ ६। सखियां हिल मिल कर कृष्ण रुक्मिणी को जुआ खेलने को ले गई। जुआ खेलते समय वर वधू के उल्लास और वर के हारने का वर्णन भी मधुरम है ।[3]

२० ६। पहरावणी के पश्चात् बारात रवाना होती है। रुक्मिणीजी की आखें भर आती है। वह माता पिता भाई भोजाई से गले मिल कर रोने लगी —

> म्हारो मिझल्यो म्हाण्ऋण्या झुन्झुर पिंजर होय।
> रुकमण चाली बाइ सासरे मिलणा कब होय॥
> माय मिलू बाबल मिलू मिल मामा मूसाल।
> भुवा भतीज्या रिल मिलू मासी बाल गुपाल॥
> मिल मिल के सब सें मिलू आधू भीज्या जी चोर।
>
> आवो सखी सहेलियां मिलो भुजा पसार।
> अबका बिछुड्या कब मिला दूर बसेगे जाय॥

२१ ६। रुकमणी जी डोले में जा बैठी। बारात द्वारका आई। देवकी, सुभद्रा, वसुदेव आदि ने वर वधू का भली प्रकार स्वागत किया। मांगलिक कार्य किये गये। रुक्मिणी की भवका द्वारा मुंह दिखाई हुई।[4]

२२ ६। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। वर वधु की जोडी शोभायमान हो रही थी। इसके पश्चात कृष्ण का स्तुति गान है।[5]

दस दस पुत्र येक यक कन्या यह तरुणी वर दीना।

२३ ६। अंत में कवि ने 'मंगल' का महात्म्य लिखा है —

---

१ — पत्र सं० ११६ पद सं० ६। २ — पत्र सं० १२१—१२५।
३ — छंद सं० ५ पत्र सं० १३२। ४ — छंद सं० ४ पत्र सं० २८८।
५ — छंद सं० ३, पत्र सं० २९०।

राग सोरठा

जो या मगल को गावे, ज्याका पाप प्रले होय जावें ।
जा या मगल का सुहि है, जा के कोट जनम के पुन है ॥
द्वारावति आनन्द भयो, सुर नर देत असीस ॥
कह पदमइयो वैश्य वन्दी सिहासन जगदीश ॥

२४ ६ । आगे मगल के सशोधकों की प्रशस्ति इस प्रकार है —

रच्या वैश्य पदमाल यह, रुकमणि मगलसार ।
सुद्ध कियो शिवकरण जन तुक सब दई सुधार ॥
विजय ब्याव श्रीकृष्ण को रुकमणि 'स्या' वरण ॥
रामरतन निज करें लिख्यो शुद्ध कियो शिवकरण ॥
कछु पद नये बनाय के, टुटक सधि मिलाय ॥
कियो सकनाबद सब अरथा अक्षर लाय ।
मूलचन्द सुत शिवकरण दरक म् ड्व बास।
मुग्धर डोडू महेस्वरी, इद्रपुरी सुख वासु ॥[1]

२५ ६ । काय के सनाधक एक सम्पादक न उक्त प्रशस्ति म कवि पद्म को वश्य कहा है किन्तु रचना से उनका तली होना प्रकट होता है —

१ इवडो अतर हरि हरि सिसिपालइ भणइ पदमीयो तेली ।[2]

२ थाका पाप पलोटण हो, पदमो तेली माधि देस्या ।[3]

२६ ६ । पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल' एक लौकिक काव्य है जिसमे राजस्थानी सरल सरस ग्राम्य जीवन की अनुपम छटा वर्णित है । रचना की मूल कथा श्रीमद् भागवत् से ली गई है किन्तु कतिपय नवीनताए भी हैं । यथा— काव्य में मगप के मूल कारण नारदजी हैं । राजा भीष्मक की रानी रुक्मैया के पक्ष मे होती है । शिशुपाल की भाभी कृष्ण क पक्ष में शिशुपाल को समझाने का प्रयत्न करती है आदि । प्रस्तुत मगल की प्रधान विशेषताए प्रसगोचित हार्दिक भावनाओं को गेय रूप मे सरल काव्यात्मक अभिव्यक्ति और राजस्थानी सास्कृतिक परम्पराओ क अनुसार विवाह सम्बन्धी सपूर्ण विधियो का सागोपाग चित्रण है । प्रकाशकों ने "मगल" में मनमानी जोड तोड कर इसको विकृत कर दिया है अतएव प्राचीन प्रतियो के आधार पर इसका विधिवत् सम्पादन परम आवश्यक है ।

---

१ – पत्र स० २६१ ।   २ – १३ । ६८ ।   ३ – ३३ । २७० ।

(२) रुगीराम पुजारी कृत रुक्मिणी–बारामासिया

२७ ६ । कृष्ण रुक्मिणी विवाह के विषय मे एक बारामासिया रुगीराम पुजारी कृत उपलब्ध हुआ है।[1] बारामासिया का स्थायी पद 'गोवरधन धारी रासो परतना दासो आपकी' है और इसके आधार पर बारह मासके बारह गेय पद लिखे गये हैं। प्रत्येक गेय पद के अन्त मे एक दोहा है। प्रारम्भ मे मगलाचरण के अन्तगत दुर्गा-स्तवन है। चैत मास वर्णन मे राजा भीष्मक का परिचय भी है।[2]

२८ ६ । वैशाख मास के वर्णन मे नारद मुनि का राजा भीष्मक के पास आगमन और रुक्मिणी के वर के रूप मे श्रीकृष्ण के सुभाव का वर्णन है।[3] ज्येष्ठ मास के वर्णन में रुकमया अपनी माता से परामर्श कर चन्देरी नगर मे शिशुपाल को लग्नपत्रिका भेजता है। शिशुपाल ६६ राजाओ सहित बारात और सेना सजाकर कुन्दनपुर पहुँचता है।[4] आषाढ़ के वर्णन मे रुक्मिणी की माता रुक्मिणी के प्रति शिशुपाल उसके काका जरासंध और उसके भाई दन्तावर की प्रशसा करती है।[5] श्रावण वर्णन मे राजा भीष्मक चिन्ता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण से आने की प्रार्थना करते हैं कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होगा तो कटारी खाकर मर जाऊंगा।[6] भाद्रपद मास के वर्णन में राजा भीष्मक कृष्ण की स्तुति करते हुए रामावतार मे किये गये धनुष भंग की स्तुति करवाते हैं।[7] आश्विन मास के वर्णन में श्रीकृष्ण के सरोवर में नहाते समय दिये गये वचन का उल्लेख है और उस समय डूबती हुई रुक्मिणी के उद्धार करने की ओर सकेत किया गया है।[8] कार्तिक मास के वर्णन मे रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को पत्रिका भेजने का वर्णन है।[9] अगहन मास मे जोशी रुक्मिणी की पत्रिका के साथ द्वारिका पहुँचता है और रुक्मिणी के समाचार कृष्ण को सुनाता है, साथ ही कृष्ण से शीघ्र ही आने की प्रार्थना करता है।[10]

२९ ६ । पौष मास मे जोशी कुन्दनपुर मे लौट आता है और श्रीकृष्ण के आने का समाचार सुनाता है। रुक्मिणी अम्बिका-पूजन के लिए माता की अनुमति लेती है और नारदजी के वचनो को चरितार्थ होता हुआ जानकर प्रसन्नता व्यक्त करता है।[11] माघ मास के वर्णन

---

१ – क – रुक्मिणी मंगल, श्याम काशी प्रेस मथुरा के अन्त मे पृ० २९२–२९६।
ख – द्वारका भजन-संग्रह, पहला भाग, बाबू भगवती प्रसाद दारूका, हिंदी पुस्तक एजेंसी २०३ हरीसन रोड कलकत्ता, तीसरा सं० १९९१ पृ० ३३ से ३७।

२ – पद्य सं० १। ३ – पद्य सं० २।
४ – पद्य सं० ३। ५ – पद्य सं० ४।
६ – पद्य सं० ५। ७ – पद्य सं० ६।
८ – पद्य सं० ७। ९ – पद्य सं० ८।
१० – पद्य सं० ९। ११ – पद्य सं० १०।

में दुर्गा के वरदान, श्रीकृष्ण के आगमन और कृष्ण द्वारा शत्रुओं की पराजय का वर्णन है। [१] फागुन मास के वर्णन में राजा भीष्मक द्वारा मान पूर्वक कृष्ण रुक्मिणी का विवाह करने का उल्लेख है। [२]

३० ६। हमारे साहित्य में बारहमासा वर्णन की सुदीर्घ परम्परा रही है। [३] श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक रचनाओं में बारहमासा साहित्य के अन्तर्गत हनीराम पुजारी की रचना संक्षिप्त होते हुए भी सरस है।

(३) करुणा रुक्मिणी की

३१ ६। करुणा रुक्मिणी की नामक कृति में किसी अज्ञात कवि ने संक्षेप में कृष्ण रुक्मिणी विवाह का वर्णन किया है। इस रचना में मुख्यतः रुक्मिणी के भाव व्यक्त किये गये हैं इसलिए इस कृति का नाम "करुणा रुक्मिणी की" दिया गया है। इसमें रुक्मिणी ने अपनी करुण जनक अवस्था का वर्णन् किया है। रुक्मिणी ने अपने आपको कृष्ण की पूर्व जन्म की दासी बताया है और रामावतार की ओर संकेत करते हुए सीताहरण प्रसंग का वर्णन् किया है। रुक्मिणी कहती है— 'तब आपने मेरे लिए इतने कष्ट उठाये, अब विलम्ब क्यों कर रहे हो?' इस कृति में रुक्मिणी का सन्देश मौखिक ही है एवं रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को पत्र नहीं लिखा गया है। [४]

(४) वंशीधर शर्मा कृत ख्याल रुक्मिणी मंगल

३२ ६। किशनगढ़ निवासी वंशीधर शर्मा आधुनिक काल में राजस्थानी ख्यालों के मुख्य लेखक हैं। इन्होंने पाबूजी राठौड़ सत्यनारायण तेजाजी पूरणमल जी ढोला मारू, निहालदे सुल्तान पदकुंवा रानी आदि अनेक ख्यालों की रचनाएं की हैं। पं० वंशीधर शर्मा के अनेक ख्याल प्रकाशित हो चुके हैं और इनका प्रदर्शन रुचिपूर्वक किया जाता है। शर्मा जी कृत एक ख्याल "रुक्मिणी मंगल" भी है।

३३ ६। ख्याल के प्रारम्भ में कवि ने सरस्वती और गणेश जी की स्तुति की है। तदुपरान्त राजा भीष्मक रंगमंच पर प्रवेश करते हुए अपना परिचय देते हैं। [५] भीष्मक की रानी कमलादे गणपत, शारदा और गौरी की स्तुति करती हुई अपना परिचय देती है तथा रुक्मिणी के विवाह के विषय में चिंता प्रकट करती है। इसी समय नारद जी अपना

---

१ — पद्य सं० ११। २ — छंद सं० १२।

३ — प्राचीन काव्यों का रूप विधान, श्री अगरचन्द नाहटा।

४ — लेखक के निजी संग्रह में। ५ — पृष्ठ सं० ४-५।

परिचय देते हुए मंच पर प्रवेश करते है,[1] इसमें है राजदरबार का उल्लेख किया गया है।[2] नारदजी रुक्मिणी की इच्छा को सुनते हैं।

३४ ६। राजा नारदजी से रुक्मिणी के वर के विषय में पूछताछ करते है। नारद जी श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से ही करने का आग्रह करते है। नारदजी के विदा होने पर राजा अपने पीना पुत्रों और मंत्रियों को बुला कर रुक्मिणी के विवाह के विषय में बातचीत करते है।

३५ ५। रुक्मैया कृष्ण की कटु आलोचना करता हुआ शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह की इच्छा प्रकट करता है। रुक्मैया अपने पिताजी को वृद्धावस्था के कारण बुद्धिहीन बताता है।[3] आगे रुक्मैया शिशुपाल के पास एक भाट के द्वारा लग्न पत्रिका भेजता है। भाट शिशुपाल के पास पहुँचकर लग्न पत्रिका देता है और रुक्मैया के समाचार बताता है। शिशुपाल विवाह की तैयारी करता है।

३६ ६। रुक्मिणी मंच पर प्रवेश कर गणेश और सरस्वती की वंदना करती है तथा दुर्गा से मंगल कामना करती है। रुक्मिणी और चम्पा तथा रुक्मिणी और रुक्मैया रानी के संवाद में रुक्मिणी की कृष्ण के प्रति दृढ़ आस्था बताई गई है।[4] रुक्मिणी जोशी द्वारा श्रीकृष्ण के पास पत्र भेजती है। जोशी जी समर्थ बन के वृद्ध है इसलिए रास्ते में ही थक कर बैठ जाते है और ईश्वर से द्वारिका जल्दी पहुँचाने की प्रार्थना करते है आगे जोशी जी सोकर उठते है तो अपने आपको द्वारिका में पाते है। जोशी जी कृष्ण का महल पूछकर कृष्ण से मिलते है। कृष्ण जोशी का स्वागत सत्कार कर पत्रिका पढ़ते है और यथा समय पहुँचने का आश्वासन देते है।

३७ ६। आगे शिशुपाल और उसकी भौजाई सूरजदे के संवाद हैं। भौजाई शिशुपाल को रुक्मिणी से विवाह करने से रोकती है और श्रीकृष्ण का पक्ष लेती है। शिशुपाल भौजाई से विवाह सम्बन्धी गीत गाने का अनुरोध करता है। शिशुपाल की बरात में अनेक राजा एकत्रित होते है। शिशुपाल सैनिकों सहित सज कर प्रस्थान करता है तो उसको अपशकुन होते है।

३८ ६। रुक्मिणी अपनी सहेली चम्पा और माता से बातचीत करती हुई कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है। रुक्मैया अपनी बहिन को समझाता है किन्तु रुक्मिणी अपने मत पर दृढ़ रहती है।[5]

---

१ – पृष्ठ ६।
२ – पृष्ठ ७।
३ – पृष्ठ ६, ११।
[illegible] – पृष्ठ १६–१७।
५ – पृष्ठ ३२–३३।

३६ ६ । आगे रुक्मिणी स्वगत रूप में गाती हुई कृष्ण का आह्वान करती है। परम्परानुसार रुक्मिणी कौए उड़ाती है और निश्चय प्रकट करती है कि यदि कृष्ण ने आकर विवाह न किया तो वह कटारी खाकर मर जायेगी।[1]

४० ६ । उग्रसेन और बलदेव के संवाद में कृष्ण की सहायता के लिए सैनिक तैयारी का उल्लेख है। नारदजी और बलदेवजी के संवाद में सभी देवताओं को विवाह में आमंत्रित करने का उल्लेख किया गया है। कृष्ण की भोजाई विवाह की तैयारी करती है।

४१ ६ । कृष्ण की बारात तैयार होती है जिसमें असंख्य सैनिक, समस्त यादव, पाण्डव और देवता एकत्रित होते हैं। रणत भवर (रणथंभोर) से गणेशजी भी अपने वाहन मूषक सहित आ जाते हैं। नारदजी कृष्ण से कहते हैं कि गणेशजी के कारण से बारात की शोभा नहीं होगी[2] श्रीकृष्ण गणेशजी से अनुरोध कर उन्हें पीछे महलों की निगरानी के लिए छोड़ देते हैं। गणेशजी भी कहते हैं—

> सुणी आपकी बात कृष्णजी म्हांके लागी दाय।
> मोटी तूंद खणा तन भारी चल्या न म्हा से जाय॥
> दूल्ह बरात में पावस्यासजी चलकर करस्या काय।
> ल्यावो माचो एक द्वारा पर देवा अठै बिछाय॥[3]

४२ ६ । नारदजी ने गणेशजी को अपनी विद्या से प्रभावित किया। नारदजी ने कहा — 'गणेशजी तुम तो बहुत भोले हो। तुमको साथ लेने से कृष्ण को लज्जा आती है। बारात में आपका रूप रंग अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए कृष्ण ने चालाकी कर आपको यहां छोड़ दिया है।"

४३ ६ । नारद जी के वचन सुनकर गणेशजी को क्रोध आया और उन्होंने चूहों के द्वारा बारात का मार्ग खुदवा दिया। कृष्ण के रथ के पहिए मार्ग में फंस गये। कृष्णजी ने गणेशजी का स्मरण कर बलदाऊजी को क्षमा याचना के लिए भेजा। बलदाऊजी ने गणेशजी के समीप आ कर क्षमा याचना की और धारा नगर में पाप राजा के घर ऋद्धि-सिद्धि से गणेश जी के विवाह की व्यवस्था की। विवाह कर गणेशजी बरात में सम्मिलित हुए। कृष्ण की बारात राजा रान कुंदनपुर पहुँच गई।

४४ ६ । कवि ने आगे रुक्मिणी के व्यथा वर्णन के लिए 'पखवाड़ो' [पक्ष] की योजना भी की है।[4]

---

१ — पृष्ठ ३३–३४।
२ — पृष्ठ ३६–४०।
३ — पृष्ठ ४०–४१।
४ — पृष्ठ ४८–४८।

४५ दृ । ब्राह्मण कृष्ण के आगमन का समाचार रुक्मिणी को सुनाता है तो रुक्मिणी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता । रुक्मिणी इसी ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण को सूचित करती है कि दूसरे दिन वह देवी पूजन के लिए वाटिका में जायेगी । कृष्ण वहां पहुंच कर उसका हरण करें ।

४६ दृ । प्रस्तुत रुक्मिणी मंगल में हास्य की योजना कुपामन्दसिंह नामक पात्र के द्वारा की गई है ।[1]

४७ दृ । शिशुपाल और जरासंध कृष्ण का आगमन जानकर चारों ओर अपने गुप्तचरों और सैनिकों की व्यवस्था करते हैं । वाटिका में देवी के मन्दिर के चारों ओर रुक्मिणी की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था की जाती है । रुक्मिणी श्रृंगार सजा कर अपनी सखियों के साथ देवी मन्दिर में पूजन के लिए पहुंचती है । देवी से सम्मुख प्रश्न कर रुक्मिणी कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की कामना करती है ।[2]

४८ दृ । इसी अवसर पर कृष्ण रथ लेकर मन्दिर के समीप पहुंच जाते हैं । रुक्मिणी देवी के आगे नमन कर रथ के समीप पहुंचती है और कृष्ण उसको रथ में बैठा लेते हैं । रथ नगरी से चलता है । रथ चलने पर सिपाहियों और रुक्मिणी की सखियों का शोर मचता है । शिशुपाल और जरासंध को रुक्मिणी-हरण की सूचना मिलती है तो वे सेनिकों के साथ कृष्ण का पीछा करते हैं । कृष्ण और शिशुपाल के बीच युद्ध होता है जिसमें शिशुपाल पराजित हो जाता है । शिशुपाल की दाढ़ी मूंछ पूछ ली जाती है और वह भागता है । जरासंध भी बलदेव से हार कर भाग जाता है ।

४९ दृ । रुक्मैया रुक्मिणी हरण का समाचार सुनकर क्रोधित होता है और कृष्ण का पीछा करता है । कृष्ण रुक्मैया को समझाते हैं कि देवी ने रुक्मिणी का मेरे साथ किया है । कृ बरजी आप हमारे साथ हो । रुक्मैया कहता है— "कृष्ण ! तू चोर है, रुक्मिणी को हरण कर लाया है" । कृष्ण कहते हैं— "तुम्हारी बहिन रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है ।" रुक्मैया क्रोधित होकर कृष्ण पर वार चलाता है । कृष्ण प्रहार को बचाकर रुक्मैया का धनुष तोड़ डालते हैं । रुक्मैया तलवार निकालता है तब कृष्ण उसको पकड़ कर बांध देते हैं ।

५० दृ । रुक्मैया और रुक्मिणी के संवाद में रुक्मैया क्षमा प्रार्थना करता हुआ अपनी मुक्ति के लिए अनुरोध करता है । रुक्मिणी कृष्ण से प्रार्थना करती है । श्रीनाऊजी रुक्मैया को मुक्ति प्रदान करते हैं ।

५१ दृ । रुक्मैया मुक्त हो कर कृष्ण से विवाह हेतु कुन्दनपुर चलने का आग्रह

१ — पृ० सं० ५०—५१ ।   २ — पृ० सं० ५३ ।

करता है। कृष्ण उसकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी सेना को कुन्दनपुर की ओर ले चलते हैं। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी के विवाह की तैयारी होती है।

५२ ६। आगे शिशुपाल–भोजाई के सवादों में भोजाई के उपालम्भ का वर्णन किया गया है।[1]

५३ ६। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी का विधि पूर्वक विवाह होता है।[2] स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं। ख्याल के अन्त में स्त्रियों के बालों गान का चित्रण किया गया है।[3]

५४ ६। उक्त विवरण से प्रकट है कि ख्याल के कथानक में अनेक नवीनताओं का समावेश है। यथा— श्री गणेश प्रसंग, रुक्मिणी के सन्देशवाहक के रूप में भाट की योजना, श्रीकृष्ण की बरात में देवताओं का आना, श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह कुन्दनपुर में होना। ख्याल गेय और अभिनेय है अतः इसमें सवादों की विशेषता है।

(५) श्री कृष्ण जी रो विवाहलो

५५ ६। बीकानेर के महिमा भक्ति भण्डार और अभय जैन ग्रन्थालय में 'श्रीकृष्णजी रा विवाहलो' की प्रतियां प्राप्त हुई हैं। रचना के प्रारम्भ में श्री जिनेश्वर जी की वन्दना की गई है। तदुपरान्त देवकी यशोदा का सवाद दिया गया है, देवकी कंस द्वारा अपनी सन्तान मारे जाने से दुःख प्रकट करती है। तब यशोदा कहती है कि आगे होने वाली सन्तान देवकी उसके हाथ सौंप दे।[4] निश्चित समय पर देवकी कृष्ण को जन्म देती है। उधर यशोदा के लड़की का जन्म होता है। वसुदेव कृष्ण को लेकर जमुना तट आते हैं। जमुना उफान पर होती है किन्तु वसुदेव उसको पार कर जाते हैं।[5] वसुदेव यशोदा की लड़की को लेकर मथुरा आते हैं। कृष्ण का जन्म मंगलवार को बताया गया है।[6]

५६ ६। रुक्मिणी कृष्ण की स्तुति और ध्यान करती हुई गणपति से यही प्रार्थना करती है कि ग्वाला के गोपाल हों उसके पति हों।[7] किन्तु रुक्मिया शिशुपाल के साथ ही रुक्मिणी का विवाह चाहता है। कृष्ण की और शिशुपाल की बरात का वर्णन रुचिपूर्वक किया गया है।[8] इसके आगे रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन है।[9]

५७ ६। शिशुपाल और कृष्ण के संग्राम का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है।[10]

---

१ – पृ० स० ६८।
२ – पृ० स० ७०।
३ – पृ० स० ७१–७२।
४ – छद स० १–६।
५ – छद स० १६–१८।
६ – छद स० २१–२२।
७ – छद स० ३–७।
८ – छन्द स० १०–१३।
९ – छद स० १८–१९।

५८ ६। तदुपरान्त श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह और जुआ जुई खेलने का वर्णन है। स्त्रियों के गालो गाने का भी वर्णन है।[1]

५६ ६। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह कर द्वारका आते हैं, उस समय का वर्णन भी सरस है।[2]

६० ६। आगे वर वधू विनोद का प्रसग है और अन्त में कृष्ण रुक्मिणी सवाद है।

६१ ६। सवत् १७८६ वि० की लिखित प्रति से ज्ञात होता है कि इस विवाहल की रचना इस सवत् से पूर्व हुई है। इसका रचना काल १८ वी सदी निर्धारित होता है।

६२ ६। श्री अगरचन्दजी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त प्रति का प्रशस्तिलेख इस प्रकार है —

"इति श्रीकृष्णजी विवाहलो सपूर्ण। सवत् १७८६ वर्ष मिति चैत्र सुदी १५ दिने लिखत जीवन जी सर्वोपमालायक साध्वी रतनमाला वाचनार्थ। इति श्रेय श्रेणाय मगल मालिका वालिका श्रेयम्नात्र। शुभमवतु। जिसो दीठो तिसो लिखियो। खोटो लगे लिखण वाला रो दोस न छइ। महा अशुद्ध परत खोटी छइ सही।"

६३ ६। प्रस्तुत रचना मे श्रीकृष्ण जन्म से श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह तक का वर्णन है। कर्ता जैन धर्मानुयायी है किन्तु इसमे जिनेश्वर वन्दना के अतिरिक्त जैन धर्म का कोई प्रभाव नही है।

(६) कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास

६४ ६। रुक्मिणी रास की रचना कवि नन्दलाल ने जैन सिद्धातानुसार की है। कवि ने श्रीमद्भागवत से भिन्न पात्रो और घटनाओ का इस रचना मे समावेश कर अपनी मौलिक सूझ बूझ का परिचय दिया है। कवि की कल्पनाएं काव्य सौन्दर्य की अपेक्षा धार्मिक प्रचार में अधिक सहायक है।

६५ ६। यह रचना अजना रास की गेय ढाली में लिखी गयी है और काव्य का अपर नाम 'रुक्मिणी छन्द' दिया गया है।[3] काव्यगत कथा का प्रारम्भ द्वारिका वर्णन से होता है।[4]

---

१ — छन्द स ३०–३२। २ — छन्द स १७–२७।
३ — छन्द स १। ४ — छन्द स १–४।

६६ ६। काव्य में सघर्ष का समावेश श्रीकृष्ण के अन्त पुर मे नारद मुनि के आगे श्री सत्यभामाजी की गर्वोक्ति से होता है।[1]

६७ ६। नारदजी सत्यभामा से प्रतिशोध लेने का विचार करते हैं। नारी के लिये सौत से बढ़ कर अन्य कोई दुख ससार में नहीं होता और " सौक तो गारा री ही चोखी नो" विचार कर नारदजी श्री कृष्ण के विवाह के लिये श्रेष्ठ सुन्दरी की खोज मे निकल पड़ते हैं।[2] तदुपरान्त " उद्यम किया सरे सगला जी काज तो" [3] के अनुसार नारदजी विमान मे बैठकर कुन्दनपुर मे राजा भीष्मक के दरबार मे आते हैं। राजा ने नारदजी का यथोचित आदर-सत्कार किया। सभा में नारदजी ने रुक्मैया का रूप देखकर उसकी प्रशसा की और रुक्मिणी के विषय में जानने की उत्कण्ठा प्रकट की। रुक्मिणी की सगाई राजा शिशुपाल से निश्चित हो जाने की सूचना राजा ने नारदजी को दी। नारदजी राजा की अनुमति प्राप्त कर अन्त पुर में गये और रुक्मिणी के मस्तक झुकाने पर आशीष दी —

कृष्ण वल्लभ तुम रुक्मिणी थाय तो।[4]

६८ ६ रुक्मणी की भुआ ने श्रीकृष्ण की प्रशसा करते हुए नारदजी का पक्ष लिया। भुआ द्वारा श्रीकृष्ण के रूप और ऐश्वर्य का बखान सुन कर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को ही वरण करने की प्रतिज्ञा कर ली।

६९ ६। नारद जी कुन्दनपुर से चल कर द्वारिका श्रीकृष्ण के समीप पहुँचे। यहाँ उन्होंने रुक्मिणी के रूप सौन्दर्य का बखान किया और बताया कि ऐसी राजकुमारी शिशुपाल के नहीं श्रीकृष्ण के ही योग्य है।

७० ६। नारदजी रुक्मिणी के प्रति श्रीकृष्ण का प्रेम जाग्रत कर शिशुपाल के यहाँ पहुँचे। इस समय पुरी में शिशुपाल के विवाहोत्सव की तैयारियाँ हो रही थी। नारदजी ने इसी अवसर पर लग्नपत्रिका देखकर विघ्न बाधाओं की भविष्यवाणी की।[5] शिशुपाल के विवाह हेतु शिथिल होने पर नारदजी पुन उसको उत्साहित करते हैं।[6] शिशुपाल ने क्रुद्ध होकर युद्ध के लिये सैनिक तैयारी की।[7] इस प्रकार नारदजी ने अपनी विद्या का प्रयोग कर युद्ध की भूमिका तैयार करली।

७१ ६। विवाह-लग्न का दिन समीप होने पर रुक्मिणी को चिन्ता हुई। उसने अपनी भुआ के समक्ष श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए उनसे ही विवाह करने का दृढ

---

१ — ढाल स ५—८।
२ — ढाल स ६—७।
३ — ढाल स २७।
४ — ढाल स० ३५।
५ — ढाल स० ४६।
६ — ढाल स० ५१।
७ — ढाल स० ५३।

निश्चय प्रकट किया।[1] रुक्मिणी का भुया ने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के विषय में प्रा.. किया —

> मूला वडयाई सू इम कहै, एहवा दोन तू काई बोले वाम ता।
> द्वारका नाथ हाजर करू थारो सर्व ता मैलम्यू जाग ता।[2]

७२ ६। प्रस्तुत कृति मे रुक्मिणी की भुवा ... नवक न माग श्रीकृष्ण ... विवाह का स ...न भेजती है और सवक ऊट पर सवार होकर द्वारिका पहुँचता है। पत्रिका पढ कर प्रारम्भ मे श्रीकृष्ण हर्षित हुए और फिर यह विचार कर उदास हो गये कि मैं विवाह के लिये जाता हू तो शिशुपाल मारा जाता है और नहा जाता हू तो रुक्मिणी मरती है।[4] बलभद्र के आग्रह पर श्रीकृष्ण ने दूत के द्वारा विवाह के लिए ... उत्तर भेजा। श्रीकृष्ण न यह भी सूचना दी —

> प्रमदा नाम उद्यान मे, तिहा छे कामदेव ना एक चैत्य तो।
> तिण मदर हम आवस्यां, म्हारे ध्वजा निसानी छे श्वेत ता।[5]

कवि ने सेवक को आगे 'मिसरजा' लिखा है।[6] विवाह की लग्न तिथि पर शिशुपाल बड़े बड़े भूपतियो सहित आ गया —

> माघ सुदी धुर अष्टमी, लग्न ना दिन कीधी परमान तो।
> शिशपाल राय सजि आविया, ल्याविया बड़े बड़े भूपति जाण तो।।[7]

राजा भीष्मक ने शिशुपाल और बरातियो का स्वागत सत्कार किया और सभी प्रसन्न हुए किन्तु रुक्मिणी का मन किंचित मात्र भी प्रसन्न नहीं हुआ।[8] शिशुपाल के सैनिकों ने नारद के वचनो से प्रभावित होकर हुए नगर के सभी द्वारों पर प्रवेश सम्बन्धी प्रतिब...

७३ ६। श्रीकृष्ण यथा समय युद्ध रथ को सज्जित कर बलदेव सहित उद्यान के चैत्य में पहुँच जाते हैं।[1] इधर भुग्रा रुक्मिणी की सहायता में अपना उपाय करती है।[2]

७४ ६। शिशुपाल ने प्रसन्न हो कर रुक्मिणी का चैत्य में जाने का आदेश दे दिया।[3] रुक्मिणी प्रसन्नता पूर्वक प्रमदा नामक उद्यान में पहुँची और वहा कामदेव की प्रतिमा को प्रणाम किया। रुक्मिणी ने दरशीन इन वर मागा और फिर चारों ओर अपने नाथ श्रीकृष्ण का देखन लगी।[4] इतने मे श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उ होने रुक्मिणी का हाथ पकड कर रथ में बठाया[5] इसी समय श्रीकृष्ण ने भाग जाने की इच्छा से रथ चला लिया तो नारद जी ने आकर उन्हें युद्ध के लिये प्रेरित किया।[6] नारद के वचन सुनकर श्रीकृष्ण न अपना रथ रोक लिया। तब नारद जी ने शिशुपाल और राजा भीष्मक के समीप जाकर उ ह युद्ध के लिये प्रेरित किया।

७५। ६। भीष्मक और शिशुपाल ने क्रोधित हो हाथी घाडे और पदल सैनिका को साथ ले प्रमदा उद्यान को आ घेरा। ऐसी अवस्था मे रुक्मिणी की मनोदशा चित क्षीण हो गई। श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का आश्वसन किया।[7] कृष्ण ने रुक्मिणी को रथ से उतार कर म दिर क एकान्त मे बैठाया और युद्ध करने वाली पुतली को प्रस्तुत किया —

> पूतली सख्या बतीस छै, पुरुष आकार जे जुद्ध सजोग तो।
> शब्द तेहनो जिम बोजली, अरिदल देषी मन ऊपज सोग तो।[8]

७६ ६। जन कवि न न्दलाल की प्रवृत्ति युद्ध वर्णन में नहीं रम सकी क्योंकि वह जन धर्म के अहिंसा सिद्धा त में विश्वास रखता है। इसलिये नाम मात्र का युद्ध वर्णन करते हुए कवि न रुक्मिणी हरण के प्रसग एव युद्ध वर्णन् को पूरा कर दिया है।[9] श्रीकृष्ण न द्वारिका मे रुक्मिणी से विधि पूर्वक विवाह किया। श्रीकृष्ण की रानियों में रुक्मिणी को अपने रूप और गुणा क कारण विशेष सम्मान प्राप्त हुआ जिससे सत्यभामाजी को विशेष ईर्षा हुई —

> एक कण आख माही पडे, ताही सू वेदना होय अपार तो।
> यह सोकण कही जगत म, तिहि थी भामा ने चेतन सार तो।[10]

७७ ६। आगे कवि ने कथा पर जन सिद्धा त का आरोपण किया है। रुक्मिणी

---

१ — ढाल स० ७३।
२ — ढाल स० ७५–७६।
३ — ढाल स० ७७।
४ — ढाल स० ७६।
५ — ढाल स० ८०।
६ — ढाल स० ८१।
७ — ढाल स० ८६।
८ — ढाल स० ६५।
६ — ढाल स० ६८–१००।
१० — छद स० = (१०८)।

गर्भवती होती है तो उसे चौदह स्वप्नो मे से षष्ट स्वप्न दिखाई देता है।[१] जब कृष्ण स्वप्न का विवरण सुनते हैं तो वे उसको कहते है कि पुत्र विख्यात होगा। बारहवें स्वर्ग से राय मधु का जीव काम कुमार रुक्मिणी के गर्भ मे प्रवेश करता है। जन्म के उपरान्त उसका नाम प्रद्युम्न कुमार होता है।

७८ ६। एक दिन अचानक ही प्रद्युम्न लुप्त हो जाते हैं। तब कृष्ण रुक्मिणी को आश्वासन देते हैं कि सोलह वर्ष मे वह पुन मिल जायेगा। नारदजी उसको ढूढने का आश्वासन देते हैं। प्रद्युम्न का विद्याधर राय और रानी कनकमाला के पास पालन होता है।[२] प्रद्युम्न थोडे समय मे सब कलाएं सीख जाते हैं। सौतेली माताए और सौतेले भाई उनको मारने का प्रयत्न करते हैं। रानी कनकमाला भी पूर्व जन्म के पति पत्नी सम्बन्ध के कारण प्रद्युम्न से अप्रकट रूप मे प्रेम करता है। एक दिन रानी कामातुर होती हुई हाव भाव प्रदर्शित करती है। तब प्रद्युम्न उसको समझाते हैं।[३] उसके न मानने पर वे जंगल मे चले जाते हैं। वहा एक मुनिराज से उनकी भेंट होती है। मुनि उनको यह बतलाते है कि किस कारण उनको मातृ वियोग सहना पड रहा है।[४] मुनि उनको यह भी कहते हैं कि कनकमाला से जो विद्यायें आ रही है, वे भी सीख लो। कामान्ध होकर कनकावती दोनों विद्यायें सिखा देती है। फिर उनके सामने वासनाजनक प्रस्ताव रखती है। प्रद्युम्न उस प्रस्ताव को ठुकरा कर चले जाते हैं। रानी राजा से शिकायत करती है कि प्रद्युम्न ने उसके सामने लज्जापूर्ण प्रस्ताव रखा। तब राजा अपने पाच सौ पुत्रों को प्रद्युम्न से युद्ध की आज्ञा देता है किन्तु प्रद्युम्न उन सबको मार देते हैं। राजा रानी के पास विद्या लेने जाता है तो उसको ज्ञात होता है कि वे विद्यायें रानी ने प्रद्युम्न को दे दी तब राजा को वास्तविकता ज्ञात होती है और वह पश्चाताप कर प्रद्युम्न से मिलता है। प्रद्युम्न अपनी विद्या से उसके पुत्रों को पुन जीवित कर देते हैं।

७९ ६। रुक्मिणीजी को पुत्र वियोग सहते सोलह वर्ष व्यतीत हो गये तो नारदजी प्रद्युम्न से मिले और उनको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। प्रद्युम्न मुनि वेश धारण कर और विमान मे बैठ कर द्वारिका की ओर चले।[५]

८० ६। मुनि वेश में होने से उनको कोई नही पहिचान सका। यहा आ वे रुक्मिणी को पुत्र प्राप्ति का आश्वासन देते है और उसको अपना चमत्कार बताते हैं। रुक्मिणी को विमान में बैठा कर कृष्ण के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं— "रुक्मिणी का हरण करके आ रहा हूँ। तब कृष्ण का और प्रद्युम्न का युद्ध होता है। नारदजी आकर वास्तविकता प्रकट करते हैं। कृष्ण और प्रद्युम्न प्रसन्न होकर गले मिलते हैं।

---

१ – ढाल सं० ११ (१११)। २ – ढाल ५१ (१२१)।
३ – ढाल सं० ७७ (१७७), ७८ (१७८), ७९ (१७९)।
४ – ढाल ३१ (१३६)। ५ – ढाल सं० ९९ (१९९)।

८१ ६। आगे कवि प्रगट करता है कि पूर्व जन्म का मधु तो प्रद्युम्न के रूप मे रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ किन्तु उसका पूर्व जन्म का भाई केटक अभी बारहवे स्वर्ग में ही था। जब केटक ने अपने भविष्य जन्म के विषय में श्री सीमंधर देव से पूछा तो वे उसको यह आश्वासन देते हैं कि वह श्रीकृष्ण की जम्भावती के गर्भ से जन्म लेगा और उसका नाम सबुक होगा। तदुपरान्त स्वर्ग से एक देव श्रीकृष्ण को मोतिया का हार देता है और कहता है कि इस हार को पहिनने वाली के गर्भ से बारहवें स्वर्ग का देवता अवतार लेगा।[१] श्रीकृष्ण वह हार सत्यभामा को देना चाहते हैं किन्तु रुक्मिणी छल द्वारा वह हार अपनी बहिन जम्भावती को प्रद्युम्न की सहायता से देती है। जम्भावती के गर्भ से समय पूर्ण होने पर देवकुमार जन्म लेता है। इसी समय सत्यभामा के भी पुत्र होता है जिसका नाम सुभानु कुमार होता है।

८२ ६। एक बार प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को वचनबद्ध कर जम्भावती के पुत्र संबू के लिए छ महिने तक द्वारिका का राज्य मांग लिया। वह अनाचार करने लगा। तब कृष्ण ने उसकी परीक्षा लेकर उसको देश निकाला दे दिया किन्तु प्रद्युम्न के समझाने पर यह कहा कि अगर सत्यभामा अपने हाथ से स्वागत सत्कार कर उसे राजमहल में ले आए तब वह देश निकाले के दण्ड से मुक्त हो सकता है। सम्बू छल विद्या से सुन्दरी बनकर सुभानु की वधू के रूप में सत्यभामा के साथ महल में आ जाता है। सत्यभामा को जब वास्तविकता ज्ञात होती है तो वह बहुत पश्चाताप करती है।

८३ ६। रुक्मिणी की इच्छा थी कि रुक्मया की कन्या वैदर्भी का विवाह प्रद्युम्न से सम्पन्न हो जाय। जब वह रुक्मया के पास यह संदेश भेजती है तब रुक्मया संदेश को ठुकरा देता है। तब प्रद्युम्न छल विद्या से कुन्दनपुर जाकर वैदर्भी से विवाह कर पुन सम्बू सहित द्वारिका आ जाते हैं।

८४ ६। आगे दूसरी ढाल प्रारम्भ होती है— 'गाफिल मति रह रे' एक समय द्वारिका मे व्यापारियो ने आकर 'रतन कमल' दिखाये जिन्हे यादव कुमारो ने मोल लिया। उन कमलों को मगध मे किसी ने नही लिया तब वे व्यापारी मगध की बुराई करते है। इससे कुपित होकर जरासंध ने द्वारिका पर चढाई की किन्तु परास्त हुआ।

८५ ६। आगे पुन ढाल अजना रास की चलती है। इसमें नेमिनाथ के अठारह हजार साधुओ सहित द्वारिका आने, कृष्ण के छोटे भाई राजसुकुमाल को दीक्षा देने, अन्त में स्वय कृष्ण और प्रधान यादवों को तप करने का उपदेश देने पच महाव्रत का पालन और मांस मदिरा को त्यागने आदि का वर्णन है।

८६ ६। यादव कुमार एक दिन क्रीडा हेतु नगर से बाहर जाते हैं वे एक सरोवर

---

१ – ढाल स० ४१ (२४१)।

का मादक जल पीकर मस्त हो जाते हैं और एक तपस्वी को कष्ट देते हैं जिससे वह तपस्वी द्वारिका के विनाश का श्राप देता है। देवदूत जब द्वारिका का विनाश करने आते हैं तो कृष्ण यह घोषणा करवाते हैं कि जो संयम धारण कर तपस्या करेगा उसका उद्धार होगा। कृष्ण की रानियां भी दीक्षा ले लेती हैं। देवदूत द्वारिका में आग लगा देते हैं। कृष्ण आग बुझाने का प्रयत्न करते हैं पर निष्फल होने पर बलदेव के साथ नगर छोड़ कर चल देते हैं। प्रद्युम्न और सम्बू कुमार भी रुक्मिणी सहित दीक्षा लेकर तप आरम्भ कर देते हैं।

८७ ६। प्रस्तुत रचना मे श्रीकृष्ण का चरित्र अनुदात्त ही रहता है। कवि ने अपनी अनेक कल्पनाओं के आधार पर जैन धर्म का महत्व बताया है। रचना का कला पक्ष भी सर्वथा अविकसित रहता है।

८८ ६। कृति का अपर नाम 'रुक्मिणी मंगल' है और इसकी रचना वि० स० १८७६ में होशियारपुर मे चतुर्मास काल में हुई है —

> 'अप रतीराम परशाद थी कवि नन्दलालजी कीधा गुण ग्राम तो।
> सम्वत् अठारह सो छियतरया, नगर हुशियारपुर कीधो चौमास तो।'[1]
>
> जब लग मेरु अचल है जब लग शशी अरु सूर।
> जब लग यह पोथी सदा, रहज्यो गुण भरपूर।।
>
> इति रुक्मिणी मंगल सम्पूर्ण।

८९ ६। रचना की एक प्रति जिन चरित्र सूरी पुस्तकालय बड़ा उपासरा बीकानेर मे है।

(७) रुक्मिणी हरण (बडा)

९० ६। यह रुक्मिणी हरण गेय रूप में है[2]। रचना के प्रारम्भ मे कवि गणपति की वन्दना करता है और रुक्मिणी हरण के गायन मे मधुर वाणी की कामना करता है।

९१ ६। तदुपरान्त कवि राजा भीष्मक और उसकी कन्या का वर्णन करता है। राजा भीष्मक अपने परिवार के साथ दरबार में बैठकर रुक्मिणी के विवाह के विषय में विचार करते हैं। वर के रूप में श्रीकृष्ण का प्रस्ताव आने पर रुक्मैया के अतिरिक्त सभी प्रसन्न होते हैं। रुक्मैया क्रोध कर कृष्ण की बुराई करता है।[3]

९२ ६। रुक्मैया विवाह लग्न लिखवाकर ब्राह्मण के द्वारा शिशुपाल को भेजता है और शिशुपाल विवाह लग्न स्वीकार कर राजा भीष्मक को प्रणाम और रुक्मैया को जुहार

---

१ — ढाल स० ८०४।
२ — ढेर संख्या १, पत्र संख्या १–४।
३ — पत्र स० ५–६।

सूचित करता है।[१]

६३ ६। शिशुपाल नौलाख हाथी और दस लाख घोड़े तथा सहस्त्र लाख ऊट सजा कर विवाह हेतु पहुँचता है। रुक्मैया उसका स्वागत करता है। महल में बैठी हुई राजकुमारी रुक्मिणी श्री कृष्ण से ही विवाह करने की कामना करती है।[२] तदुपरान्त रुक्मिणी का दुख प्रकट किया गया है — रुकमणी रुदन करे नेना मु नीर झरे"।[३]

६४ ६। एक वृद्ध ब्राह्मण को रुक्मिणी द्वारिका भेजना चाहती है। ब्राह्मण अपनी वृद्धावस्था बतला कर जाने की अनिच्छा प्रकट करता है। रुक्मिणी प्रचुर द्रव्य भेंट करती है, तब ब्राह्मण जाने के लिए तयार होता है। रुक्मिणी को कृष्ण के लिए पत्र लिखने में एक प्रहर लगता है। वृद्ध ब्राह्मण भली तरह से भोजन कर चला तो मार्ग में उसे नींद आ गई। ब्राह्मण की आंख खुली तो उसने अपने आपको द्वारिका में पाया।[४] तदुपरान्त द्वारिका वर्णन करते हुए ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को रुक्मिणी का पत्र देने और गरुड़ सवारी से कृष्ण द्वारा विदर्भ पहुँचने का वर्णन किया गया है।[५]

६५ ६। ब्राह्मण दरबार में पहुँच कर राजा भीष्मक और रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करता है और दान प्राप्त करता है।[६] द्वारिका में सुभद्रा और बलदेव कृष्ण को अपने स्थान पर नहीं देखते हैं तब अपनी माता से कृष्ण के विषय में पूछते हैं। माता ब्राह्मण के द्वारा पत्र लाने और कृष्ण के प्रस्थान करने का वर्णन करती है।[७]

६६ ६। श्रीकृष्ण की वर-यात्रा में हाथी-ऊट सहित सातों समुद्रों, वन वनस्पतियां, पहाड़ों, गंगा, गंगा-जमुना नवकुल नाग और चौसठ योगिनियां के भी सम्मिलित होने का वर्णन है।[८]

६७ ६। विदर्भ नगर में पहुँच कर श्रीकृष्ण ने शंख बजाया जिससे शिशुपाल भयभीत हो गया। राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया और उनके पैरों लगकर कुशल क्षेम पूछी। रुक्मिणी अपनी सहेलियों सहित शृंगार कर अम्बिका पूजन के लिए चली। शिशुपाल ने रुक्मिणी को रोका तो उसको मूर्ख कहा गया। रुक्मिणी ने स्पष्ट रूप से कृष्ण से विवाह करने की कामना प्रकट की। शिशुपाल ने क्रोधित होकर सहरा डाल दिया तो वह वासुकि नाग हो गया।[९]

६८ ६। कृष्ण ने गरुड़ जी को भेज कर रुक्मिणी का हरण करवाया और रुक्मिणी को गरुड़ पर बैठा कर ले चले। अपनी बहिन के हरण का समाचार जानकर रुक्मैया ने कृष्ण का पीछा किया। रुक्मैया कृष्ण की बुराई करता हुआ उन पर बाण वर्षा

---

१ – टेर सं० २, पद सं० १–१०।
२ – टेर ३ पद सं० १–६।
३ – टेर ३, पद सं० १–६।
४ – टेर ४ पद सं० १–१६।
५ – टेर ६, पद सं० ४–८।
६ – टेर ७ पद सं० १–४।
७ – टेर ८, पद १–५।
८ – टेर ९, पद सं० १–६

करने लगा। तब कृष्ण ने रुक्मया को रथ मे बांध लिया।[1] रुक्मिणी ने रथ से उतर कर अपने भाई को बंधन में बंधा हुआ देखा तो उसने कृष्ण से प्रार्थना कर उसे मुक्त करवा दिया।[2]

९९ ६। कृष्ण ने पहाड़ों में चवरी बनाकर और आकाश को तोरण बनवा कर रुक्मिणी से विवाह किया। ब्रह्माजी ने वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए और सावित्री ने धवल मंगल गाते हुए कृष्ण रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न किया।[3]

१०० ६। प्रस्तुत रचना विवाह के अवसर पर गेय रूप में प्राप्त हुई है।[4] इसमे श्रीकृष्ण गरुड़ सवार होकर कुन्दनपुर पहुँचते हैं और मन्दिर में स्वयं नहीं जाकर गरुड़ को भेज कर रुक्मिणी का हरण करवाते हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह माग के पहाड़ी प्रदेश में ब्रह्माजी सम्पन्न कराते हैं।

(८) रुक्मिणी-हरण (छोटा)

१०१ ६। प्रस्तुत रुक्मिणी हरण विवाह मे वर वधु का नाम लेते हुए और सरस्वती तथा गणपति की वन्दना करते हुए गाया जाता है।[5]

१०२ ६। रुक्मिणी के विवाह के विषय मे परिवार विचार करने लगता है तब रुक्मया कृष्ण का विरोध करता है और गोरध्वण ब्राह्मण को परामर्श हेतु बुलाता है।[6] कृष्ण की बारात आने पर ऊंट बैल हाथी और घोडो के खिलाने पिलाने का विशेष वर्णन है।[7] तदुपरान्त विवाह की विधियां सम्पन्न होने का वर्णन है —

> सेवरा रा पाट अणावो ने सपट घी सू भराव्या जी।
> सपट घी सू भरावी ने मधुपर्क अणावो जी॥
> मधुपक वाटकी अणावा ने, लोलडा लूंग बटाडयाजी॥
> लोलडा लूंग बटाडीने, हाथ जोडाव्या जी॥
> हाथ सू हाथ जाडावि ने कन्या दान दीधा जी।
> तेडोनी बाप लाडो तणु, देवु छे कन्यारो दान जी।[8]

१०१ ६। गीत के अन्त में कन्या दान के साथ दिये जाने वाले हाथी, घोडा, जमीन वस्त्र आदि का वर्णन किया गया है।

---

१ – टेर ६, पद स० ७–६।
२ – टेर जो (६), पद स० ६–११।
३ – टेर ६ पद स० ११–१३।
४ – लेखक के निजी सग्रह मे।
५ – पद स० १।
६ – पद स० ३।
७ – पद स० ४–६।
८ – पद स० १४।

(६) रुक्मिणी-विवाहलो

१०४ ६। रुक्मिणी विवाहलो एक अज्ञात कवि की रचना है। कवि प्रारम्भ मे गणपति की वन्दना करता है। तदुपरान्त राजा भीष्मक की राजकुमारी रुक्मिणी का वर्णन करता है।[1]

१०५ ६। रुक्मिणी का विवाह राजा वसुदेव के पुत्र कृष्ण से करने का प्रस्ताव राजा भीष्मक की रानी की ओर से होता है। रानी अपने पति से एकमत होने की ओर कृष्ण जी से सम्बन्ध जोड सबुन्द से साक्षात्कारी करने की प्रार्थना करती है —

> गढ मथुरा मे श्रो राजा वसुदेव राज करे।
> ज्याँ घरे कुमारो श्रा कवर क हैया।
> राज कवर ने श्रीनमू ।
> एक विद्याश्रो मणजो स्वामी दोय जणा।
> सोर कीजो श्री समुद्र मु ।[2]

१०६ ६। रुक्मैया कृष्ण का विरोध करता हुआ उन्हें काला, कुवर्ण, ग्वालिया और नट वेषधारी बताता हुआ शिशुपाल की धन सम्पति की प्रशसा करता है।[3]

१०७ ६। रुक्मैया शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है। शिशुपाल प्रसन्न होता हुआ विवाह की तैयारी करता है —

> आमो सिंयडावे श्रो शिशुपालो हरख करे॥
> कसू बल पारा, केमरिया आमो, सीस विराजे बारे सेवरो।[4]

१०८ ६। शिशुपाल को विवाह हेतु लाने पर श्री कृष्ण रुक्मैया को मारने लगते है तब रुक्मिणी श्रीकृष्ण से निवेदन कर उसको मुक्त कराती है —

> दस कोसा माही गोडर तारिणया, बीस कोसा में वीरदडी ॥
> सहरा मे बैठा श्रो, बाई रुक्मण रुदन करे।
> वीरा जो सालो कई वतलावो जी राखो पिहरिया री पयोजी।[5]

१०९ ६। श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को साला कहकर छोड दिया और रुक्मैया ने रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से कर दिया। ब्रह्माजी और सावित्री ने मिलकर विवाह विधि सम्पन्न की।

---

१ – पद स० १–३।
२ – पद स० ४।
३ – पद स० ५–६।
४ – पद स० ८।
५ – पद स० ६।

(१०) कान्ह जी विवाहलो

११० ६। 'कान्ह जी विवाहलो' एक अज्ञात कवि की रचना है और गोरिक गाना की गली में गेय है। इस विवाहल का प्रारम्भ रुक्मिणी को बालकुमारी बताते हुए और श्रीकृष्ण की बरात की उसके द्वारा प्रतीक्षा करना बताते हुए किया गया है।[1]

१११ ६। प्रस्तुत विवहले में श्रीकृष्ण का जगन्नाथ कहा गया है और उनके साथ जाने में बलभद्र का आना सूचित किया गया है। विवाह में शिशुपाल व भीष्मक और रुक्मया से श्रीकृष्ण का कोई सघर्ष नहीं बताया गया है। श्रीकृष्ण को सीधे तोरण पर पहुंचते हुए और वहीं पर विवाह की विधि पूर्ण करते हुए बताया गया है।

११२ ६। श्रीकृष्ण रुक्मिणी से विवाह कर द्वारिका लौटते हैं तब उन्हें ससुराल में किये गये भोजन और दहेज आदि के विषय में पूछा जाता है। श्रीकृष्ण इस विषय में यथोचित उत्तर देते हैं।[3]

११३ ६। श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी चारणेतर रचनाओं की विशेषताएं इस प्रकार हैं —

१— अधिकांश रचनाएं लघुरूप में हैं। बड़ी रचनाओं में पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल और मलाल कृत रुक्मिणी रास मुख्य हैं।

२— समस्त रचनाएं लौकिक शैली में गेय हैं।

३— कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत ही है किन्तु कवियों ने प्रसंगानुसार नवीन कल्पनाएं भी की हैं।

४— रचनाओं का कला पक्ष पूर्ण रूपेण विकसित नहीं है भाव पक्ष अवश्य ही पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल में प्रबल है।

५— वस्तु वर्णन अनेक रचनाओं में विस्तृत है। यथा — पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल में नगर वर्णन भोजन वर्णन आदि।

६— वीर रस की अपेक्षा शान्त रस और शृंगार रस का प्राधान्य है।

७— श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन की जैन कवियों की परम्परा भिन्न है जिसका परिचय मलाल कृत रुक्मिणी रास से उपलब्ध होता है। ऐसी रचनाओं में प्रद्युम्न सम्बन्धी प्रसंगों पर कवियों का विशेष ध्यान गया है और जैन सिद्धान्त का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

*

---

१ – पद स० १। २ – पद स० २–१३। ३ – पद स० २०–२२।

सप्तम अध्याय

उपसहार

१ ७। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी-हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य सन् १८९९ ई० म प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक ग्रंथ रत्न प्रकाश म आये। सभा का काय-क्षेत्र मुख्यत उत्तरप्रदेश तक ही सीमित रहा किन्तु यह काय अ य प्रदेशों के लिए परम प्रेरक और अनुकरणीय बन गया। राजस्थान के राजपूत राजाओं जागीरदारों पण्डित परिवारों और देवस्थानों में उपलब्ध अपार ग्रंथ राशि की ओर भी अनेक विद्वानों और साहित्यिक सस्थाओं का ध्यान आकर्षित हुआ।

२ ७। राजस्थानी साहित्य का महत्व कर्नल जेम्स टाड (सन् १७८२ १८३५ ई०) ने "एनल्स एण्ड ऐंटिक्विटीज-आव राजस्थान नामक ग्रंथ[1] द्वारा और महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री (सन् १८५३-१९३१ ई०) ने 'प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सच आव दि मैन्युस्क्रिप्ट्स आव बार्डिक क्रोनिकल्स[2] द्वारा प्रदर्शित किया किन्तु राजस्थानी साहित्य के विधिवत् अन्वेषण का काय एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता की ओर से डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी द्वारा १९१४ ई० में प्रारम्भ हुआ। डॉ० तेस्सीतोरी ने अपने चार वर्ष के कायकाल में ही अनेक राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण[3] तैयार किये और छन्द राउ जइतसी रउ, वचनिका राठोड रतनसिंह जी महेसदासोत री तथा वेलि क्रिसन रुकमणी री नामक तीन महत्वपूर्ण काव्य-कृतियों का सम्पादन किया तथा कई महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित किये।[4] डा० तेस्सीतोरी ने इटालियन होते हुए भी राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी अन्वेषण काय हेतु राजस्थान को अपना निवास स्थान बनाया और मृत्यु पर्यन्त कायरत रहते हुए भावी अन्वेषणकर्त्ताओं के सामने कायरूप में उच्च आदर्श प्रस्तुत किये। डॉ० तेस्सीतोरी के पश्चात् मुन्शी देवीप्रसाद (१८४८-१९२३ ई०) के कवि

---

१ – कुक मिल्फोर्ड लन्दन १८२९ ई०।

२ – १९१३ ई०, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

३ – ए डिस्क्रिप्टिव कटलाग ऑव बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स।

४ – जनल आफ एशियाटिक सोसाईटी आफ बगाल, कलकत्ता।

'रतनमाला' 'महिला मृदुवाणी', 'राजरसामृत' और राजस्थान में हस्तलिखित पुस्तकों की खोज, ठाकुर भूरसिंह शेखावत (१८६२–१९३२ ई०) का 'विविध संग्रह और महाराणा-यश प्रकाश' प० रामकरण जी आसोपा का मारवाड़ी व्याकरण, डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (१८६३–१९४७ ई०) की प्राचीन लिपि माला', प० नरोत्तमदास जी स्वामी का 'राजस्थान रा दूहा' (१९३४ ई०) प० मोतीलाल जी मेनारिया कृत राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' (१९३९ ई०)[1] और 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (१९४९ ई०),[2] श्री अगरचन्द जी भवरलाल जी नाहटा का एतिहासिक जैन काव्य संग्रह' (१९३७ ई०) श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई कृत जैन गुर्जर कविओ ३ भाग' (१९२६–१९४४ ई०), मुनि जिन विजय जी का प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ' (१९२९ई०) डॉ० कन्हैया लाल जी सहल द्वारा सम्पादित मरु–भारती'[3] श्री कस्तूर चन्द कासलीवाल द्वारा 'राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों का ग्रन्थ–सूची'[4] श्री सीताराम जी लालस का राजस्थानी–हिन्दी शब्द कोष'[5], चौपासनी शिक्षण संस्थान की परम्परा' प्रकाशन,[6] 'प्राचीन राजस्थानी गीत'[7] मरुवाणी स० रावत जी सारस्वत[8] आदि अनेक प्रकाशन हुए हैं। इस प्रकार विगत अर्द्ध शताब्दी में हुए संशोधन–कार्यों से राजस्थानी साहित्य की एक रूपरेखा स्पष्ट हो चुकी है। प्रति वर्ष राजस्थान और संलग्न प्रदेशों में प्राप्त होने वाले हस्तलिखित ग्रन्थों से नवीन तथ्य उपलब्ध होते रहते हैं और अभी अज्ञात व अप्राप्त कोनों में राजस्थानी साहित्य के अनेक ग्रन्थ धूलि धूसरित अवस्था मे दबे हुए पड़े हैं। राजस्थान के विभिन्न भागों में हो रहे प्रयत्नों से ज्ञात होता है कि निकट भविष्य मे भी कतिपय वर्षों तक हस्तलिखित ग्रन्थ निरन्तर उपलब्ध होते जायेंगे। ऐसी अवस्था मे राजस्थानी साहित्य के काल–विभाजन का प्रभावित होना सर्वथा स्वाभाविक होगा।

३ ७। प्रस्तुत विनम्र प्रयत्न में राजस्थानी भूमि (४ १–८ १) जन–जीवन (६ १–१५ १), भाषा (१६ १–४८ १) और ललित कलाओं (४९ १–६७ १) का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुऐ नवीन रूप मे राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन (९ २–८ २) कर प्रत्येक काल की प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचनाओं का विवरण (९ २–२४४ २) दिया गया है। साहित्य का प्रस्तुत काल विभाजन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर आधारित है। अतएव भविष्य मे उपलब्ध होने वाली नवीन साहित्यिक रचनाओं का भी इन्हीं कालों में समावेश हो जायेगा।

---

१ — छात्र हितकारी पुस्तक माला, प्रयाग।

२ — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

३ — राजस्थानी शोध विभाग पिलानी।

४ — जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी जयपुर।

५ ६ — राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर।

७ — राजस्थान विद्यापीठ साहित्य संस्थान, उदयपुर।

८ — राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर।

४ ७। राजस्थानी साहित्य अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। (१ ३–४६ ३)जिसमें एक रूप "विवाह मंगल" सनक रचनाओं का भी है। विवाह भारतीय जीवन का एक विशेष संस्कार माना गया है (४७ ३–५२ ३)। 'विवाह मंगल' सनक रचनाएं भी अनेक प्रकार की प्राप्त होती हैं (५३ ३–५७ ३)। अनेक भारतीय भाषाओं में मंगल-काव्य-लेखन की सुदीर्घ परम्परा रही है (५८ ३–७६ ३) और राजस्थानी विवाह मंगल काव्यों (८० ३–८६ ३) में कृष्ण रुक्मिणी विवाह–सम्बन्धी रचनाएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

५ ७। भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र विविधताओं से पूर्ण है और साहित्यकारों के लिए विशेष प्रेरक रहा है (१ ४–१३ ४)। श्रीकृष्ण–चरित्र के अन्तर्गत श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी प्रसंग का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत में हुआ है (१४ ४–३१ ४)। 'विष्णुपुराण', 'हरिवंशपुराण' और अनेक संस्कृत काव्यों में भी श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह संबंधी प्रसंग है। राजस्थानी काव्यों की रचना में अपभ्रंश और ब्रज भाषा में लिखित रचनाएं भी प्रेरक रही हैं (३– ४–१२४ ४)। मध्यकालीन राजस्थानी इतिहास की परिस्थिति उक्त प्रकार की काव्य रचना में सर्वथा सहायक सिद्ध हुई हैं (१२५ ४–१३३ ४)। श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह विषयक काव्यों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है —

१ चारण काव्य और २ चारणेतर काव्य।

चारण काव्यों में चारणों द्वारा रचित काव्यों के साथ ही अन्य कवियों के चारण शैली में रचित काव्य भी उपलब्ध हुए हैं (१ ५–१४७ ५)। इस प्रकार की रचनाओं में महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मणी री" का स्थान सर्वोच्च है (१५ ८–८२ ५)। श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह सम्बन्धी चारणेतर रचनाओं में पद्मनाभ कृत "रुक्मिणी मंगल" एक महत्त्वपूर्ण कृति है (२ ६–२६ ६)। इस प्रकार की अन्य कृतियाँ कथानक संगठन की विविधता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं (२७ ६–११३ ६)।

६ ७। श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की कथावस्तु को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है —

१ प्रारम्भ कार्यावस्था और बीज अर्थ प्रकृति —
रुक्मिणी और श्रीकृष्ण का एक दूसरे के रूप, गुण और शील की प्रशंसा सुनकर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना।

२ यत्न नामक कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति —
रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण के प्रेम में वशीभूत होकर श्रीकृष्ण को सन्देश भेजना और विवाह के लिए अन्त में रत करना। श्रीकृष्ण द्वारा यथासमय पहुंच कर रुक्मिणी का हरण कर लाने का निश्चय प्रकट करना।

३ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था और पताका नामक अर्थ प्रकृति —
श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण के लिए यथा समय कुन्दनपुर पहुँचना। बलदेव द्वारा सैनिकों सहित श्रीकृष्ण की सहायता के लिए आना।

४ नियताप्ति नामक कार्यावस्था और प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति—
श्रीकृष्ण द्वारा ययागमय स्वा मन्दिर में पहुँच कर रुक्मिणी का हरण करना। श्रीकृष्ण द्वारा बलदेव और अन्य यादव सनिकों की सहायता से शिशुपाल, जरासंध और रुक्मैया आदि शत्रुओं को परास्त करना।

५ फलागम नामक कार्यावस्था और कार्य नामक अर्थ प्रकृति —
श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह। रुक्मिणी के प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न होना।

७ ७। महाराज पृथ्वीराज कृत श्री क्रिसन रुक्मिणी री वेलि में रुक्मिणी के बाल रूप वर्णन से प्रद्युम्न जन्म तक के प्रसंग वर्णित हैं और प्रत्येक प्रसंग का उद्देश्य की दृष्टि से संतुलित चित्रण हुआ है। कवि ने श्रीमद्भागवत् से कथानक ग्रहण करते हुए भी उसमें अपनी मौलिक कल्पनाओं और काव्यात्मक रूपों का समावेश किया है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी परवर्ती रचनाओं में अनेक लोक प्रचलित प्रसंगों का समावेश हुआ है किन्तु इन रचनाओं की कथावस्तु भी श्रीमद्भागवत् पर ही आधारित रही है।

८ ७। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्य भक्त कवियों की रचनाएं हैं। सम्बन्धित कवियों ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार और पूर्णब्रह्म परमेश्वर तथा रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार माना है जिससे इन काव्यों में भक्ति का स्वर प्रधान हो गया है।

९ ७। भरत मुनि ने शृंगार, रौद्र वीर और बीभत्स नामक रसों को प्रधान मानते हुए इन रसों से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक नामक गौण रसों की उत्पत्ति बताई है।[1] भरत मुनि ने पीछे से शान्त रस का उल्लेख कर उसके स्थाई भाव को अन्य सभी भावों में प्रधानता दी है। काव्य प्रकाश में भी निर्वेद प्रधान शान्त रस को नवम् रस माना गया है।[2]

१० ७। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में शान्त रस की महत्ता प्रकट करते हुए शान्त रस से ही रति आदि आठों स्थायी भावों की उत्पत्ति बताई है।[3]

११ ७। आचार्य अभिनव गुप्त ने तत्व ज्ञान को ही शान्त रस का स्थायी भाव सिद्ध किया है। इनके मतानुसार जिस प्रकार काम कवि और नट द्वारा रति आदि से अभिहित होकर रस रूप में आस्वाद्य होता है उसी प्रकार मोक्ष भी विशेष चित्त वृत्ति के योग से शान्त रस के रूप में प्रकट होता है। निर्वेद नामक चित्त वृत्ति की उत्पत्ति घोर संकट और तत्वज्ञान से होती है। तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद सभी स्थायी भावों को दबा देने वाला होता है। अग्नि पुराण (९वी १०वी शती ई०) में शान्त रस की उत्पत्ति रति के अभाव से, आचार्य रुद्रट (९वी शती ई०) ने सम्यक् ज्ञान से और आनन्दवर्धनाचार्य (९वी शती ई०) ने तृष्णाक्षय सुख से मानी है।

---

१ — नाट्यशास्त्र, ६।१६। २ — काव्य-प्रकाश, ४।३५। ३ — ६।१०८।

१२ ७। सम्बन्धित काव्यों में विवाह प्रसंग प्रधान रहा है इसलिये नायक नायिका-निरूपण, वय सन्धि वर्णन शृंगार-वर्णन और संयोग वियोगादि शृंगारिक अवस्थाओं का वर्णन विशेष रूप में हुआ है। शृंगार को रसराज माना गया है क्योंकि शृंगार की भावना व्यापक होती है। यह प्रत्येक काल और जाति में सदा विद्यमान रहती है। महाराजा भोज ने शृंगार को ही एक मात्र रस माना है। अन्य रसों को रस की संज्ञा देना इन्होंने परम्परा पालन मात्र बताया है।[1] 'अग्नि पुराण' में शृंगार रस से ही अन्य रसों की उत्पत्ति मानी गयी है। भरत मुनि ने शृंगार रस की व्याख्या करते हुए लिखा है —

संसार में जो कुछ उत्तम, शुचि, उज्जवल और दर्शनीय है वही शृंगार है।"[2]

१३ ७। शृंगार रस के देवता श्याम वर्ण विष्णु माने गये हैं। विष्णु अनन्त शक्ति रमा के साथ रमण करते हुए लोक के पालनकर्त्ता हैं। शृंगार का स्थायी भाव रति आलम्बन विभाव नायक और नायिका, उद्दीपन विभाव दूति, सखा, परिहास, उपालम्भ, वन, उपवन, ऋतु पुष्प, भ्रमर कोकिल संगीत आदि हैं, अनुभाव नायक नायिका की कायिक, वाचिक और मानसिक अवस्थाएं और क्रियाएं, प्रति क्रियाएं यथा- भ्रूभंग, भुजाक्षेप, परस्पर-अवलोकन, स्वेद और रोमांच आदि हैं तथा संचारी भाव हर्ष, मोह, चिन्ता, लज्जा आदि हैं। शृंगार रस के दो भेद हैं — संयोग और वियोग। संयोग शृंगार में आनन्दोत्पादक संचारी भावों की तथा वियोग शृंगार में करुणोत्पादक संचारी भावों की प्रधानता रहती है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त रहा है।

१४ ७। श्रीकृष्ण को रुक्मिणी की प्राप्ति के लिए युद्ध कर शिशुपाल, जरासंध और रुक्मैयादि शत्रुओं को पराजित करना पड़ा था। सम्बन्धित काव्यों में युद्ध सम्बन्धी प्रसंग का कवियों की रुचि के अनुसार विभिन्न रूपों में समावेश हुआ है। युद्ध दया धर्म और दान आदि कार्यों में अत्यधिक उत्साह प्रकट होने पर वीर रस की उत्पत्ति मानी गयी है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। वीर रस के देवता इन्द्र और वर्ण हेम रूपी माना गया है।[3] भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में वीर रस का सम्बन्ध उत्तम प्रकृति वालों से मानते हुए इसका स्थायी भाव उत्साह बताया है।[4] वीर रस के चार भेद माने गये हैं—

(१) युद्ध वीर, (२) दान वीर (३) दया वीर और (४) धर्म वीर।[5]

वीर रस के आलम्बन विभाव नायक शत्रु याचक और तीर्थस्थानादि है, उद्दीपन विभाव शत्रु का प्रभाव, अग्नि, चारण वाणी याचक की दीनदशा प्रशंसा-श्रवण आदि, अनुभाव स्पर्श रोमांच, सत्कार आदि, संचारी भाव गर्व धृति, तर्क, स्मृति हर्ष, दया, असूया, आवेग आदि हैं।

---

१ — शृंगार प्रकाश, प्रथम प्रकाश ६—७। २ — नाट्य शास्त्र, अध्याय ६।
३ — चन्द्रालोक।
४ — ना० शा० ६। ६६ ग।
५ — साहित्य दर्पण ६। २३४।

१५ ७। उल्लखनीय है कि कविवर पृथ्वीराज ने "वेलि" मे शृंगार का विस्तृत निरूपण करते हुए भी भक्ति और वीरता का महत्व प्रदान किया है। चारण कवि सायांजी झूला ने 'रुकमणी हरण" म युद्ध सम्बन्धी प्रसंग का विस्तृत निरूपण करते हुए श्रीकृष्ण क वीर चरित्र पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित की है तो पद्म भक्त ने " रुक्मिणी मंगल " म प्रसगानुसार अनेक रसों से जन मानस को आप्लावित करने का प्रयत्न किया है।

१६ ७। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी चारण काव्यों में संस्कृत और हिन्दी काव्यों में सामान्य रूपेण प्रचलित अलंकारों के साथ ही मध्यकालीन राजस्थानी काव्यों में प्रचलित 'वेणसगाई" अलंकार का निर्वाह प्रायः समस्त ग्रंथों में किया गया है। "वेण सगाई" का विवरण चारण काव्यों के प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है (१०१ ५)। वेणसगाई का तात्पर्य वर्ण सम्बन्ध से है और इसको एक प्रकार का अनुप्रास अलंकार भी कह सकते हैं। सम्बन्धित काव्यों में छन्दों की दृष्टि से विविधता दृष्टिगोचर होती है। राजस्थानी छन्द शास्त्र के अनुसार "गीत" नामक छन्द में कम से कम ३ "द्वाला" होते हैं। पृथ्वीराज की वेली ३०५ द्वालों के एक ही छन्द मे पूर्ण हुई है।

१७ ७। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह काव्य सम्बन्धी चरित्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(१) पुरुष चरित्र और (२) स्त्री चरित्र। पुरुष चरित्र इस प्रकार हैं—

श्रीकृष्ण, राजा भीष्मक, बलदेव, रुक्मैया, शिशुपाल, जरासन्ध, सन्देश वाहक ब्राह्मण, नारद मुनि, प्रद्युम्न, शम्बासुर, और नेमिनाथ आदि। स्त्री पात्र रुक्मिणी, राजा भीष्मक की रानी, शिशुपाल की भाभी और कनकावती आदि। कवियों की दृष्टि नायक श्रीकृष्ण और नायिका श्री रुक्मिणी के चरित्र की ओर ही अधिक रही है।

१८ ७। श्रीकृष्ण सभी काव्यों मे नायक रूप मे चित्रित किये गये हैं। भरतमुनि ने नायकों के प्रकार निम्नलिखित बताये हैं —

(१) धीरोदात्त (२) धीरललित, (३) धीर प्रशान्त और (४) धीरोद्धत।[1]

भोज ने धीरोदात्त को धर्मशृंगार का नायक, धीरललित को कामशृंगार का नायक, धीर प्रशान्त को मोक्ष शृंगार का नायक और धीरोद्धत को अर्थ शृंगार का नायक लिखा है[2]

१९ ७। भोज ने कथानक के आधार पर नायक प्रतिनायक उपनायक तथा अनुनायक का विभाजन किया और चरित्र की मूल प्रकृति के अनुसार सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के नायक बताये। अग्निपुराण के अनुसार अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट

---

१ — नाट्य शास्त्र। २ — शृंगार प्रकाश।

प्रकार के नायक होते हैं। प्रकृति के अनुसार नायक को उत्तम मध्यम और अधम कोटि में लिया जा सकता है। परिस्थिति के अनुसार नायक को समागा, वियोगा और अपराधी की श्रेणियों में लिया जा सकता है।[1]

२० ७। जैन कवियों के अतिरिक्त अन्य सभी कवियों ने श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर विष्णु का अवतार असुर संहारक लीला परायण, कुशल योद्धा, नीतिज्ञ और रसिक शिरोमणी एवं धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है। पृथ्वीराज कृत बलि के श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत् के अनुसार राजस्थानी नायक के रूप में चित्रित हैं।

२१ ७। रुक्मिणी सम्बन्धित समस्त काव्यों में नायिका रूप में चित्रित गई है। हमारे साहित्य में नायिका भेद और उनके लक्षणों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है। भरत मुनि ने कुलजा वेश्या और कन्यका नामक भेद किये हैं। सामान्यतया नायिकाओं के भेद स्वकीया, परकीया और सामा या किये गये हैं। आचार्य रुद्रट ने स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा (प्रगल्भा) नामक उपभेद बताये हैं। भानुदत्त ने मुग्धा के अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना तथा नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा नामक रूप बताये हैं।[2]

२२ ७। प्रकृति के अनुसार भी नायिकाओं के तीन भेद हैं —

१ उत्तमा — नायक को दूसरे के प्रेम में रंजित देखकर भी उसका अहित न सोचना।
२ मध्यमा — नायक के अनुसार हित अहित चाहने वाली, और
३ अधमा — नायक के हित करते हुए भी उसका अहित चाहने वाली।

२३ ७। स्वभाव के अनुसार नायिका भेद इस प्रकार है—

१ अन्य संभोग दुःखिता — नायक को अन्य नायिका के प्रेम में फंसा देखकर दुःख करने वाली।
२ वक्रोक्ति गर्विता — नायक के रूप और गुणों का गर्व करने वाली, और
३ मानवती — अन्य नायिका में नायक को आसक्त देख मान करने वाली।

२४ ७। रुक्मिणी विष्णु के परम भक्त कुन्दनपुर-नरेश भीष्मक की इकलौती राजकुमारी है। रुक्मिणी उच्चकुल में उत्पन्न श्रेष्ठ प्रकार की नायिका है। रुक्मिणी कमला का अवतार मानी गई है किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम हृदय परक हो गया है। श्रीकृष्ण की गुणावली का श्रवण कर वह कृष्ण से प्रेम करने लगती है और इसका भाई

---

१ ~ हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ पृष्ठ ३९८-४००।
२ ~ वही पृ० ४०१-४०२।

रुक्मैया रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो वह श्रीकृष्ण को विवाह का संदेश भेजती है। श्रीकृष्ण यथासमय पहुँच कर रुक्मिणी का हरण करते हैं। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पटरानी बनती है और कृष्ण के प्रति प्रेम में निष्ठावती सिद्ध होती है।

२५ ७। रुक्मिणी का चरित्र अनेक कवियों ने चित्रित किया है जिनमें वल्लभ सम्प्रदाय के कवि मुख्य हैं। भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य परक रूप चित्रण के लिये रुक्मिणी का प्रयोग आवश्यक हुआ है। निम्बार्क, चैतन्य, राधा वल्लभीय और हरिदासी सम्प्रदायगत कवियों ने रुक्मिणी का चरित्र उपेक्षित कर दिया, जिसका कारण कृष्ण चरित्र में राधा को प्राधान्य देना है।

२६ ७। रुक्मिणी का चरित्र 'भारत-लक्ष्मी' के रूप में है जिसका उद्धार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा होना है। रुक्मिणी भगवद् भक्तों की आशा केन्द्र रही है और भक्त जनता का अपने उद्धार की आशा बंधी है।

२७ ७। पारणोतर काव्यों में नारद-लीला को संघर्ष का कारण प्रकट करते हुए नारद चरित्र का भविष्यवक्ता के रूप में समावेश हुआ है। गणेश और संदेश वाहक विप्र का चित्र पद्म कृत 'रुक्मिणी मंगल' में हास्य की दृष्टि से हुआ है।

२८ ७। आशा है कि विवाह मंगल काव्य धारा के अन्तर्गत श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक काव्य रूप जिसका श्रीगणेश ब्रजभाषा में विष्णुदास द्वारा हुआ जिसको महाकवि सूर और नन्ददास ने अपनी अमृतमयी वाणी से अभिसिंचित किया और जिसमें रस युक्त अनेक मंगल' काव्य उपलब्ध हुए अब हमारे विद्वद्‌जगत् में अधिक समय तक उपेक्षित नहीं रहेगा। महाराज पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन-रुक्मिणी री वेलि' अपर नाम 'रुक्मिणी मंगल'' का स्थान सम्बन्धित काव्यों में कथानक संगठन, रसनिष्पत्ति अलंकार सौन्दर्य, प्रकृति निरूपण, मौलिकता, काव्य रूप, वस्तु वर्णन चरित्र चित्रण, शब्द चयन, भाषा सौष्ठव, भक्ति भावना और उद्देश्य निर्वाह की दृष्टि से श्रेष्ठतम है अतएव साहित्य क्षेत्र में इस काव्य रत्न का समुचित रूप में मूल्यांकन अपेक्षित है।

*

परिशिष्ट

[हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण यथा स्थान प्रस्तुत किया जा चुका है और इस सूची में उनका निर्देश नहीं है।]

(१) ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वी० ए० स्मिथ, १९२३ ई०।

(२) आर्कियोलोजिकल मेमॉयर्स, आर्कियोलोजीकल डिपार्टमेन्ट, नई दिल्ली।

( ) आपणा कविओ, केशवराम काशीराम शास्त्री।

(४) आश्वलायन सूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(५) इण्डियन एण्टिक्वेरी।

(६) इण्डियन आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्ट, नई दिल्ली।

(७) उदयपुर राज्य का इतिहास, डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

(८) ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्य।

(९) ऋग्वेद संहिता, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(१०) ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्यूस्क्रिप्ट्स, डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता।

(११) ए हैंड बुक आव फोक लॉर सोफिया बर्न।

(१२) एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, जेम्स टॉड, विलियम क्रुक द्वारा सम्पादित संस्करण लन्दन।

(१३) एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइन्सेज, रावर्ट एच लावी।

(१४) ऐतिहासिक काल से पूर्व का राजस्थानी जन जीवन, डॉ० सत्यप्रकाश, अमरज्योति, जयपुर।

(१५) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, अगरचंद भंवरलाल नाहटा, बीकानेर, संवत् १९९४।

(१६) ऐतिहासिक रास संग्रह संशोधक विजय धर्म सूरि।

(१७) ओझा निबन्ध संग्रह डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान उदयपुर।

(१८) ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बंगाली लेंग्वेज, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, कलकत्ता।

(१९) कल्चरल सोशियोलोजी, गिलिन और गेलिन।

(२०) कवि चरित्र, केशवराम काशीराम शास्त्री।

(२१) कवि प्रिया, केशव ग्रन्थावली भाग १, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

(२२) कात्यायन श्रौत सूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(२३) काव्यादर्श, दण्डी, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना १९३८ ई०।

(२४) कान्हडदे प्रबन्ध, पद्मनाभ, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

(२५) कुमार सम्भव, कालिदास, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(२६) कुवलयमाला, उद्योतन सूरि, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

(२७) गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, डॉ० मंजुलाल र० मजमुदार।

(२८) गुरु गोविन्दसिंह, विपिन मास्टर दास गुप्त।

(२९) गोभिलीय गृह्य सूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(३०) डिंगल छन्द का इतिहास, श्री उदयराज उज्ज्वल।

(३१) डिंगल साहित्य, डॉ० जगदीशप्रसाद, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

(३२) डिटेल्ड रिपोर्ट आव ए टूर इन सर्च आव संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन काश्मीर राजपूताना, सेन्ट्रल इण्डिया, डॉ० जी० बूलर।

(३३) छान्दोग्य उपनिषद्, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(३४) जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता।

(३५) जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता।

(३६) जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दलीचन्द देसाई।

(३७) जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२, अङ्क ५६।

(३८) ढोला मारू रा दूहा (सूर्यकरण पारीक, रामसिंह और नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि०सं० १९९०, वाराणसी।

(३९) दयालदास जी री ख्यात, सादूल ओरियंटल सिरीज, बीकानेर।

(४०) दारुका भजन संग्रह, बाबू भगवती प्रसाद दारुका, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता।

(४१) दी पोजीशन आफ वीमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, डॉ० ए० अल्टेकर १९५९।

(४२) दी सोशियल इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्शिएन्ट इण्डिया, श्री के० एल० दफ्तरी।

(४३) दी हिस्ट्री आफ ह्यूमन मेरिज वो० १, वेस्टर मार्क।

(४४) दी केटलाग आफ दी गुजराती एण्ड राजस्थानी मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी, लन्दन।

(४५) दी माइथोलोजी आफ दी आर्यन नेशन्स, रेवरेण्ड, सर जी० डबल्यू कॉक्स।

(४६) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(४७) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(४८) नाट्य-शास्त्र, भरतमुनि, गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा।

(४९) नृत्य रत्न कोश, सम्पा० रसिकलाल पारीख और डॉ० प्रियबाला शाह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

(५०) परम्परा, स० नारायण सिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर।

(५१) पाबू प्रकाश, मोडजी।

(५२) पार्वती-मंगल, तुलसी कृत।

(५३) पिंगल सिरोमणी, परम्परा प्रकाशन, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर।

(५४) पुरानी राजस्थानी, डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी, डॉ० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(५५) पुरातन प्रबन्ध संग्रह सिंघी जैन ग्रन्थ माला, सम्पा० मुनि जिन विजयजी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

(५६) पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या उदयपुर।

(५७) प्राकृत सर्वस्व मार्कण्डेय, स० भट्टनाथ स्वामी, विजगापट्टम, सन् १९१२।

(५८) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, श्री सी० डी० दलाल।

(५९) प्रिलिमिनेरी रिपोर्ट आन दी आपरेशन इन सर्च आफ मेनुस्क्रिप्ट्स आफ बार्डिक क्रोनिकल्स, डॉ० हरप्रसाद शास्त्री, कलकत्ता।

(६०) बांकीदास ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(६१) बीकानेर राज्य का इतिहास डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा संवत् १९९६।

(६२) ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन डॉ० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार आगरा।

(६३) ब्रजनिधि ग्रन्थावली, स० हरिनारायणजी पुरोहित, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी।

(६४) बेसिक स्टेटिस्टिक्स आफ राजस्थान, जन सम्पर्क कार्यालय जयपुर १९५७ ई०।

(६५) बोधायन धर्मसूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(६६) भक्तमाल, नाभादास स० श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९५२।

(६७) भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस०आर० शर्मा।

(६८) भारतीय विद्या, स० मुनि जिन विजय जी भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

(६९) भारतीय लोक साहित्य, डा० श्याम परमार राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

(७०) भारतीय लोककला ग्रन्थावली, सम्पा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर।

(७१) भाषा विज्ञान डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, १९६१।

(७२) मनुस्मृति चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(७३) मरु-भारती सम्पा० डॉ० कन्हैयालाल सहल, राजस्थानी शोध विभाग, पिलानी।

(७४) महाभारत, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

(७५) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।

(७६) महाराणा कुम्भा डा० हरविलास शारदा, अजमेर।

(७७) महाकवि माघ, उनका जीवन और कृतियां, डा० मनमोहन लाल शर्मा, नवयुग प्रकाशन दिल्ली-६।

(७८) मारवाड़ का मूल इतिहास पं० रामकर्ण जी आसोपा जोधपुर, सन् १९३१।

(७९) माधवानल काम कंदला प्रबंध, गणपति विरचित, मजूमदार सपादित।

(८०) मिश्र बंधु विनोद, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ।

(८१) मिलिट्री मेमोयर्स आफ जार्ज टामस, विलियम फ्रेंकलिन, लंदन, १८०५।

(८२) मीराबाई का जीवन चरित्र मुंशी देवीप्रसाद।

(८३) मीरा-माधुरी श्रीब्रजरत्नदास, सं० २०१३।

(८४) रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि मंछ कृत महताबचंद खारेड़, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, वि० सं० १९९७।

(८५) राजस्थान भारती, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर।

(८६) राजस्थान में प्रागैतिहासिक व सिंधु सभ्यता का युग, श्री रत्नचंद अग्रवाल शोध पत्रिका उदयपुर वर्ष १२, अङ्क २।

(८७) राजस्थान का लोक संगीत, श्री देवीलाल सामर भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर।

(८८) राजस्थान स्वर-लहरी, भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर।

(८९) राजस्थान की रस धारा पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, संस्कृति परिषद् जयपुर १९५४ ई०।

(९०) राजस्थान रा दूहा सं० श्री नरोत्तमदास जी स्वामी प्रथम संस्करण १९३३, हिंदुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली।

(९१) राजस्थान सम्बंधी प्रकाशित साहित्य सम्पा० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान सरकार, जयपुर १९५६ ई०।

(९२) राजस्थानी साहित्य, परम्परा और प्रगति डा० सरनाम सिंह शर्मा हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली।

(९३) राजस्थानी लोक गीत साहित्य संस्थान, उदयपुर।

(९४) राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २, सं० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

(९५) राजस्थानी हिन्दी शब्द कोष श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर।

(९६) राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले० मोतीलाल जी मेनारिया हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद।

(९७) राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री हीरालाल जी माहेश्वरी।
(९८) राजस्थानी साहित्य का आदिकाल, स० श्री नारायण सिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर।
(९९) राजस्थानी साहित्य एक परिचय, श्री नरोत्तमदास जी स्वामी, नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर।
(१००) राजस्थानी, त्रैमासिक, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता।
(१०१) राजस्थानी लोक नाट्य, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर।
(१०२) राजस्थानी भाषा, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राजस्थान विद्यापीठ शोध संस्थान, उदयपुर, १९४९ ई०।
(१०३) राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, पुरषोत्तम लाल मेनारिया, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १९५३ ई०
(१०४) राजपूताने का इतिहास, डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर।
(१०५) राजपूताने का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत, जोधपुर सन् १९६०।
(१०६) रास पंचाध्यायी, नन्ददास।
(१०७) लोक कला, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर।
(१०८) लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया डॉ० ग्राज ग्रियर्सन।
(१०९) वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी महेसदासोत री, खिड़िया जगा री कही, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।
(११०) वरदा, सम्पा० श्री मनोहर शर्मा, राजस्थानी साहित्य समिति, बिसाऊ।
(१११) बसन्त विलास, कांतिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
(११२) वंश भास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण, प्रताप प्रेस, जोधपुर, स० १९५६।
(११३) वाचस्पत्यम्, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।
(११४) विक्रमाङ्कदेवचरित, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।
(११५) बीसल देव रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
(११६) वीर सतसई, सूर्यमल मिश्रण, सम्पा० डॉ० कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड़ और ठा० ईश्वरदान आशिया, बंगाल हिन्दी मंडल, कलकत्ता स० २००५।
(११७) वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता सन् १९१९।, सम्पा० डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी।
(११८) वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सम्पा० सूर्यकरण पारीक और ठा० रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
(११९) वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर १९५३।

(१२०) वेलि किसन रुक्मिणी री, सम्पा० नरोत्तमदास जी स्वामी, श्रीराम मेहरा एण्ड सन्स, आगरा ।
(१२१) वेलि किसन रुक्मिणी री, सम्पा० श्री कृष्ण शंकर शुक्ल, साहित्य निकेतन, कानपुर ।
(१२२) वेलि किसन रुक्मिणी री, सम्पा० नटवर लाल इच्छाराम देसाई फार्बस गुजराती सभा, बम्बई, १९५५ ई० ।
(१२३) वेष्णवीज्म, शैवीज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम्स, आर० जी० भण्डारकर ।
(१२४) वैष्णव धर्म पताका, स० श्री बसन्तराम शास्त्री ।
(१२५) सरस्वती, इलाहाबाद ।
(१२६) सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
(१२७) सलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर, लाला सीताराम ।
(१२८) संगीत राज, सम्पा० सी० कुन्हन राजा अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
(१२९) साहित्य, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।
(१३०) साहित्य सदेश, आगरा ।
(१३१) साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सन् १९१५ ।
(१३२) संगीत रुक्मिणी मंगल, कृष्णानन्द व्यास, कलकत्ता ।
(१३३) सुश्रुत सूत्र स्थान चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
(१३४) सूरज प्रकाश कविया करणीदान कृत, सम्पा० श्री सीताराम लालस, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।
(१३५) सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य डॉ० शिव प्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।
(१३६) सूर सागर, स० नन्ददुलारे वाजपेयी, ना० प्र० सभा, काशी सं० २००७ ।
(१३७) सेंटिनरी रिव्यु आव दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता ।
(१३८) शतपथ ब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत-पुस्तकालय, वाराणसी ।
(१३९) शिख नख केशव कृत ।
(१४०) शोध पत्रिका राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ।
(१४१) श्राद्धविवेक, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
(१४२) हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५० ई० ।
(१४३) हरिरस ग्रंथ, ईसर बारहठ कृत, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता ।
(१४४) हिन्दी काव्य धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद १९४५ ई० ।
(१४५) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, प्रयाग चतुर्थ संस्करण, १९२८ ई० ।

(१४६) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० बडथ्वाल ।
(१४७) हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
(१४८) हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद, इलाहाबाद ।
(१४९) हिन्दी साहित्य कोश, प्रधान स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल, वाराणसी ।
(१५०) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
(१५१) हिन्दुई साहित्य का इतिहास गार्सां द तासी अनु डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ।
(१५२) ज्ञान-शब्द कोष, ज्ञान मण्डल वाराणसी वि० स० २०१३ ।



डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम० ए०, (पी-एच. डी.), साहित्य-रत्न
निदेशक, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर
का संक्षिप्त परिचय

१ जन्म —

दिनांक ५ नवम्बर, १६२३ ई० को उदयपुर में मालवीय श्रीगौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ।

२ शिक्षा —

१ एम० ए० हिन्दी, द्वितीय श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
२ साहित्य रत्न, द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
३ मध्यमा (विशारद) द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
४ जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० से सम्मानित।

३ अनुभव —

१ पूर्व संचालक और मंत्री, राजस्थान विद्यापीठ शोध संस्थान, उदयपुर, क्रियात्मक प्रशासन का अनुभव १० वर्ष, १६४१ से १६५० ई० ।

२ संस्थापक और सम्पादक, शोध-पत्रिका, साहित्य संस्थान, उदयपुर । उन्नीसवें वर्ष म प्रकाशन चालू है ।

३ प्रिंसिपल और प्राध्यापक, राजस्थान विद्यापीठ कालेज, उदयपुर । स्नातक और स्नातकोत्तर अध्यापन का अनुभव ८ वर्ष, १६४१ से १६४८ ।

४ रिसर्च स्कालर, सम्पादन-समिति, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १६५५ ई० ।

५ सदस्य भाषा समिति, राजस्थान सरकार, १६५२ ई० ।

६ पर्यवेक्षक और अधिवक्ता, २६ वां अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, १६६४ ई० ।

७ विभागीय सचिव, अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सेमिनार, १६६४ ई० ।

८ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की राजस्थान समिति के सदस्य ।

६ सदस्य महासमिति, राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, १६६६ ई० ।

१० अनेक शिक्षण संस्थाओं की कार्य समिति के सदस्य ।

११ सहायक संचालक, शोध सहायक और उप निदेशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान सरकार, जोधपुर । प्रतिष्ठान में अनुसंधान और प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का क्रियात्मक अनुभव १७ वर्ष, १६५१ से ।

१२ निदेशक राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर ।

४ विशेष विवरण —

१ रेडियो से हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति पर प्रसारित वार्ताएं, लगभग सवा सौ (१६४८ से) ।

२ राजस्थान के आन्तरिक भागों में और पूना, बम्बई, कलकत्ता आदि की यात्राएं कर हस्तलिखित ग्रंथ और साहित्य सम्बन्धी विस्तृत खोज, संग्रह, अध्ययन और प्रकाशन कार्य ।

३ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का निदेशन १६४१ से १६५० ई० ।

४ गुजराती और मराठी आदि में अनेक रचनाएं अनुदित और प्रकाशित ।

५ देश विदेश के अनेक प्रमुख विद्वानों द्वारा साहित्यिक कार्यों और प्रकाशनों का प्रशंसात्मक उल्लेख ।

६ व्यक्तिगत साहित्य संकलन— राजस्थानी लोक-गीत, दस हजार, राजस्थानी लोक-कथाएं, एक हजार आदि।

७ राजस्थान सरकार द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए दो बार पुरस्कृत।

८ हिन्दी, राजस्थानी अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान।

५ प्रकाशित साहित्य —

१ राजस्थान की रस धारा राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई०।

२ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५३ ई०।

३ राजस्थान की लोक कथाएं, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली। पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण १९५४ ई०।

४ राजस्थानी वाता, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक क०, जयपुर।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनो पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं।

५ राजस्थानी लोक कथाएं, प्रथम संस्करण १९५४ ई०। [अप्राप्य]

६ राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई०।

७ राजस्थान सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर १९५४ ई०।

८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई०। उपाधि परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्वीकृत।

९ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, १९६१ ई०।

१० रुक्मिणी हरण, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर १९६४ ई०।

११ साहित्य सरिता, जय भव्य प्रकाशन, जयपुर। प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

१२ पद्यतरंगिणी, सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई०।

१३ नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर १९५७ ई०।

१४ लोक कला निबन्धावली, भाग १ (१९५४ ई०)।

१५ लोक-कला निबन्धावली भाग २ (१९५६ ई०)।

१७ राजस्थानी लोक कथायें (राजस्थानी संस्कृति परिषद् जयपुर)।

१८ राजस्थानी पुस्तक माला, प्रकाशित पुस्तकें ३।

१९ भारतीय लोक-कला ग्रन्थावली, प्रकाशित ग्रन्थ ८।

२० त्रैमासिक शोध पत्रिका, प्रथम और द्वितीय भाग, १९४६–४७ ई०।

२१ लोक कला त्रैमासिक शोध पत्रिका भाग १–६।

२२ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक निबन्ध आदि लगभग १५० (डेढ़ सौ)

२३ राजस्थानी साहित्य का इतिहास, १९५८ ई०।

२४ वैताल पंचविंशतिका, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९५८।